सेवासदन

प्रेमचन्द

सेवासदन

पश्चात्ताप के कड़वे फल कभी-न-कभी सभी को चखने पड़ते है, लेकिन और लोग बुराइयों पर पछताते है, दारोगा कृष्णचन्द्र अपनी भलाइयों पर पछता रहे थे। उन्हें थानेदारी करते हुए पचीस वर्ष हो गए; लेकिन उन्होंने अपनी नीयत को कभी बिगड़ने न दिया था। यौवनकाल में भी, जब चित्त भोग-विलास के लिए व्याकुल रहता है उन्होंने नि:स्पृहभाव से अपना कर्त्तव्य-पालन किया था। लेकिन इतने दिनों के बाद आज वह अपनी सरलता और विवेक पर हाथ मल रहे थे। उनकी पत्नी गगाजली सती-साध्वी स्त्री थी। उसने सदैव अपने पति को कुमार्ग से बचाया था। पर इस समय वह भी चिन्ता मे डूबी हुई थी। उसे स्वयं सन्देह हो रहा था कि वह जीवन भर की सच्चरित्रता बिलकुल व्यर्थ तो नही हो गई?

दारोगा कृष्णचन्द्र रसिक, उदार और बड़े सज्जन मनुष्य थे। मातहतों के साथ वह भाई चारे का सा व्यवहार करते थे; किन्तु मातहतों की दृष्टि मे उनके इस व्यवहार का कुछ मूल्य न था। वह कहा करते थे कि यहां हमारा पेट नही भरता, हम इनकी भलमनसी को लेकर क्या करें—चाटें? हमें घुड़की, डाँट डपट, सख्ती सब स्वीकार है, केवल हमारा पेट भरना चाहिए। रूखी रोटिया चादी के थाल मे परोसी जायँ तो भी पूरियां न हो जायँगी।

दारोगा जी के अफसर भी उनसे प्राय: प्रसन्न न रहते। वह दूसरे थाने में जाते तो उनका बडा आदर-सत्कार होता था, उनके अहलमद, मुहर्रिर और अरदली खूब दावत उड़ाते। अहलमद को नजराना मिलता, अरदली इनाम पाता और अफसरों को नित्य डालिया मिलती पर कृष्णचन्द्र के यहां यह आदर सत्कार कहां? वह न दावत करते

थे, न डालिया ही लगाते थे। जो किसी से लेता नही, वह किसी को देगा कहा से ? दारोगा कृष्णचन्द्र की इस शुष्कता को लोग अभिमान समझते थे।

लेकिन इतने निर्लोभ होने पर भी दारोगा जी के स्वभाव में किफायत का नाम न था। वह स्वय तो शौकीन न थे लेकिन अपने घरवालो को आराम देना अपना कर्त्तव्य समझते थे। उनके सिवा घर में तीन प्रणी और थे, स्त्री और दो लडकियाँ। दारोगा जी इन लडकियो को प्राण से भी अधिक प्यार करते थे। उनके लिए अच्छे-से-अच्छे कपडे लाते और शहर से नित्य तरह-तरह की चीजे मँगाया करते। बाजार में कोई तरहदार कपड़ा देख कर उनका जी नही मानता था, लडकियों के लिए अवश्य ले आते थे। घर में सामान जमा करने की उन्हें धुन थी। सारा मकान कुर्सियो, मेजो और आलमारियो से भरा हुआ था। नगीने के कलमदान, झासी के कालीन, आगरे की दरियां बाजार मे नजर आ जाती तो उन पर लट्टू हो जाते। कोई लूट के धन पर भी इस भांति न टूटता होगा। लडकियो को पढ़ाने और सीना-पिरोना सिखाने के लिए उन्होंने एक ईसाई लेडी रख ली थी। कभी-कभी स्वय उनकी परीक्षा लिया करते थे।

गंगाजली चतुर स्त्री थी। उन्हे समझाया करती कि जरा हाथ रोक कर खर्च करो। जीवन मे यदि और कुछ नही करना है तो लड़कियो का विवाह तो करना ही पडेगा। उस समय किसके सामने हाथ फैलाते फिरोगे ? अभी तो उन्हे मखमली जूतिया पहनाते हो, कुछ इसकी भी चिन्ता है कि आगे क्या होगा ? दरोगा जी इन बातो को हँसी में उडा देते, कहते, जैसे और सब काम चलते हैं वैसे ही यह काम भी हो जायगा। कभी झुंझला कर कहते, ऐसी बात कर के मेरे ऊपर चिन्ता का बोझ मत डालो। इस प्रकार दिन बीतते चले जाते थे। दोनो लडकियाँ कमल के समान खिलती जाती थी। बडी लडकी सुमन सुन्दर, चञ्चल और अभिमानिनी थी। छोटी लडकी शान्ता भोली, गम्भीर,

सुशील थी। सुमन दूसरो से बढ़ कर रहना चाहती थी। यदि बाजार से दोनों बहनों के लिए एक ही प्रकार की साड़ियां आती तो सुमन मुंह फुला लेती थी। शान्ता को जो कुछ मिल जाता उसीमें प्रसन्न रहती।

गंगाजली पुराने विचार के अनुसार लड़कियों के ऋण से शीघ्र ही मुक्त होना चाहती थी। पर दारोगा जी कहते, यह अभी विवाह योग्य नही है। शास्त्रो मे लिखा है कि कन्या का विवाह सोलह वर्ष की आयु से पहले करना पाप है। वह इस प्रकार मन को समझाकर टालते रहते थे। समाचार पत्रों में जब वह दहेज के विरोध में बड़े बड़े लेख पढ़ते तो बहुत प्रसन्न होते। गंगाजली से कहते कि अब एक ही दो साल मे यह कुरीति मिटी जाती है। चिन्ता करने की कोई जरुरत नही। यहा तक कि इसी तरह सुमन को सोलहवां वर्ष लग गया।

अब कृष्णचन्द्र अपने को अधिक धोखा न दे सके। उनकी पूर्व निश्चिन्तता वैसी न थी जो अपनी सामर्थ्य के ज्ञान से उत्पन्न होती है। उसका मूल कारण उनकी अकर्मण्यता थी। उस पथिक की भाति जो दिन भर किसी वृक्ष के नीचे आराम से सोने के बाद सन्ध्या को उठे और सामने एक ऊँचा पहाड़ देख कर हिम्मत हार बैठे, दारोगा जी भी घबरा गये। वर की खोजमें दौडने लगे, कई जगहों से टिप्पणियाँ मँगवाई। वह शिक्षित परिवार चाहते थे। वह समझते थे कि ऐसे घरो मे लेन देन की चर्चा न होगी, पर उन्हे यह देख कर बडा आश्चर्य हुआ कि वरो का मोल उनकी शिक्षा के अनुसार है। राशि वर्ण ठीक हो जाने पर जब लेनदेन की बातें होने लगती तब कृष्णचन्द्र की आंखो के सामने अँधेरा छा जाता था। कोई चार हजार सुनाता, कोई पांच हजार और कोई इससे भी आगे बढ़ जाता। बेचारे निराश होकर लौट आते। आज छः महीने से दरोगा जी इसी चिन्ता मे पड़े हैं। बुद्धि काम नही करती। इसमे सन्देह नही कि शिक्षित सज्जनो को उनसे सहानुभूति थी; पर वह एक-न-एक ऐसी पख निकाल देते थे कि दारोगा जी को निरुत्तर हो जाना पड़ता। एक सज्जन ने कहा, महाशय, मैं स्वयं इस कुप्रथा का जानी

दुश्मन हूँ, लेकिन करूँ क्या, अभी पिछले साल लड़की का विवाह किया, दो हजार रुपये केवल दहेज में देने पड़े, दो हजार और खाने-पीने में खर्च पड़े, आप ही कहिये, यह कमी कैसे पूरी हो ?

दूसरे महाशय इनसे अधिक नीतिकुशल थे। बोले, दारोगा जी, मैंने लड़के को पाला है, सहस्त्रो रुपये उसकी पढ़ाई मे खर्च किये है। आपकी लड़की को इससे उतना ही लाभ होगा जितना मेरे लड़के को। तो आप ही न्याय कीजिये कि यह सारा भार मै अकेले कैसे उठा सकता हूँ ?

कृष्णचन्द्र को अपनी ईमानदारी और सचाई पर पश्चात्ताप होने लगा। अपनी निःस्पृहता पर उन्हें जो घमण्ड था वह टूट गया। वह सोच रहे थे कि यदि मै पाप से न डरता तो आज मुझे यो ठोकरे न खानी पड़ती। इस समय दोनो स्त्री-पुरुष चिन्ता में डूबे बैठे थे, बड़ी देर के बाद कृष्णचन्द्र बोले, देख लिया, ससार में सन्मार्ग पर चलने का यह फल होता है। यदि आज मैंने लोगो को लूट कर अपना घर भर लिया होता तो लोग मुझसे सम्बन्ध करना अपना सौभाग्य समझते; नही तो कोई सीधे मुंह बात नही करता है। परमात्मा के दरबार में यह न्याय होता है। अब दो ही उपाय हैं, या तो सुमन को किसी कगाल के पल्ले बाधू दू या कोई सोने की चिड़िया फँसाऊँ। पहली बात तो होने से रही; बस अब सोने की चिड़िया की खोज में निकलता हूँ। धर्म का मजा चख लिया, सुनीति का हाल भी देख चुका। अब लोगो के के खूब गले दबाऊँगा, खूब रिश्वतें लूगा, यही अन्तिम उपाय है। संसार यही चाहता है, और कदाचित ईश्वर भी यही चाहता है, यही सही। आज से मै भी वही करूँगा जो सब लोग करते हैं।

गंगाजली सिर झुकाये अपने पति की ये बाते सुन कर दुःखित हो रही थी। वह चुप थी, आंखों में आंसू भरे हुए थे।

२

दारोगा जी के हल्के मे एक महन्त रामदास रहते थे। वह साधुओ की एक गद्दी के महन्त थे। उनके यहा सारा कारोबार 'श्रीवाकेविहारीजी' के नाम पर होता था। 'श्री बाँकेबिहारी जी' लेनदेन करते थे और ३२ सैकडे से कम सूद न लेते थे। वही मालगुजारी वसूल करते थे, वही रेहननामे-बैनामे लिखाते थे। 'श्री बांकेविहारी जी' की रकम दवाने का किसी को साहस न होता था और न अपनी रकम के लिए कोई दूसरा आदमी उनसे कड़ाई कर सकता था ' श्री बाकेविहारीजी' को रुष्ट करके उस इलाके मे रहना कठिन था। महन्त रामदास के यहा दस बीस मोटे ताजे साधु स्थायी रूप से रहते थे। वह अखाड़े मे दण्ड पेलते, भैंस का ताजा दूध पीते, सन्ध्या को दूधिया भग छानते और गाजे चरस की चिलम तो कभी ठण्डी न होने पाती थी। ऐसे वलवान जत्थे के विरुद्ध कौन सिर उठाता?

महन्त जी का अधिकारियो मे खूब मान था। 'श्रीवांकेबिहारीजी' उन्हे खूब मोतीचूर के लड्डू और मोहनभोग खिलाते थे। उनके प्रसाद से कौन इनकार कर सकता था? ठाकुर जी ससार मे आकर ससार की रीति पर चलते थे।

महन्त रामदास जब अपने इलाके की निगरानी करने निकलते तो उनका जुलूस राजसी ठाटबाट के साथ चलता था। सबके आगे हाथी पर 'श्रीबाकेबिहारीजी' की सवारी होती थी, उसके पीछे पालकी पर महन्त जी चलते थे, उसके बाद साधुओ की सेना घोड़ो पर सवार, राम-नाम के झण्डे लिये अपनी विचित्र शोभा दिखाती थी। ऊँटो पर छोल-दारिया, डेरे शामियाने लदे होते थे, यह दल जिस गांव में जा पहुँचता था उसकी शामत आ जाती थी।

इस साल महन्त जी तीर्थयात्रा करने गए थे। वहा से आकर उन्होंने एक बड़ा यज्ञ किया था। एक महीने तक हवनकुंड जलता रहा, महीनों

तक कड़ाह न उतरे पूरे दस हजार महात्माओं का निमंत्रण था। इस यज्ञ के लिए इलाके के प्रत्येक आसामी से हल पीछे पांच रुपया चन्दा उगाहा गया था; किसी ने खुशी से दिया, किसी ने उधार लेकर जिसके पास न था उसे रुक्का ही लिखाना पड़ा। 'श्रीबांकेबिहारी जी' की आज्ञा को कौन टाल सकता था? यदि ठाकुर जी को हार माननी पड़ी तो केवल एक अहीर से जिसका नाम चेतू था। वह बूढ़ा दरिद्र आदमी था। कई साल से उसकी फसल खराब हो रही थी। थोड़े ही दिन हुए 'श्रीबांकेबिहारीजी' ने उस पर इजाफा लगान की नालिश करके उसे ऋण के बोझ से और भी दबा दिया था। उसने यह चन्दा देने से इनकार किया; यहां तक कि रुक्का भी न लिखा। ठाकुर जी ऐसे द्रोही को भला कैसे क्षमा करते? एक दिन कई महात्मा चेतू को पकड़ लाये। ठाकुरद्वारे के सामने उस पर मार पड़ने लगी। चेतू भी बिगड़ा। हाथ तो बँधे हुए थे, मुंह से लात घूसों का जवाब देता रहा और जब तक जबान बन्द न हो गई, चुप न हुआ। इतना कष्ट देकर भी ठाकुर जी को सन्तोष न हुआ। उसी रात को उसके प्राण हर लिये। प्रातःकाल चौकीदार ने थाने में रिपोर्ट की।

दारोगा कृष्णचन्द्र को मालूम हुआ, मानो ईश्वर ने बैठे बैठाये सोने की चिड़िया उनके पास भेज दी, तहकीकात करने चले।

लेकिन महन्त जी की उस इलाके में ऐसी धाक जमी हुई थी कि दारोगा जी को कोई गवाही न मिल सकी। लोग एकान्त में आकर उनसे सारा वृत्तान्त कह जाते थे, पर कोई अपना बयान न देता था।

इस प्रकार तीन-चार दिन बीत गये। महन्त जी पहले तो अकड़े रहे। उन्हें निश्चय था कि यह भेद न खुल सकेगा। लेकिन जब उन्हें पता चला कि दारोगा जी ने कई आदमियों को फोड़ लिया है तो कुछ नरम पड़े। अपने मुख्तार को दारोगा जी के पास भेजा। कुबेर की शरण ली। लेन-देन की बातचीत होने लगी। कृष्णचन्द्रने कहा, मेरा हाल तो आप लोग जानते हैं कि रिश्वत को काला नाग समझता हूं। मुख्तार

ने कहा, हां, यह तो मालूम है, किन्तु साधुसन्तों पर कृपा रखनी ही चाहिए। इसके बाद दोनो सज्जनों मे कानाफूसी हुई। मुख्तार ने कहा, नहीं सरकार, पाच हजार बहुत होते हैं, महन्त जी को आप जानते है, वह अपनी टेक पर आ जायँगे तो चाहे फासी हो ही जाय पर जौ भर न हटेंगे। ऐसा कीजिये कि उनको कष्ट न हो और आपका भी काम निकल जाय। अन्त मे तीन हजार पर बात पक्की हो गई।

पर कड़वी दवा को खरीद कर लाने, उसका काढा बनाने और उसे उठा कर पीने मे बड़ा अन्तर है। मुख्तार तो महन्त के पास गया और कृष्णचन्द्र सोचने लगे, यह मै क्या कर रहा हूँ ?

एक ओर रुपया का ढेर था और चिन्ताव्याधि से मुक्त होने की आशा दूसरी ओर आत्मा का सर्वनाश और परिणाम का भय। न हाँ करते बनता था, न नाही।

जन्म भर निर्लोभ रहने के बाद इस समय अपनी आत्मा का बलिदान करने मे दारोगा जी को बड़ा दुःख होता था। वह सोचते थे, यदि यही करना था तो आज से पचीस साल पहले ही क्यो न किया, अब तक सोने की दीवार खड़ी कर दी होती। इलाके ले लिये होते। इतने दिनो तक त्याग का आनन्द उठाने के बाद बुढ़ापे मे यह कलक ! पर मन कहता था, इसमे तुम्हारा क्या अपराध ? तुमसे जब तक निभ सका, निबाहा। भोग-विलास के पीछे अधर्म नही किया; लेकिन जब देश, काल, प्रथा और अपने बन्धुओ का लोभ तुम्हे कुमार्ग की ओर ले जा रहे हैं तो तुम्हरा दोष ? तुम्हारी आत्मा अब भी पवित्र है। तुम ईश्वर के सामने अब भी निरपराध हो। इस प्रकार तर्क कर के दरोगा जी ने अपनी आत्मा को समझा लिया।

लेकिन परिमाण का भय किसी तरह पीछा न छोडता था। उन्होने कभी रिश्वत नही ली थी। हिम्मत न खुली थी। जिसने कभी किसी पर हाथ न उठाया हो, वह सहसा तलवार का वार नही कर सकता। यदि कही बात खुल गई तो जेलखाने के सिवा और कही ठिकाना नही;

सारी नेकनामी धूल में मिल जायगी। आत्मा तर्क से परास्त हो सकती है, पर परिणाम का भय, तर्क से दूर नही होता। वह पर्दा चाहता है। दारोगा जी ने यथासम्भव इस मामले को गुप्त रक्खा। मुख्तार से ताकीद कर दी कि इस बात की भनक भी किसी के कान में न पड़ने पावे। थाने के कान्सटेबिलो और अमलो से भी सारी बाते गुप्त रखी गईं।

रात के नौ बजे थे। दारोगाजी ने अपने तीनो कान्सटेबिलो को किसी बहाने से थाने के बाहर भेज दिया था। चौकीदारो को भी रसद का सामान जुटाने के लिए इधर-उधर भेज दिया था और आप अकेले बैठे हुए मुख्तार की राह देख रहे थे। मुख्तार अभी तक नही लौटा, कर क्या रहा है? चौकीदार सब आकर घेर लेंगे तो बडी मुश्किल पड़ेगी। इसी से मैंने कह दिया था कि जल्द आना। अच्छा मान लो, जो महन्त तीन हजार पर भी राजी न हुआ तो? नहीं, इससे कम न लूगा। इससे कम में विवाह हो ही नही सकता।

दारोगाजी मन-ही-मन हिसाब लगाने लगे कि कितने रुपये दहेज में दूँगा और कितने खाने-पीने में खर्च करूँगा।

कोई आध घण्टे के बाद मुख्तार के आने की आहट मिली। उनकी छाती धड़कने लगी। चारपाई से उठ बैठे, फिर पानदान खोल कर पान लगाने लगे कि इतने में मुख्तार भीतर आया।

कृष्णचन्द्र—कहिए?

मुख्तारद्ध—महन्त जी ......

कृष्णदन्द्र ने दरवाजे की तरफ देख कर कहा, रुपये लाये या नही?

मुख्तार—जी हाँ, लाया हूँ, पर महन्त जी ने ....

कृष्णचन्द्र ने फिर चारों तरफ चौकन्नी आंखो से देख कर कहा—मै एक कौडी भी कम न करूँगा।

मुख्तार—अच्छा मेरा हक तो दीजियेगा न?

कृष्ण—अपना हक महन्त जी से लेना।

मुख्तार—पांच रुपया सैकडा तो हमारा बँधा हुआ है।

कृष्ण—इसमें से एक कौड़ी भी न मिलेगी। मैं अपनी आत्मा बेच रहा हूँ, कुछ लूट नही रहा हूँ।

मुख्तार—आपकी जैसी मरजी, पर मेरा हक मारा जाता है।

कृष्ण—मेरे साथ घर तक चलना पड़ेगा।

तुरन्त वहली तैयार हुई और दोनों आदमी उस पर बैठ कर चले। वहली के आगे-पीछे चौकीदारों का दल था। कृष्णचन्द्र उड़कर घर पहुँचना चाहते थे। गाड़ीवान को बार बार हांकने के लिए कह कर कहते, अरे क्या सो रहा है? हाके चल।

११ बजते-बजते लोग घर पहुँचे। दारोगा जी मुख्तार को लिए हुए अपने कमरे मे गये और किवाड़ बन्द कर दिये। मुख्तार ने थैली निकाली। कुछ र्गिन्नियां थी, कुछ नोट और नगद रुपये। कृष्णचन्द्र ने झट थैली ले ली और बिना देखे सुने उसे अपने सन्दूक में डाल कर ताला लगा दिया।

गांगाजली अभी तक उनकी राह देख रही थी। कृष्णचन्द्र मुख्तार को बिदा करके घर में गये। गंगाजली ने पूछा, इतनी देर क्यों की?

कृष्ण—काम ही ऐसा आ पड़ा और दूर भी बहुत है।

भोजन कर के दारोगा जी लेटे, पर नींद न आती थी। स्त्री से रुपये की बात कहते उन्हे संकोच हो रहा था। गगाजली को भी नींद न आती थी। वह बार-बार पति के मुंह की ओर देखती, मानों पूछ रही थी कि बचे या डूबे।

अन्त में कृष्णचन्द्र बोले—यदि तुम नदी के किनारे खड़ी हो और पीछे से एक शेर तुम्हारे ऊपर झपटे तो क्या करोगी?

गंगाजली इस प्रश्न का अभिप्राय समझ गई। बोली, नदी में चली जाऊँगी।

कृष्ण—चाहे डूब ही जाओ?

गंगा—हाँ डूब जाना शेर के मुह पड़ने से अच्छा है।

कृष्ण—अच्छा, यदि तुम्हारे घर में आग लगी हो और दरवाजे से

निकलने का रास्ता न हो तो क्या करोगी ?

गंगा—छत पर चढ़ जाऊँगी और नीचे कूद पड़ूँगी।

कृष्ण—इन प्रश्नों का मतलब तुम्हारी समझ में आया ?

गंगाजली ने दीनभाव से पति की ओर देख कर कहा, तब क्या ऐसी बेसमझ हूँ ?

कृष्ण—मैं कूद पड़ा हूँ। बचूँगा या डूब जाऊँगा, यह मालूम नहीं।

३

पण्डित कृष्णचन्द्र रिश्वत लेकर उसे छिपाने के साधन न जानते थे। इस विषय में अभी नौसिखुए थे। उन्हें मालूम न था कि हराम का माल अकेले मुश्किल से पचता है। मुख्तार ने अपने मन में कहा, हमीं ने सब कुछ किया और हमीं से यह चाल ! हमें क्या पड़ी थी कि इस झगड़े में पड़ते और रात दिन बैठे तुम्हारी खुशामद करते। महन्त फंसते या बचते, मेरी बला से, मुझे तो अपने साथ न ले जाते। तुम खुश होते या नाराज, मेरी बला, से, मेरा क्या बिगाड़ते ? मैंने जो इतनी दौड़-धूप की, वह कुछ आशा ही रख कर की थी।

वह दारोगा जी के पास से उठ कर सीधे थाने में आया और बातों ही बातों में सारा भण्डा फोड़ गया।

थाने के अमलों ने कहा, वाह हमसे यह चाल ! हमसे छिपा-छिपा कर यह रकम उड़ाई जाती है। मानो हम सरकार के नौकर ही नहीं है। देखें यह माल कैसे हजम होता है। यदि इस बगुला भगत को मजा न चखा दिया तो देखना।

कृष्णचन्द्र तो विवाह की तैयारियों में मग्न थे। वर सुन्दर, सुशील, सुशिक्षित था। कुछ ऊँचा और धनी। दोनों ओर से लिखा-पढ़ी हो रही थी। उधर हाकिमों के पास गुप्त चिट्ठियाँ पहुँच रही थी। उनमें सारी घटना ऐसी सफाई से बयान की गयी थी, आक्षेपों के ऐसे सबल प्रमाण दिये गए थे, व्यवस्था की ऐसी उत्तम विवेचना की गई थी कि

हाकिमों के मन में सन्देह उत्पन्न होगया। उन्होने गुप्त रीति से तहकीकात की। संदेह जाता रहा। सारा रहस्य खुल गया।

एक महीना वीत चुका था। कल तिलक जाने की साइत थी। दारोगा जी संध्या समय थाने में मसनद लगाये वैठे थे, उस समय सामने से सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस आता हुआ दिखाई दिया। उसके पीछे दो थानेदार और कई कान्सटेवल चल आ रहे थे। कृष्णचन्द्र उन्हें देखते ही घबरा कर उठे कि एक थानेदार ने बढ़ कर उन्हें गिरफ्तारी का वारण्ट दिखाया। कृष्णचन्द्र का मुख पीला पड़ गया। वह जडमूर्ति की भाति चुपचाप खड़े हो गए और सिर झुका लिया। उनके चेहरे पर भय न था, लज्जा थी। यह वही दोनो थानेदार थे, जिनके सामने वह अभिमान से सिर उठा कर चलते थे, जिन्हे वह नीच समझते थे। पर आज उन्ही के सामने वह सिर नीचा किये खडे थे। जन्म भर की नेक-नामी एक क्षणमे धूल में मिल गयी। थाने के अमलो ने मन में कहा, और अकेले-अकेले रिश्वत उडाओ।

सुपरिन्टेन्डेन्ट ने कहा,—वेल किशनचन्द्र, तुम अपने बारे में कुछ कहना चाहता है?

कृष्णचन्द्र ने सोचा—क्या कहूँ? क्या कह दूं कि मै बिल्कुल निरपराध हूँ, यह सब मेरे शत्रुओ की शरारत है, थानेवालो ने मेरी ईमानदारी से तंग आकर मुझे यहाँ से निकालने के लिए यह चाल खेली है?

पर वह पापाभिनय में ऐसे सिद्धहस्त न थे। उनकी आत्मा स्वयं अपने अपराध के बोझ से दबी जा रही थी। वह अपनी ही दृष्टि मे गिर गए थ।

जिस प्रकार विरले ही दुराचारियों को अपने कुकर्मो का दण्ड मिलता है उसी प्रकार सज्जन का दड पाना अनिवार्य है। उसका चेहरा, उसकी आँखें, उसके आकार-प्रकार, सब जिह्वा बन-बन कर उसके प्रतिकूल साक्षी देते है। उसकी आत्मा स्वयं अपना न्यायाधीश बन जाती है। सीधे मार्ग पर चलने वाला मनुष्य पेचीदा गलियो में पड़ जाने पर अवश्य राह भूल जाता है।

कृष्ण—सुनो, यह रोने धोनेका समय नहीं है। मै कानूनके पञ्जेमें फँसा हूँ और किसी तरह नही वच सकता। धैर्यसे काम लो, परमात्माकी इच्छा होगी तो फिर भेट होगी।

यह कहकर वह बाहरकी ओर चले कि दोनो लड़कियाँ आकर उनके पैरोसे चिमट गईं। गंगाजली ने दोनो हाथो से उनकी कमर पकड ली और तीनो चिल्लाकर रोने लगी।

कृष्णचन्द्र भी कातर हो गए। उन्होने सोचा, इन अवलाओ की क्या गति होगी? परमात्मन्! तुम दीनोके रक्षक हो, इनकी भी रक्षा करना।

एक क्षणमें वह अपनेको छुडाकर बाहर चले गये। गंगाजलीने उन्हें पकडनेको हाथ फैलाये, पर उसके दोनो हाथ फैले ही रह गये, जैसे गोली खाकर गिरनेवाली किसी चिडियाके दोनो पंख खुले रह जाते हैं।

४

कृष्णचन्द्र अपने कस्बे में सर्वप्रिय थे। यह खवर फैलतेही सारी वस्तीमें हलचल मच गई। कई भले आदमी उनकी जमानत करने आये लेकिन साहबने जमानत न ली।

इसके एक सप्ताह बाद कृष्णचन्द्र पर रिश्वत लेनेका अभियोग चलाया गया। महन्त रामदास भी गिरफ्तार हुए।

दोनों मुकदमे महीने भरतक चलते रहे। हाकिमने उन्हें दौरे सुपुर्द कर दिया।

वहाँ भी एक महीना लगा। अन्तमें कृष्णचन्द्रको पाँच वर्षकी कैद हुई। महन्तजी सात वर्षके लिए गये और दोनों चेलोको कालेपानीका दण्ड मिला।

गंगाजलीके एक सगे भाई पण्डित उमानाथ थे। कृष्णचन्द्रकी उनसे जरा भी न बनती थी। वह उन्हें धूर्त्त और पाखंडी कहा करते, उनके

लम्बे तिलककी चुटकी लेते। इसलिए उमानाथ उनके यहाँ बहुत कम आते थे।

लेकिन इस दुर्घटनाका समाचार पाकर उमानाथसे न रहा गया। वह आकर अपनी बहन और भांजियोंको अपने घर ले गए। कृष्णचन्द्र को सगा भाई न था। चाचाके दो लडके थे, पर वह अलग रहते थे। उन्होंने बाततक न पूछी।

कृष्णचन्द्रने चलते-चलते गगाजलीको मना किया था कि रामदास के रुपयोंमें से एक कौडी भी मुकदमेमे न खर्च करना। उन्हे निश्चय था कि मेरी सजा अवश्य होगी। लेकिन गगाजलीका जी न माना। उसने दिल खोलकर रुपये खर्च किए। वकील लोग अन्त समय तक यही कहते रहे कि वे छूट जायँगे।

जजके फैसलेकी हाईकोर्टमे अपील हूई। महन्तजी की सजामे कमी न हुई। पर कृष्णचन्द्रजीकी सजा घट गई। पाँचके चार वर्ष रह गए।

गंगाजली आनेको तो मैके आई, पर अपनी भूलपर पछताया करती थी। यह वह मैका न था जहाँ उसने अपने बालकपनकी गुडियाँ खेली थीं, मिट्टी के घरौंदे बनाये थे, माता पिताकी गोदमे पली थी। माता पिताका स्वर्गवास हो चुका था, गाँवमे वह आदमी न दिखाई देते थे। यहाँतक कि पेडोकी जगह खेत और खेतोकी जगह पेड़ लगे हुए थे। वह अपना घर भी मुश्किलसे पहचान सकी और सबसे दुःखकी बात यह थी कि वहाँ उसका प्रेम या आदर न था। उसकी भावज जाह्नवी उससे मुंह फुलाये रहती। जाह्नवी अब अपने घर बहुत कम रहती। पड़ोसियोके यहाँ बैठी हुई गंगाजलीका दु खडा रोया करती। उसके दो लड़कियाँ थीं। वह भी सुमन और शान्तासे दूर-दूर रहतीं।

गंगाजलीके पास रामदासके रुपयो मे से कुछ न बचा था। यही चार पाँच सौ रुपये रह गये थे जो उसने पहले काट कपटकर जमा किए थे। इसलिए वह उमानाथसे सुमनके विवाहके विषयमें कुछ न कहती। यहाँ

मदा वहार होती है। वही हँसी-दिल्लगी, वही तेल फुलेलका शौक। लोग जवान ही रहते है और जवान ही मर जाते है।

गगा—कुल कैसा है ?

उमा—वहुत ऊँचा। हमसे भी दो विस्वे वडा है। पसन्द है न ?

गगाजलीने उदासीनभावसे कहा, जब तुम्हें पसन्द है तो मुझे भी पसन्द ही है।

५

फागनमे सुमनका विवाह हो गया। गगाजली दामादको देखकर वहुत रोई। उसे ऐसा दुःख हुआ, मानो किसीने सुमनको कुएँमे डाल दिया।

सुमन ससुराल आई तो यहाकी अवस्था उससे भी वुरी पाई जिसकी उसने कल्पना की थी। मकानमे केवल दो कोठरिया और एक सायवान। दीवारोमे चारो ओर लोनी लगी हुई थी। वाहरसे नालियोंकी दुर्गन्ध आती रहती थी, धूप और प्रकाशका कही गुजर नही। इस घरका किराया ३) महीना देना पड़ता था।

सुमनके दो महीने तो आरामसे कटे। गजाधरकी एक वूढी फुआ घरका सारा काम-काज करती थी। लेकिन गर्मियों में शहरमे हैजा फैला। और वुढिया चलवसी। अव वह वडे फेरमे पड़ी। चौका वरतन करनेके लिए महरियां ३) रुपयासे कमपर राजी न होती थी। दो दिन घरमें चूल्हा नही जला। गजाधर सुमनसे कुछ न कह सकता था। दोनो दिन वाजारसे पूरिया लाया, वह सुमनको प्रसन्न रखना चाहता था। उसके रूप-लावण्यपर मुग्ध हो गया था। तीसरे दिन वह घडी रात को उठा। और सारे वरतन माज डाले, चौका लगा दिया, कलसे पानी भर लाया। सुमन जव सोकर उठी तो यह कौतुक देखकर दग रह गई। समझ गई कि इन्हीने सारा काम किया है। लज्जाके मारे उसने कुछ न पूछा। सन्ध्याको उसने आप ही सारा काम किया। वरतन मांजती थी और रोती जाती थी।

पर थोड़े ही दिनोंमें उसे इन कामोंकी आदत पड़ गई। उसे अपने जीवनमें आनन्द सा-अनुभव होने लगा। गजाधरको ऐसा मालूम होता था मानों जग जीत लिया है। अपने मित्रोंसे सुमनकी प्रशंसा करता फिरता। स्त्री नहीं है, देवी है। इतने बड़े घरकी लड़की, घरका छोटे-से छोटा काम भी अपने हाथसे करती है। भोजन तो ऐसा बनाती है कि दाल रोटीमें पकवानका स्वाद आ जाता है। दूसरे महीनेमे उसने वेतन पाया तो सबका सब सुमनके हाथोंमे रख दिया। सुमनको आज स्वच्छन्दताका आनन्द प्राप्त हुआ। अब उसे एक एक पैसेके लिए किसीके सामने हाथ न फैलाना पड़ेगा। वह इन रुपयोंको जैसे चाहे खर्च कर सकती है। जो चाहे खा पी सकती है।

पर गृह-प्रबन्धमे कुशल न होनेके कारण वह आवश्यक और अनावश्यक खर्चका ज्ञान न रखती थी। परिणाम यह हुआ कि महीनेमें दस दिन बाकी थे और सुमनने सब रुपये खर्च कर डाले थे। उसने गृहिणी बननेकी नही, इन्द्रियोंके आनन्दभोगकी शिक्षा पाई थी। गजाधरने यह सुना तो सन्नाटेमें आ गया। अब महीना कैसे कटेगा ? उसके सिरपर एक पहाड-सा टूट पड़ा। इसकी शंका उसे कुछ पहले ही हो रही थी। सुमनसे तो कुछ न बोला, पर सारे दिन उसपर चिन्ता सवार रही, अब बीचमे रुपये कहाँसे आवें ?

गजाधरने सुमनको घरकी स्वामिनी बना तो दिया था, पर वह स्वभावसे कृपण था। जलपानको जलेबियाँ उसे विषके समान लगती थी। दालमें घी देखकर उनके हृदयमे शूल होने लगता। वह भोजन करता तो बटुलोकी ओर देखता कि कही अधिक तो नहीं बना है। दरवाजेपर दाल चावल फेंका देखकर उसके शरीरमे ज्वाला-सी लग जाती थी, पर सुमनकी मोहनी सूरतने उसे वशीभूत कर लिया था। मुंहसे कुछ न कह सकता।

पर आज जब कई आदमियोंसे उधार माँगनेपर उसे रुपये न मिले तो वह अधीर हो गया। घरमें आकर बोला, रुपये तो तुमने सब खर्च कर दिये. अब बताओ कहाँसे आवें ?

सुमन---मैंने कुछ उडा तो नही दिए।

गजाधर---उड़ाये नही, पर यह तो तुम्हें मालूम था कि इसीमें महीनेभर चलाना है। उसी हिसावसे खर्च करना था।

सुमन---उतने रुपयोमें वरकत थोडे ही हो जायगी।

गाजाधर---तो मैं डाका तो नही मार सकता।

वातो वातोंमें झगड़ा हो गया। गजाधरने कुछ कठोर वाते कहीं। अन्तको सुमनने अपनी हँसुली गिरवी रखनेको दी और गजाधर भुनभुनाता हुआ लेकर चला गया।

लेकिन सुमनका जीवन सुखमें कटा था। उसे अच्छा खाने, अच्छा पहिननेकी आदत थी। अपने द्वारपर खोमचेवालोकी आवाज सुनकर उससे रहा न जाता। अवतक वह गजाधरको भी खिलाती थी। अवसे अकेली ही खा जाती। जिह्वा रस भोगके लिए पतिसे कपट करने लगी।

धीरे-धीरे सुमनके सौन्दर्यकी चर्चा मुहल्लेमे फैली। पास-पड़ोसकी स्त्रियाँ आने लगी। सुमन उन्हें नीच दृष्टिसे देखती; उनसे खुलकर न मिलती। पर उसके रीति व्यवहार में वह गुण था जो ऊँचे कुलो में स्वाभाविक होता है। पड़ोसिनोने शीघ्र ही उसका आधिपत्य स्वीकार कर लिया। सुमन उनके वीचमें रानी मालूम होती थी। उसकी सगर्वा प्रकृतिको इसमें अत्यन्त आनन्द प्राप्त होता था। वह उन स्त्रियों के सामने अपने गुणोको वढाकर दिखाती। वह अपने भाग्यको रोती, सुमन अपने भाग्यको सराहती। वे किसीकी निन्दा करती तो सुमन उन्हें समझाती। वह उनके सामने रेशमी साडी पहनकर वैठती, जो वह मैकेसे लाई थी। रेशमी जाकट खूंटीपर लटका देती। उनपर इस प्रदर्शनका प्रभाव सुमनकी वातचीतसे कही अधिक होता था। वह वस्त्राभूपणके विपयमे उसकी सम्मतिको वड़ा महत्व देती। नये गहने वनवाती तो सुमनसे सलाह लेती, साडियाँ लेतीं तो पहले सुमनको अवश्य दिखा लेती। सुमन ऊपरसे उन्हें निष्काम भावसे सलाह देती, पर उसे मनमें वड़ा दुःख होता। वह सोचती

यह सब नये नये गहने बनवाती है, नये-नये कपड़े लेती है और यहाँ रोटियोंके लाले हैं। क्या संसारमें मैं ही सबसे अभागिनी हूँ? उसने अपने घर यही सीखा था कि मनुष्यको जीवनमें सुख भोग करना चाहिए। उसने कभी वह धर्मचर्चा न सुनी थी, वह धर्म-शिक्षा न पाई थी, जो मनमें सन्तोषका बीजारोपण करती है। उसका हृदय असन्तोषसे व्याकुल रहने लगा।

गजाधर इन दिनों बड़ी मेहनत करता। कारखानेसे लौटते ही एक दूसरी दूकानपर हिसाब-किताब लिखने चला जाता था। वहाँसे ८ बजे रातको लौटता। इस कामके लिए उसे ५) और मिलते थे। पर उसे अपनी आर्थिक दशामें कोई अन्तर न दिखाई देता था। उसकी सारी कमाई खाने पीनेमें उड़ जाती थी। उसका सञ्चयशील हृदय इस 'खा पी बराबर' दशामें बहुत दुःखी रहता था। उसपर सुमन उसके सामने अपने फूटे कर्मका रोना रो-रोकर उसे और भी हताश कर देती थी। उसे स्पष्ट दिखाई देता था कि सुमनका हृदय मेरी ओरसे शिथिल होता जाता है। उसे यह न मालूम था कि सुमन मेरी प्रेम-रसपूर्ण बातोंसे मिठाईके दोनोंको अधिक आनन्दप्रद समझती है। अतएव वह अपने प्रेम और परिश्रमसे फल न पाकर, उसे अपने शासनाधिकारसे प्राप्त करनेकी चेष्टा करने लगा। इस प्रकार रस्सीमें दोनों ओरसे तनाव होने लगा।

हमारा चरित्र कितना ही दृढ़ हो, पर उसपर संगतिका असर अवश्य होता है। सुमन अपने पड़ोसियोंको जितनी शिक्षा देती थी उससे अधिक उनसे ग्रहण करती थी। हम अपने गार्हस्थ्य जीवनकी ओरसे कितने बेसुध हैं। उसके लिए किसी तैयारी किसी शिक्षाकी जरूरत नहीं समझते। गुड़ियाँ खेलनेवाली बालिका, सहेलियोंके साथ विहार करनेवाली युवती, गृहिणी बननेके योग्य समझी जाती है। अल्हड़ बछड़ेके कन्धेपर भारी जुआ रख दिया जाता है। ऐसी दशामें यदि हमारा गार्हस्थ्य जीवन आनन्दमय नहो तो कोई आश्चर्य नहीं। जिन महिलाओंके साथ सुमन उठती-बैठती थी, वे अपने पतियोंको इन्द्रियसुखका यन्त्र

समझती थीं। पति, चाहे जैसे हो, अपनी स्त्रीको सुन्दर आभूषणोसे. उत्तम वस्त्रोंस सजावे, उसे स्वादिष्ट पदार्थ खिलावे। यदि उसमें वह सामर्थ्य नहीं है तो वह निखट्टू है, अपाहिज है, उसे विवाह करनेका कोई अधिकार नही था, वह आदर और प्रेमके योग्य नही। सुमनने भी यही शिक्षा प्राप्त की और गजाधरप्रसाद जब कभी उसके किसी कामसे नाराज होते तो उन्हें पुरुषोके कर्त्तव्यपर एक लम्वा उपदेश सुनना पडता था।

उस मुहल्लेमे रसिक युवकों तथा शोहदोकी भी कमी न थी। स्कूल से आते हुए युवक सुमनके द्वारकी ओर टकटकी लगाते हुए चले जाते। शोहदे उधरसे निकलते तो राधा और कान्हाके गीत गाने लगते। सुमन कोई काम करती हो, पर उन्हें चिककी आड़से एक झलक दिखा देती। उसके चञ्चल हृदयको इस ताक-झाँकमे असीम आनन्द प्राप्त होता था। किसी कुवासनासे नही, केवल अपनी यौवनकी छटा दिखाने के लिए, केवल दूसरोके हृदयपर विजय पानेके लिए वह यह खेल खेलती थी।

३

सुमनके घरके सामने भोली नामकी एक वेश्याका मकान था। भोली नित नये सिंगार करके अपने कोठेके छज्जेपर वैठती। पहर राततक उसके कमरेसे मधुर गानकी ध्वनि आया करती। कभी-कभी वह फिटन पर हवा खाने जाया करती। सुमन उसे घृणाकी दृष्टिसे देखती थी।

सुमनने सुन रखा था कि वेश्याएँ अत्यन्त दुश्चरित्र और कुलटा होती है। वह अपने कौशलसे नवयुवकोको अपने मायाजालमें फँसा लिया करती है। कोई भलामानुस उनसे वातचीत नही करता, केवल शोहदे रातको छिपकर उनके यहाँ जाया करते है। भोलीने कई वार उसे चिककी आड़में खडे देखकर इशारे से वुलाया था, पर सुमन उससे वोलनेमे अपना अपमान समझती। वह अपनेको उससे वहुत श्रेष्ठ समझती थी। मै दरिद्र सही, दीन सही पर अपनी मर्यादापर दृढ़

हूँ, किसी भलेमानुसके घरमें मेरी रोक तो नही, कोई मुझे नीच तो नहीं समझता। वह कितना ही भोग-विलास करे पर उसका कही आदर तो नही होता। बस, अपने कोठेपर बैठी अपनी निर्लज्जता और अधर्मका फल भोगा करे। लेकिन सुमनको शीघ्र ही मालूम हुआ कि मैं इसे जितनी नीच समझती हूँ, उससे वह कही ऊँची है।

आषाढके दिन थे। गरमीके मारे सुमनका दम फूल रहा था सन्ध्याको उसे किसी तरह न रहा गया। उसने चिक उठा दी और द्वारपर बैठी पंखा झल रही थी। देखती क्या है कि भोली बाईके दरवाजेपर किसी उत्सवकी तैयारियाँ हो रही हैं। भिश्ती पानीका छिड़काव कर रहे थे। आँगनमें एक शामियाना ताना जा रहा था। उसे सजानेके लिए बहुतसे फूल-पत्ते रखे हुए थे। शीशेके सामान ठेलोपर लदे चले आते थे। फर्श बिछाया जा रहा था। बीसो आदमी इधर-से-उधर दौड़ते फिरते थे, इतनेमें भोलीकी निगाह उस घरपर गई। सुमनके समीप आकर बोली, आज मेरे यहाँ मौलूद है। देखना चाहो तो परदा करा दूँ।

सुमनने बेपरवाहीसे कहा—मैं यही बैठे-बैठे देख लूगी।

भोली—देख तो लोगी, पर सुन न सकोगी। हर्ज क्या है, ऊपर परदा करा दूँ?

सुमन—मुझे सुननेकी उतनी इच्छा नहीं है।

भोलीने उसकी ओर एक करुण सूचक दृष्टिसे देखा और मनमें कहा, यह गँवारिन अपने मनमें न जाने क्या समझे बैठी है। अच्छा, आज तू देख ले कि मैं कौन हूँ? वह बिना कुछ कहे चली गयी।

रात हो रही थी। सुमनका चूल्हेके सामने जानेको जी न चाहता था। बदनमें योंही आग लगी हुई है। आँच कैसे सही जायगी, पर सोच-विचारकर उठी। चूल्हा जलाया खिचड़ी डाली और फिर आकर वहाँ तमाशा देखने लगी। आठ बजते-बजते शामियाना गैसके प्रकाशसे जगमगा उठा। फूल-पत्तोकी सजावट उसकी शोभा को और भी बढ़ा

रही थी। चारो ओरसे दर्शक आने लगे। कोई बाइसिकिलपर आता था, कोई टमटमपर, कोई पैदल, थोड़ी देरमें दो तीन फिटने भी आ पहुँची और उनमेंसे कई बाबू लोग उतर पडे। एक घण्टेमें सारा आंगन भर गया। कई सौ मनुष्योका जमाव हो गया। फिर मौलाना साहबकी सवारी आई। उनके चेहरेसे प्रतिभा झलक रही थी। वह सजे हुए सिंहासन-पर मसनद लगाकर बैठ गये और मौलूद होने लगा। कई आदमी मेहमानोका स्वागत-सत्कार कर रहे थ। कोई गुलाब छिडक रहा था, कोई खासदान पेश करता था। सभ्य पुरुषो का ऐसा समूह सुमनने कभी न देखा था।

नौ बजे गजाधरप्रसाद आये। सुमनने उन्हे भोजन कराया। भोजन करके गजाधर भी जाकर उसी मण्डलीमें बैठे। सुमनको तो खानेकी भी सुध न रही। बारह बजे राततक वह वही बैठी रही—यहांतक कि मौलूद समाप्त हो गया। फिर मिठाई बँटी और बारह बजे सभा विसर्जित हुई। गजाधर घरमे आये तो सुमनने कहा, यह सब कौन लोग बैठे हुए थे ?

गजाधर—मैं सबको पहचानता थोडे ही हूँ। पर भले-बुरे सभी थे। शहर के कई रईस भी थे।

सुमन—क्या यह लोग वेश्याके घर आनेमे अपना अपमान नही समझते ?

गजाधर—अपमान समझते तो आते ही क्यो ?

सुमन—तुम्हें तो वहाँ जाते हुए सँकोच हुआ होगा ?

गजाधर—जब इतने भलेमानुस बैठे हुए थे तो मुझे क्यो सँकोच होने लगा। वह सेठजी भी आये हुए थे जिनके यहाँ मै शामको काम करने जाया करता हूँ।

सुमनने विचारपूर्ण भावसे कहा,—मैं समझती थी कि वेश्याओको लोग बडी घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं।

गजाधर—हाँ, ऐसे मनुष्य भी है, गिने-गिनाये। पर अंगरेजी शिक्षाने लोगोंको उदार बना दिया है। वेश्याओ का अब उतना तिर-स्कार नही किया जाता। फिर भोली बाईका शहरमें बड़ा मान है।

आकाशमे वादल छा रहे थे। हवा वन्द थी। एक पत्ती भी न हिलती थी। गजाधर प्रसाद दिन भरके थके हुए थे। चारपाईपर जाते ही निद्रामें निमग्न हो गये, पर सुमनको वहुत देर तक नीद न आई।

दूसरे दिन सन्ध्याको जव फिर चिक उठाकर वैठी तो उसने भोलीको छज्जेपर वैठे देखा। उसने वरामदेमे निकलकर भोलीसे कहा, रात तो आपके यहाँ वड़ी धूम थी।

भोली समझ गई कि मेरी जीत हुई! मुस्कुराकर वोली, तुम्हारे लिए शीरनी भेज दूं? हलवाईकी वनाई हुई है। ब्राह्मण लाया है।

सुमनने सकोचसे कहा, भिजवा देना।

७

सुमनको ससुराल आये डेढ़ सालके लगभग हो चुका था, पर उसे मैके जानेका सौभाग्य न हुआ था। वहाँसे चिट्ठियाँ आती थी। सुमन उत्तरमे अपनी माँको समझाया करती, मेरी चिन्ता मत करना, मै वहुत आनन्दसे हूँ, पर अव उसके उत्तर अपनी विपत्तिकी कथाओसे भरे होते थे। मेरे जीवनके दिन रो-रोकर कट रहे है। मैंने आपलोगो का क्या विगाडा था कि मुझे इस अन्धे कुएँमे ढकेल दिया। यहाँ न रहनेको घर है, न पहिननेको वस्त्र, न खानेको अन्न। पशुओंकी भांति रहती हूँ।

उसने अपनी पडोसिनोसे मैकेका वखान करना छोड दिया। कहाँ तो उनसे अपनी पति की सराहना किया करती थी, कहाँ अव उसकी निन्दा करने लगी। मेरा कोई पूछनेवाला नही है। घरवालोने समझ लिया कि मर गई। घरमें सब कुछ है; पर मेरे किस कामका? वह समझते होगे, यहाँ मै फूलोंकी सेजपर सो रही हूँ और मेरे ऊपर जो वीत रही है वह मै ही जानती हूँ।

गजाधरप्रसादके साथ उसका वर्ताव पहलेसे कही रूखा हो गया। वह उन्हीको अपनी इस दशाका उत्तरदाता समझती थी। वह देरमे सोकर उठती, कई दिन घरमें झाड़ू नहीं देती। कभी कभी गजाधरको

विना भोजन किए कामपर जाना पडता। उसकी समझमे न आता कि यह क्या मामला है, यह कायापलट क्यो हो गई है।

सुमनको अपना घर अच्छा न लगता। चित्त हर घडी उचटा रहता। दिन दिनभर पड़ोसिनोंके घर वैठी रहती।

एक दिन गजाधर आठ वजे लौटे तो घरका दरवाजा वन्द पाया। अन्धेरा छाया हुआ था। सोचने लगे, रातको वह कहाँ गई है? अव यहाँतक नौवत पहुँच गई? किवाड खटखटाने लगे कि कही पड़ोसमे होगी तो सुनकर चली आवेगी। मनमे निश्चय कर लिया था कि आज उसकी खवर लूंगा। सुमन उस समय भोली वाईके कोठेपर वैठी हुई वातें कर रही थी। भोलीने आज उसे वहुत आग्रह करके वुलाया था। सुमन इनकार कैसे करती? उसने अपने दरवाजेका खटखटाना सुना तो घवराकर उठ खड़ी हुई और भागी हुई अपने घर आई। वातो मे उसे मालूम ही न हुआ कि कितनी रात चली गई। उसने जल्दी से किवाड खोले, चटपट दीया जलाया और चूल्हेमें आग जलाने लगी। उसका मन अपना अपराध स्वीकार कर रहा था। एकाएक गजाधरने क्रुद्ध भावसे कहा, तुम इतनी राततक वहाँ वैठी क्या कर रही थी? क्या लाज शर्म विलकुल घोलकर पी ली है?

सुमनने दीन भावसे उत्तर दिया—उसने कई वार वुलाया तो चली गई। कपडे उतारो, अभी खाना तैयार हुआ जाता है। आज तुम और दिनोसे जल्दी आये हो।

गजाधर—खाना पीछे वनाना, मै ऐसा भूखा नही हूँ। पहले यह वताओ कि तुम वहाँ मुझसे पूछे विना गई क्यो? क्या तुमने मुझे विलकुल मिट्टीका लोदा ही समझ लिया है?

सुमन—सारे दिन अकेले इस कुप्पीमें वैठा भी तो नही रहा जाता।

गजाधर—तो इसलिए अव वेश्याओसे मेलजोल करोगी? तुम्हे अपनी इज्जत आवरूका भी कुछ विचार है?

सुमन—क्यों, भोलीके घर जानेमे कोई हानि है ? उसके घर तो बड़े-बड़े लोग आते हैं, मेरी क्या गिनती है ।

गजाधर—वड़े वड़े भले ही आवे, लेकिन तुम्हारा वहाँ जाना वड़ी लज्जाकी वात है । मैं अपनी स्त्रीको वेश्यासे मेलजोल करते नही देख सकता । तुम क्या जानती हो कि जो वड़े-वड़े लोग उसके घर आते हैं यह कौन लोग हैं ? केवल धनसे कोई वड़ा थोडे ही हो जाता है ? धर्मका महत्व कहीं धनसे वढ़कर है । तुम उस मौलूदके दिन जमाव देखकर धोखेमे आ गई होगी, पर यह समझ लो कि उनमेंसे एक भी सज्जन पुरुष नही था । मेरे सेठजी लाख धनी हों पर उन्हे मै अपनी चौखट न लाँघने दूँगा । यह लोग धनके घमण्डमें धर्मकी परवाह नही करते । उनके आनेसे भोली पवित्र नही हो गई है । मै तुम्हे सचेत कर देता हूँ कि आजसे फिर कभी उधर मत जाना, नही तो अच्छा न होगा ।

सुमनके मनमें वात आ गई ठीक ही है, मै क्या जानती हूँ कि वह कौन लोग थे । धनी लोग तो वेश्याओ के दास हुआ ही करते हैं । यह वात रामभोली भी कह रही थी । मुझे वड़ा धोखा हो गया था ।

सुमनको इस विचार से वड़ा सन्तोष हुआ । उसे विश्वास हो गया कि वे लोग नीच प्रकृतिके विषय-वासनावाले मनुष्य थे । उसे अपनी दशा अव उतनी दुःखदायी न प्रतीत होती थी । उसे भोलीसे अपने को ऊँचा समझनेके लिए एक आधार मिल गया था ।

सुमनकी धर्मनिष्ठा जागृत हो गई । वह भोलीपर अपनी धार्मिकता का सिक्का जमानेके लिए नित्य गंगा स्नान करने लगी । एक रामायण मँगवाई और कभी-कभी अपनी सहेलियोंको उसकी कथाएँ सुनाती । कभी अपने आप उच्च स्वरमे पढ़ती । इससे उसकी आत्माको तो क्या शान्ति होती, पर मनको वहुत सन्तोष होता था । चैत का महीना था । रामनौमीके दिन सुमन कई सहेलियोके साथ एक बड़े मन्दिरमें जन्मोत्सव देखने गई । मन्दिर खूव सजाया हुआ था । विजली वत्तियोंसे दिनका-सा प्रकाश हो रहा था, वड़ी भीड थी । मन्दिरके

सुमनने सावधान होकर उत्तर दिया, उसमे कोई छूत तो नही लगी है ! शीलस्वभावमें वह किसीसे घटकर नही, मान-मर्यादामे किसीसे कम नही, फिर उससे बातचीत करनेमें मेरी क्या हेठी हुई जाती है ? वह चाहे तो हम जैसोको नौकर रख ले।

गजाधर—फिर तुमने वही बेसिर-पैरकी बातें की। मान-मर्यादा धनसे नहीं होती।

सुमन—पर धर्म से तो होती है ?

गजाधर—तो वह बडी धर्मात्मा है ?

सुमन—यह भगवान जानें, पर धर्मात्मा लोग उसका आदर करते है। अभी रामनवमीके उत्सवमें मैने उन्हें बडे-बडे पण्डितो और धर्मात्माओकी मण्डलीमें गाते देखा। कोई उससे घृणा नही करता था। सब उसका मुह देख रहे थे। लोग उसका आदर सत्कार ही नही करते थे, बल्कि उससे बातचीत करनेमें अपना अहोभाग्य समझते थे। मनमें वह उससे घृणा करते थे या नही, यह ईश्वर जाने, पर देखनेमे तो उस समय भोली ही भोली दिखाई देती थी। संसार तो व्यवहारोको ही देखता है, मनकी बात कौन किसकी जानता है।

गजाधर—तो तुमने उन लोगोके बड़े-बड़े तिलक छापे देखकर ही उन्हें धर्मात्मा समझ लिया ? आजकल धर्म तो धूर्तोंका अड्डा बना हुआ है। इस निर्मल सागरमें एकसे-एक मगर-मच्छ पड़े हुए है। भोले-भाले भक्तोंको निगल जाना उनका काम है। लम्बी लम्बी जटाएँ, लम्बे-लम्बे तिलक छापे और लम्बी-लम्बी दाढियाँ देखकर लोग धोखेमें आ जाते हैं, पर वह सबके सब महापाखण्डी, धर्मके उज्ज्वल नामको कलंकित करनेवाले, धर्मके नामपर टका कमानेवाले, भोग-विलास करनेवाले पापी हैं। भोलीका आदर सम्मान उनके यहाँ न होगा तो किसके यहाँ होगा ?

सुमनने सरल भावसे पूछा, फुसला रहे हो या सच कह रहे हो ?

गजाधरने उसकी ओर करुण दृष्टिसे देखकर कहा, नही सुमन, वास्तवमें यही बात है। हमारे देशमें सज्जन मनुष्य बहुत कम है, पर

अभी देश उनसे खाली नही है। वह दयावान होते है, सदाचारी होते है, सदा परोपकारमे तत्पर रहते है। भोली यदि अप्सरा बनकर आवे तो वह उसकी ओर आँख उठाकर भी न देखेगे।

सुमन चुप हो गयी। वह गजाधर की बातोंपर विचार कर रही थी।

९

दूसरे दिनसे सुमनने चिकके पास खड़ा होना छोड दिया। खोचे वाले आते और पुकारकर चले जाते। छैले गजल गाते हुए निकल जाते। चिककी आड़मे अब उन्हे कोई न दिखाई देती थी। भोलीने कई बार बुलाया, लेकिन सुमनने बहाना कर दिया कि मेरा जी अच्छा नही है। दो-तीन बार वह स्वयं आई, पर सुमन उससे खुलकर न मिली।

सुमनको यहाँ आये अब दो साल हो गए थे। उसकी रेशमी साड़ियाँ फट चली थी। रेशमी जाकटे तार-तार हो गई थी। सुमन अब अपनी मंडलीकी रानी न थी। उसकी बाते उतने आदरसे न सुनी जाती थी। उसका प्रभुत्व मिटता जाता था। उत्तम वस्त्रविहीन होकर वह अपने उच्चासनसे गिर गई थी। इसलिए वह पडोसिनोके घर भी न जाती। पडोसिनोका आना जाना भी कम हो गया था। सारे दिन अपनी कोठरीमें पड़ी रहती। कभी कुछ पढ़ती, कभी सोती।

बन्द कोठरीमे पड़े-पड़े उसका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। सिरमें पीडा हुआ करती। कभी बुखार आ जाता, कभी दिलमे धडकन होने लगती। मन्दाग्निके लक्षण दिखाई देने लगे। साधारण कामोसे भी जी घबराता, शरीर क्षीण हो गया और कमलका-सा वदन मुरझा गया।

गजाधरको चिन्ता होने लगी। कभी-कभी वह सुमनपर झुँझलाता और कहता, जब देखो पड़ी रहती है। जब तुम्हारे रहनेसे मुझे इतना भी सुख नही कि ठीक समयपर भोजन मिल जाय तो तुम्हारा रहना न रहना दोनो बराबर है, पर शीघ्र ही उसे सुमनपर दया आ जाती। वह अपनी स्वार्थपरतापर लज्जित होता।

उसे धीरे-धीरे ज्ञान होने लगा कि सुमनके सारे रोग अपवित्र वायुके कारण हैं। कहाँ तो उसे चिकके पास खड़े होनेसे मना किया करता था, मेलोंमें जाने और गंगास्नान करने से रोकता था, कहाँ अब स्वयं चिक उठा देता और सुमनको गंगा स्नान करनेके लिए ताकीद करता। उसके आग्रहसे सुमन कई दिन लगातार स्नान करने गई और उसे अनुभव हुआ कि मेरा जी कुछ हल्का हो रहा है। फिर तो वह नियमित रूपसे नहाने लगी। मुरझाया हुआ पौधा पानी पाकर फिर लहलहाने लगा।

माघका महीना था। एक दिन सुमनकी कई पडोसिनें भी उसके साथ नहाने चलीं। मार्गमें बेनी-बाग पड़ता था। उसमें नाना प्रकारके जीव-जन्तु पले हुए थे। पक्षियोंके लिए लोहेके पतले तारोंसे एक विशाल गुम्बद बनाया गया था। लौटती बार सबकी सलाह हुई कि बागकी सैर करनी चाहिए। सुमन तत्काल ही लौट आया करती थी, पर आज सहेलियोंके आग्रहसे उसे भी बागमें जाना पड़ा। सुमन बहुत देरतक वहाँके अद्भुत जीवधारियोंको देखती रही। अन्तको वह थककर एक बेंचपर बैठ गयी। सहसा उसके कानमें आवाज आई, अरे यह कौन औरत बेंचपर बैठी है? उठ वहाँसे। क्या सरकारने तेरे ही लिए बेंच रख दी है?

सुमनने पीछे फिरकर कातर नेत्रोंसे देखा। बागका रक्षक खड़ा डाँट बता रहा था।

सुमन लज्जित होकर बेंचपरसे उठ गई और इस अपमानको भुलानेके लिए चिड़ियोंको देखने लगी। मनमें पछता रही थी कि कहाँसे मैं इस बेंचपर बैठी। इतनेमें एक किरायेकी गाड़ी आकर चिड़ियाघरके सामने रुकी। बागके रक्षकने दौड़कर गाडीके पट खोले। दो महिलाएँ उतर पड़ीं। उनमेंसे एक वही सुमनकी पडोसिन भोली थी। सुमन एक पेड़की आड़में छिप गई और वह दोनों स्त्रियाँ बागकी सैर करने लगीं। उन्होंने बन्दरोंको चने खिलाये, चिड़ियोंको दाने चुगाये, कछुएकी पीठपर खड़ी हुईं; फिर सरोवरमें मछलियोंको देखने चली गयीं। रक्षक उनके पीछे-पीछे सेवकोंकी भाँति चल रहा था। वे सरोवरके किनारे मछलियोंकी क्रीड़ा देख रही

थी; तबतक रक्षक ने दौड़कर दो गुलदस्ते बनाये और उन महिलाओको भेट किये। थोड़ी देर बाद वह दोनों आकर उसी बेंचपर बैठगयी, जिसपरसे सुमन उठा दी गई थी। रक्षक एक किनारे अदबसे खड़ा था। यह दशा देखकर सुमनकी आँखोंसे क्रोधके मारे चिनगारियाँ निकलने लगी। उसके एक-एक रोमसे पसीना निकल आया। देह तृणके समान काँपने लगी। हृदयमे अग्निकी एक प्रचड ज्वाला दहक उठी। वह अञ्चलमे मुँह छिपाकर रोने लगी। ज्योंही दोनो वेश्याएँ वहाँसे चली गयी, सुमन सिंहिनी की भांति लपककर रक्षकके सम्मुख आ खडी हुई और क्रोधसे काँपती हुई बोली, क्यो जी, तुमने मुझे तो बेंचपर से उठा दिया जैसे तुम्हारे बाप ही की है, पर उन दोनों राड़ोसे कुछ न बोले ?

रक्षकने अपमानसूचक भावसे कहा, वह और तुम बराबर ! आगपर घी जो कुछ करता है वह इस वाक्यने सुमनके हृदय पर किया। ओठ चबाकर बोली, चुप रह मूर्ख ! टकेके लिए वेश्याओकी जूतियाँ उठाता है, उसपर लज्जा नहीं आती। ले देख तेरे सामने फिर इस बेंचपर बैठती हूँ, देखूँ तू मुझे कैसे उठाता है।

रक्षक पहले तो कुछ डरा, किन्तु सुमनके बेंचपर बैठते ही वह उसकी ओर लपका कि उसका हाथ पकड़कर उठा दे। सुमन सिंहनीकी भाँति आग्नेय नेत्रोसे ताकती हुई उठ खडी हुई। उसकी एडियाँ उछली पडती थी। सिसकियोंके आवेगको बलपूर्वक रोकनेके कारण मुहसे शब्द न निकलते थे। उसकी सहेलियाँ जो इस समय चारो ओरसे घूमघामकर चिडियाघरके पास आ गई थी, दूरसे खडी यह तमाशा देख रही थी। किसीको बोलनेकी हिम्मत न पडती थी।

इतनेमें फिर एक गाडी सामनेसे आ पहुँची। रक्षक अभी सुमनसे हाथापाई कर ही रहा था कि गाडीमे से एक भलेमानस उतरकर चोकीदारके पास झपटे हुए आए और उसे जोरसे धक्का देकर बोले, क्यो बे, इनका हाथ क्यो पकड़ता है ? दूर हट।

चौकीदार हकबकाकर पीछे हट गया। चेहरेपर हवाइयाँ उड़ने लगीं। बोला, सरकार, क्या यह आपके घरकी है ?

भद्र पुरुषने क्रोधमें कहा, हमारे घरकी हो या न हों, तू इनसे हाथा-पाई क्यों कर रहा था ? अभी रिपोर्ट कर दूँ तो नौकरीसे हाथ धो बैठेगा।

चौकीदार हाथ पैर जोड़ने लगा। इतनेमें गाडीमें बैठी हुई महिलाने सुमनको इशारेसे बुलाया और पूछा, यह तुमसे क्या कह रहा था ?

सुमन—कुछ नहीं, मैं इस बेंचपर बैठी थी, वह मुझे उठाना चाहता था। अभी दो वेश्याएँ इसी बेंचपर बैठी थीं। क्या मैं ऐसी गई बीती हूँ कि यह मुझे वेश्याओंसे भी नीच समझे ?

रमणीने उसे समझाया कि यह छोटे आदमी जिसमें चार पैसे पाते हैं उसीकी गुलामी करते हैं। इनके मुँह लगना अच्छा नहीं।

दोनों स्त्रियोंमें परिचय हुआ। रमणीका नाम सुभद्रा था। वह भी सुमनके मुहल्लेमें पर उसके मकानसे जरा दूर, रहती थी। उसके पति वकील थे। स्त्री-पुरुष गंगास्नान करके घर जा रहे थे। यहाँ पहुँचकर उसके पतिने देखा कि चौकीदार एक भले घरकी स्त्रीसे झगड़ा कर रहा है तो गाडीसे उतर पड़े।

सुभद्रा सुमनके रंग-रूप, बातचीतपर ऐसी मोहित हुई कि उसे अपनी गाडीमें बैठा लिया। वकील साहब कोचबक्सपर जा बैठे। गाड़ी चली। सुमनको ऐसा मालूम हो रहा था कि मैं विमानपर बैठी स्वर्गको जा रही हूँ। सुभद्रा यद्यपि बहुत रूपवती न थी और उसके वस्त्राभूषण भी साधारण ही थे, पर उसका स्वभाव ऐसा नम्र, व्यवहार ऐसा सरल तथा विनयपूर्ण था कि सुमनका हृदय पुलकित हो गया। रास्तेमें उसने अपनी सहेलियोंको जाते देख खिड़की खोलकर उनकी ओर गर्वसे देखा, मानो कह रही थी, तुम्हें भी कभी यह सौभाग्य प्राप्त हो सकता है ? पर इस गर्वके साथ ही उसे यह भय भी था कि कहीं मेरा मकान देखकर सुभद्रा मेरा तिरस्कार न करने लगे। जरूर यही होगा। यह क्या जानती है कि मैं ऐसे फटे हालों

रहती हूँ। यह कैसी भाग्यवान् स्त्री है ! कैसा देवरूप पुरुष है ! यह न आ जाते तो वह निर्दयी चौकीदार न जाने मेरी क्या दुर्गति करता। कितनी सज्जनता है कि मुझे भीतर बिठा दिया और आप कोचवानके साथ जा बैठे ! वह इन्हीं विचारोमे मग्न थी कि उसका घर आ गया। उसने सकुचाते हुए सुभद्रासे कहा, गाड़ी रुकवा दीजिए, मेरा घर आ गया।

सुभद्राने गाडी रुकवा दी। सुमनने एक वार भोली बाईके मकानकी ओर ताका। वह अपने छज्जेपर टहल रही थी। दोनोंकी आँखे मिलीं, भोलीने मानो कहा, अच्छा यह ठाठ है ! सुमनने जैसे उत्तर दिया, अच्छी तरह देख लो यह कौन लोग है। तुम मर भी जाओ तो इस देवीके साथ बैठना नसीब न हो।

सुमन उठ खडी हुई और सुभद्राकी ओर सजल नेत्रोसे देखती हुई बोली; इतना प्रेम लगाकर बिसरा मत देना। मेरा मन लगा रहेगा।

सुभद्राने कहा, नही वहिन, अभी तो तुमसे कुछ बाते भी न करने पाई। मै तुम्हे कल बुलाऊँगी।

सुमन उतर पड़ी। गाडी चली गई। सुमन अपने घरमे गई तो उसे ऐसा मालूम हुआ मानो कोई आनन्दमय स्वप्न देखकर जागी है।

गजाधरने पूछा, यह गाडी किसकी थी ?

सुमन--यहीके कोई वकील है। बेनीबागमे उनकी स्त्री से भेट हो गई। जिद्द करके गाडीपर बैठा लिया। मानती ही न थी।

गजाधर—तो क्या तुम वकीलके साथ बैठी थी ?

सुमन—कैसी बाते करते हो ? वह बेचारे तो कोचवानके साथ बैठे थे।

गजाधर—तभी इतनी देर हुई।

सुमन—दोनो सज्जनताके अवतार है।

गजाधर—अच्छा, चलके चूल्हा जलाओ, बहुत बखान हो चुका।

सुमन—तुम वकील साहबको जानते तो होगे ?

गजाधर—इस मुहल्लेमे तो वही एक पद्मसिंह वकील है ? वही रहे होगे।

सुमन—गोरे-गोरे लम्बे आदमी है। ऐनक लगाते हैं।

गजाधर—हाँ, हाँ, वही हैं, यह क्या पूरबकी ओर रहते हैं।

सुमन—कोई बडे वकील हैं?

गजाधर—मैं उनका जमाखर्च थोडे ही लिखता हूँ। आते-जाते कभी कभी देख लेता हूँ। आदमी अच्छे हैं।

सुमन ताड़ गई कि वकील साहबकी चर्चा गजाधरको अच्छी नही मालूम होती। उसने कपडे बदले और भोजन बनाने लगी।

१०

दूसरे दिन सुमन नहाने न गई। सवेरे ही से अपनी एक रेशमी साडीकी मरम्मत करने लगी।

दोपहरको सुभद्राकी एक महरी उसे लेने आई। सुमनने मनमें सोचा था, गाडी आवेगी। उसका जी छोटा हो गया। वही हुआ जिसका उसे भय था।

वह महरी के साथ सुभद्राके घर गई और दो-तीन घण्टेतक बैठी रही। उसका वहाँसे उठनेको जी न चाहता था। उसने अपने मैकेका रत्ती-रत्ती हाल कह सुनाया पर सुभद्रा अपनी ससुरालकी ही बातें करती रही।

दोनों स्त्रियों में मेल-मिलाप बढ़ने लगा। सुभद्रा जब गगा नहाने जाती तो सुमनको साथ ले लेती। सुमनको भी नित्य एक बार सुभद्राके घर गये बिना कल न पडती थी।

जैसे बालूपर तडपती हुई मछली जलधारामें पहुँचकर किलोलें करने लगती है, उसी प्रकार सुमन भी सुभद्राकी स्नेहरूपी जलधारामे अपनी विपत्तिको भूलकर आमोद-प्रमोदमें मग्न हो गई।

सुभद्रा कोई काम करती होती तो सुमन स्वय उसे करने लगती। कभी पण्डित पद्मसिंहके लिए जलपान बना देती, कभी पान लगाकर भेज देती। इन कामोमें उसे जरा भी आलस्य न होता था। उसकी दृष्टिमें

सुभद्रा-सी सुशील स्त्री और पद्मसिंह सरीखे सज्जन मनुष्य संसारमें और न थे ।

एक बार सुभद्राको ज्वर आने लगा । सुमन कभी उसके पाससे न टलती । अपने घर एक क्षणके लिए जाती और कच्चा-पक्का खाना बनाकर फिर भाग आती, पर गजाधर उसकी इन बातोंसे जलता था । उसे सुमनपर विश्वास न था । वह उसे सुभद्राके यहाँ जानेसे रोकता था, पर सुमन उसका कहना न मानती थी ।

फागुनके दिन थे । सुमनको यह चिन्ता हो रही थी कि होलीके लिए कपड़ोंका क्या प्रबन्ध करे ? गजाधरको इधर एक महीनेसे सेठजीने जवाब दे दिया था । उसे अब केवल पन्द्रह रुपयोंका ही आधार था । वह एक तजेबकी साड़ी और रेशमी मलमलकी जाकेट के लिए गजाधरसे कई बार कह चुकी थी, पर गजाधर हूँ-हाँ करके टाल जाता था । वह सोचती यह पुराने कपड़े पहनकर सुभद्राके घर होली खेलने कैसे जाऊँगी ?

इसी बीचमें सुमनको अपनी माताके स्वर्गवास का शोक समाचार मिला । सुमनको इसका उतना शोक न हुआ जितना होना चाहिए था, क्योंकि उसका हृदय अपनी माताकी ओरसे फट गया था । लेकिन होलीके लिए नये और उत्तम वस्त्रोंकी चिन्तासे निवृत्त हो गई । उसने सुभद्रासे कहा—बहूजी, अब मैं अनाथ हो गई । अब गहने कपड़ेकी तरफ ताकनेको जी नहीं चाहता । बहुत पहन चुकी । इस दु:खने सिंगार-पटारकी अभिलाषा ही नहीं रहने दी । जी अधम है, शरीरसे निकलता नहीं, लेकिन हृदयपर जो कुछ बीत रही है वह मैं ही जानती हूँ । अपनी सहचरियोंसे भी उसने ऐसी ही शोकपूर्ण बातें की । सबकी सब उसकी मातृभक्तिकी प्रशंसा करने लगी ।

एक दिन वह सुभद्रा साथ बैठी हुई रामायण पढ़ रही थी कि पद्मसिंह प्रसन्नचित्त घरमें आकर बोले, आज बाजी मार ली ।

सुभद्राने उत्सुक होकर कहा—सच ?

पद्मसिंह—अरे क्या अबकी भी सन्देह था ?

सुभद्रा---अच्छा तो लाइये मेरे रुपये दिलवाइये, वहाँ आपकी बाजी थी, यहाँ मेरी बाजी है।

पद्म---हाँ,हाँ तुम्हारे रुपये मिलेंगे, जरा सब्र करो। मित्र लोग आग्रह कर रहे हैं कि धूमधामसे आनन्दोत्सव किया जाय।

सुभद्रा---हाँ, कुछ न कुछ तो करना ही पड़ेगा और यह उचित भी है।

पद्म---मैंने प्रीतिभोजका प्रस्ताव किया, किन्तु इसे कोई स्वीकार नहीं करता। लोग भोली बाईका मुजरा करानेके लिए अनुरोध कर रहे हैं।

सुभद्रा---अच्छा तो उन्हींकी मान लो, कौन हजारोंका खर्च है। होली भी आ गई है, बस होली ही के दिन रक्खो। 'एक पन्थ दो काज' हो जायगा।

पद्म---खर्चकी बात नहीं, सिद्धान्तकी बात है।

सुभद्रा---भला, अबकी बार सिद्धान्तके विरुद्ध ही सही।

पद्म---विट्ठलदास किसी तरह राजी नहीं होते। पीछे पड़ जायँगे।

सुभद्रा---उन्हें बकने दो। संसारके सभी आदमी उनकी तरह थोड़े ही हो जायँगे।

पण्डित पद्मसिंह आज कई वर्षोंके विफल उद्योगके बाद म्युनिसिपैलिटीके मेम्बर बननेमें सफल हुए थे। इसीके आनन्दोत्सवकी तैयारियाँ हो रही थीं। वे प्रीतिभोज करना चाहते थे, किन्तु मित्र लोग मुजरे पर जोर देते थे। यद्यपि वे स्वयं बड़े आचारवान् मनुष्य थे, तथापि अपने सिद्धान्तोंपर स्थिर रहनेकी सामर्थ्य उनमें नहीं थी। कुछ तो मुरौवतसे, कुछ अपने सरल स्वभावसे और कुछ मित्रोंकी व्यंगोक्तिके भयसे, वह अपने पक्षपर अड़ न सकते थे। बाबू विट्ठलदास उनके परम मित्र थे। वह वेश्याओंके नाच गानके कट्टर शत्रु थे। इस कुप्रथाको मिटानेके लिए उन्होंने एक सुधारक संस्था स्थापित की थी। पण्डित पद्मसिंह उनके इने-गिने अनुयायियोंमें थे। पण्डितजी इसीलिए विट्ठलदाससे डरते थे। लेकिन सुभद्राके बढ़ावा देनेसे उनका संकोच दूर हो गया।

वह अपने वेश्याभक्त मित्रोंसे सहमत हो गए। भोली बाईका मुजरा होगा, यह बात निश्चित हो गई।

इसके चार दिन पीछे होली आई। उसी रातको पद्मसिंहकी बैठकने नृत्यशालाका रूप धारण किया। सुन्दर रंगीन कालीनोंपर मित्रवृन्द बैठे हुए थे और भोली बाई अपने समाजियोंके साथ मध्यमें बैठी हुई भाव बता-बताकर मधुर स्वरमें गा रही थी। कमरा बिजलीकी दिव्य बत्तियोंसे ज्योतिर्मय हो रहा था। इत्र और गुलाबकी सुगंधि उड़ रही थी। हास्य-परिहास, आमोद-प्रमोदका बाजार गर्म था।

सुमन और सुभद्रा दोनों झरोखेमें चिककी आड़से यह जलसा देख रही थी। सुभद्राको भोलीका गाना नीरस फीका मालूम होता था। उसको आश्चर्य मालूम होता था कि लोग इतने एकाग्रचित होकर क्या सुन रहे हैं? बहुत देरके बाद गीतके शब्द उसकी समझमें आये। शब्द अलंकारोंसे दब गये थे। सुमन अधिक रसज्ञा थी। वह गानेको समझती थी और ताल स्वरका ज्ञान रखती थी। गीत कानमें आते ही उसके स्मरण पटपर अंकित हो जाते थे। भोली बाईने गाया—

ऐसी होलीमें आग लगे,
पिया विदेश, मैं द्वारे ठाढी, धीरज कैसे रहे?
ऐसी होलीमें आग लगे,

सुमनने भी इस पद को धीरे-धीरे गुनगुनाकर गाया और अपनी सफलतापर मुग्ध हो गई। केवल गिटकिरी न भर सकी। लेकिन उसका सारा ध्यान गानपर ही था। वह देखती थी कि सैकड़ों आँखें भोली बाईकी ओर लगी हुई हैं। उन नेत्रोंमें कितनी तृष्णा थी! कितनी विनम्रता, कितनी उत्सुकता! उनकी पुतलियाँ भोलीके एक-एक इशारे पर एक-एक भावपर नाचती थी, चमकती थी। जिसपर उसकी दृष्टि पड जाती थी वह आनन्द से गद्‌गद् हो जाता और जिससे वह हँसकर दो एक बातें कर लेती उसे तो मानो कुबेरका धन मिल जाता था। उस

भाग्यशाली पुरुष पर सारी सभा की सम्मान दृष्टि पड़ने लगती। उस सभामें एकसे एक धनवान, एकसे एक विद्वान्, एकसे एक रूपवान सज्जन उपस्थित थे, किन्तु सबके सब इस वेश्याके हाव-भावपर मिटे जाते थे। प्रत्येक मुख इच्छा और लालसाका चित्र बना हुआ था।

सुमन सोचने लगी, इस स्त्री में कौन सा जादू है!

सौन्दर्य? हाँ, हाँ, वह रूपवती है, इसमें सन्देह नहीं। मगर मैं भी तो ऐसी बुरी नहीं हूँ। वह साँवली है, मैं गोरी हूँ। वह मोटी है, मैं दुबली हूँ।

पण्डितजी के कमरेमें एक बड़ा शीशा था। सुमन इस शीशेके सामने जाकर खड़ी हो गई और उसमें अपना नखसे शिखतक देखा। भोलीबाईके अपने हृदयांकित चित्रसे अपने एक-एक अंगकी तुलना की। तब उसने आकर सुभद्रा से कहा, बहूजी एक बात पूछूँ, बुरा न मानना। यह इन्द्रकी परी क्या मुझसे बहुत सुन्दर है?

सुभद्राने उसकी ओर कौतूहलसे देखा और मुस्कराकर पूछा, यह क्यों पूछती हो?

सुमनने शर्मसे सिर झुकाकर कहा, कुछ नहीं, योंही। बतलाओ?

सुभद्राने कहा, उसका सुखका शरीर है, इसलिए कोमल है लेकिन रंग रूपमें वह तुम्हारे बराबर नहीं।

सुमनने फिर सोचा, तो क्या उसके बनाव सिंगारपर, गहने कपड़ेपर लोग इतने रीझे हुए हैं? मैं भी यदि वैसा बनाव चुनाव करूँ, वैसे गहने कपड़े पहनूँ, तो मेरा रंग-रूप और न निखर जायगा, मेरा यौवन और न चमक जायगा? लेकिन कहाँ मिलेंगे?

क्या लोग उसके स्वर-लालित्यपर इतने मुग्ध हो रहे हैं? उसके गलेमें लोच नहीं, मेरी आवाज उससे बहुत अच्छी है। अगर कोई महीने भर भी सिखादे तो मैं उससे अच्छा गाने लगूँ। मैं भी वक्र नेत्रोंसे देख सकती हूँ। मुझे भी लज्जा से आँखें नीची करके मुस्कराना आता है।

सुमन बहुत देरतक वहाँ बैठी कार्यमें कारणका अनुसंधान करती रही।

अन्तमे वह इस परिणाम पर पहुँची कि वह स्वाधीन है, मेरे पैरोंमे बेडियाँ है। उसकी दूकान खुली है इसलिए ग्राहकोकी भीड है, मेरी दूकान बन्द है, इसलिए कोई खडा नही होता। वह कुत्तोके भूँकनेकी परवाह नही करती, मैं लोक-निन्दासे डरती हूँ। वह परदेके बाहर है, मै परदेके अन्दर हूँ। वह डालियोपर स्वच्छदतासे चहकती है, मै उसे पकडे हुए हूँ। इसी लज्जा ने, इसी उपहासके भयने मुझे दूसरे की चेरी बना रक्खा है।

आधी रात बीत चुकी थी। सभा विसर्जित हुई। लोग अपने-अपने घर गये। सुमन भी अपने घरकी ओर चली। चारो तरफ अधकार छाया हुआ था। सुमनके हृदय मे भी नैराश्यका कुछ ऐसा ही अन्धकार था। वह घर जाती तो थी, पर बहुत धीरे-धीरे जैसे घोड़ा बमकी तरफ जाता है। अभिमान जिस प्रकार नीचतासे दूर भागता है उसी प्रकार उसका हृदय उस घरसे दूर भागता था।

गजाधर नियमानुसार नौ बजे घर आया। किवाड बन्द थे। चकराया कि इस समय सुमन कहाँ गई? पड़ोसमे एक विधवा दर्जिन रहती थी, जाकर उससे पूछा। मालूम हुआ कि सुभद्राके घर किसी कामसे गई है। कुजी मिल गई, आकर किवाड खोले, खाना तैयार था। वह द्वारपर बैठकर सुमनकी राह देखने लगा। जब दस बज गये तो उसने खाना परसा लेकिन क्रोधमें कुछ खाया न गया। उसने सारी रसोई उठाकर बाहर फेक दी और भीतरसे किवाड बन्द करके सो रहा। मनमे यह निश्चय कर लिया कि आज कितना ही सिर पटके किवाड़ न खोलूँगा, देखे कहाँ जाती है। किन्तु उसे बहुत देरतक नीद नही आयी। जरा-सी भी आहट होती तो वह डडा लिये किवाडके पास आ जाता। उस समय यदि सुमन उसे मिल जाती तो उसकी कुशल न थी। ग्यारह बजनेके बाद निद्राका देव उसे दबा बैठा।

सुमन जब अपने द्वारपर पहुँची तो उसके कानमे एक बजनेकी आवाज आई। वह आवाज उसकी नस नसमे गूंज उठी, वह अभी तक दसग्यारह के धोखेमे थी। प्राण सूख गये। उसने किवाड़की दरारोसे झांका, ढेबरी

जल रही थी, उसके धुंएसे कोठरी भरी हुई थी और गजाधर हाथमे डण्डा लिये चित्त पडा जोरसे खर्राटे ले रहा था। सुमन का हृदय काँप उठा, किवाड खटखटाने का साहस न हुआ।

पर इस समय जाऊँ कहाँ ? पद्मसिंहके घरका दरवाजा भी वन्द हो गया होगा, कहार सो गये होगे। वहुत चीखने-चिल्लाने पर किवाड तो खुल जायगे, लेकिन वकील साहव अपने मन मे न जाने क्या समझे। नहीं, वहाँ जाना उचित नही, क्यो न यही वैठी रहूँ। एक वज ही गया है, तीन चार घण्टेमे सवेरा हो जायगा। यह सोचकर वह वैठ गई, किन्तु यह धडका लगा हुआ था कि कोई मुझे इस तरह यहाँ वैठे देख ले तो क्या हो ? समझेगा कि चोर है, घातमें वैठा है। सुमन वास्तवमे अपने ही घरमें चोर वनी हुई थी।

फागुनमे रातको ठडी हवा चलती है। सुमनकी देहपर एक फटी हुई रेशमी कुरती थी। हवा तीरके समान उसकी हड्डियो मे चुभी जाती थी। हाथ-पाँव अकड़ रहे थे। उसपर नीचेकी नालीसे ऐसी दुर्गंध उठ रही थी कि साँस लेना कठिन था। चारो ओर तिमिर मेघ छाया हुआ था, केवल भोलीवाईके कोठेपर से प्रकाशकी रेखाएँ अन्धेरी गलीकी तरफ दयाकी स्नेह-रहित दृष्टिसे ताक रही थी।

सुमनने सोचा, मै कैसी हतभागिनी हूँ। एक वह स्त्रियाँ है जो आरामसे तकिये लगाये सो रही है, लौंडियाँ पैर दवाती है। एक मै हूँ कि यहाँ वैठी हुई अपने नसीवको रो रही हूँ। मै यह सव दुःख क्यो झेलती हूँ ? एक झोपड़ीमें टूटी खाटपर सोती हूँ, रूखी रोटियाँ खाती हूँ, नित्य घुडकियाँ सुनती हूँ, क्यो ? मर्यादा पालनके लिए ही न ? लेकिन ससार मेरे इस मर्यादा-पालनको क्या समझता है ? उसकी दृष्टिमें इसका क्या मूल्य है ? क्या यह मुझसे छिपा हुआ है ? दशहरेके मेले में, मोहर्रमके मेले में फूलवागमें, मन्दिरोमें, सभी जगह तो देख रही हूँ। आजतक मै समझती थी कि कुचरित्र लोग ही इन रमणियोपर जान देते है, किन्तु आज मालूम हुआ कि उनकी पहुँच सुचरित्र और सदाचारशील पुरुषोंमे भी कम नही

है। वकील साहब कितने सज्जन आदमी हैं, लेकिन आज वह भोलीबाईपर कैसे लट्टू हो रहे थे ?

इस तरह सोचते हुए वह उठी कि किवाड़ खटखटाऊँ, जो कुछ होना है हो जाय। ऐसा कौन-सा सुख भोग रही हूँ जिसके लिए यह आपत्ति सहूँ ? यह मुझे कौर सोनेके कौन खिला देते है, कौन फूलो की सेज पर सुला देते है। दिन भर छाती फाडकर काम करती हूँ, तब एक रोटी खाती हूँ। उसपर यह धौस ! लेकिन गजाधरके डडेको देखते ही फिर छाती दहल गई। पशुबलने मनुष्यको परास्त कर दिया।

अकस्मात् सुमनने दो कान्स्टेबलोको कन्धेपर लट्ठ रखे आते देखा। अन्धकारमे वह बहुत भयकर दीख पड़ते थे। सुमनका रक्त सूख गया, कही छिपनेकी जगह न थी। सोचने लगी कि यदि यही बैठी रहूँ तो यह सब अवश्यही कुछ पूछेगे, तो क्या उत्तर दूँगी। वह झपटकर उठी और जोरसे किवाड़ खटखटाया। चिल्लाकर बोली, दो घड़ीसे चिल्ला रही हूँ, सुनते ही नही।

गजाधर चौका। पहली नीद पूरी हो चुकी थी। उठकर किवाड़ खोल दिये। आवाजमें कुछ भय था, कुछ घबराहट। सुमनने कृत्रिम क्रोधके स्वरमें कहा, वाह रे सोनेवाले ! घोड़े बेचकर सोये हो क्या ? दो घडीसे खड़ी चिल्ला रही हूँ, मिनकते ही नही। ठण्डके मारे हाथ-पाॅव अकड गये।

गजाधर नि.शक होकर बोला, मुझसे उडो मत, बताओ सारी रात कहाॅ रही ?

सुमन निर्भय होकर बोली, कैसी रात, नौ बजे सुभद्रा देवीके घर गई थी। दावत का बुलावा आया था। दस बजे उनके यहाॅसे लौट आई। दो घण्टेसे तुम्हारे द्वार पर खड़ी चिल्ला रही हूँ। बारह बजे होगे, तुम्हे अपनी नीद मे कुछ सुधि भी रहती है ?

गजाधर—तुम दस बजे आई थी ?

सुमनने दृढ़तासे कहा, हाँ, हाॅ, दस बजे।

गजाधर--बिलकुल झूठ है, बारहका घटा अपने कानोंसे सुनकर सोया हूँ।

सुमन--सुना होगा, नींदमे सिर पैरकी खबर ही नहीं रहती, घण्टे गिनने बैठे थे।

गजाधर--अब यह धाँधली एक न चलेगी। साफ-साफ बताओ, तुम अब तक कहाँ रही। मैं तुम्हारा रग ढग आजकल देख रहा हूँ। अन्धा नही हूँ। मैंने भी त्रियाचरित पढा है। ठीक-ठीक बता दो, नही तो आज जोकुछ होना है हो जायगा।

सुमन--एक बार तो कह दिया कि मैं दस-ग्यारह बजे यहाँ आ गई। अगर तुम्हे विश्वास नही आता, न आवे। जो गहने गढ़ाते हो मत गढाना। रानी रूठेंगी अपना सुहाग लेगी। जब देखो म्यानसे तलवार बाहर ही रहती है, न जाने किस बिरते पर!

यह कहते-कहते सुमन चौक गई। उसे ज्ञात हुआ कि मैं सीमासे बाहर हुई जाती हूँ। अभी द्वारपर बैठे हुए उसने जो जो बातें सोची थी और मन में जो बाते स्थिर की थी, वह सब उसे विस्मृत हो गईं। लोकाचार और हृदयमें जमे हुए विचार हमारे जीवनमें आकस्मिक परिवर्तन नही होने देते।

गजाधर सुमन की यह कठोर बाते सुनकर सन्नाटेमें आ गया। यह पहला ही अवसर था कि सुमन यों उसके मुँह आई थी। क्रोधोन्मत्त होकर बोला, क्या तू चाहती है कि जो कुछ तेरा जी चाहे किया करे और मैं चूँ न करूँ? तू सारी रात न जाने कहाँ रही, अब जो पूछता हूँ तो कहती है मुझे तुम्हारी परवा नही है, तुम मुझे क्या कर देते हो? मुझे मालूम हो गया कि शहरका पानी तुझे भी लगा, तूने भी अपनी सहेलियोंका रग पकडा। बस, अब मेरे साथ तेरा निवाह न होगा। कितना समझाता रहा कि इन चुड़ैलोंके साथ न बैठ, मेले-ठेले मत जा, लेकिन तूने न सुना न गुना। मुझे तू जब तक बता न देगी कि तू सारी रात कहाँ रही, तबतक मैं तुझे घरमें पैठने न दूँगा। न बतावेगी तो समझ ले कि आजसे तू मेरी कोई नही, तेरा जी जहाँ चाहे जा, जो मनमें आवे कर।

सुमनने कातर भावसे कहा, वकील साहवके घर को छोड़कर मैं और कही नही गई; तुम्हे विश्वास न हो तो आप जाकर पूछ लो। वही चाहे जितनी देर लगी हो। गाना हो रहा था, सुभद्रा देवीने आने नही दिया।

गजाधरने लांछनायुक्त शब्दोमे कहा, अच्छा, तो अब वकील साहवसे मन मिला है, यह कहो, फिर भला मजूरकी परवाह क्यो होने लगी ?

इस लांछनाने सुमनके हृदयपर कुठाराघातका काम किया। झूठा इलजाम कभी नही सहा जाता। वह सरोष होकर बोली, कैसी बाते मुहसे निकालते हो, हक-नाहक एक भलेमानसको बदनाम करते हो। मुझे आज देर हो गई है मुझे जो चाहो कहो, मारो, पीटो, वकील साहवको क्यो बीचमें घसीटते हो ? वह बेचारे तो, जबतक मै घरमें रहती हूँ, अन्दर कदम नही रखते।

गजाधर बोला, चल छोकरी, मुझे न चरा, ऐसे-ऐसे कितने भले आदमियोंको देख चुका हूँ। वह देवता है, उन्हीके पास जा। यह झोपड़ी तेरे रहने योग्य नही है। तेरे हौसले बढ़ रहे है। अब तेरा गुजर यहाँ न होगा।

सुमन देखती थी कि बात बढती जाती है। यदि उसकी बातें किसी तरह लौट सकतीं तो उन्हे लौटा लेती, किन्तु निकला हुआ तीर कहाँ लौटता है ? सुमन रोने लगी और बोली, मेरी आँखें फूट जायँ, अगर मैंने उनकी तरफ ताका भी हो। मेरी जीभ गिर जाय, अगर मैंने उनसे एक बात की हो। जरा मन वहलाने सुभद्राके पास चली जाती हूँ, अब मना करते हो, न जाऊँगी।

मनमें जब एक बार भ्रम का प्रवेश हो जाता है तो उसका निकलना कठिन हो जाता है। गजाधरने समझा कि सुमन इस समय केवल मेरा क्रोध शान्त करने के लिए यह नम्रता दिखा रही है। कटुतापूर्ण स्वरसे बोला, नही, जाओगी क्यों नहीं। वहाँ ऊँची अटारी सैर को मिलेगी, पकवान खानेको मिलेगे, फूलोंकी सेजपर सोओगी, नित्य राग-रंगकी धूम रहेगी।

व्यंग और क्रोधमें आग और तेलका संबंध है। व्यंग हृदयको इस प्रकार विदीर्ण कर देता है जैसे छेनी बर्फके टुकड़ेको। सुमन क्रोधसे विह्वल

होकर बोली, अच्छा तो जबान संभालो, बहुत हो चुका। घंटे भरसे मुहमे जो अनाप-शनाप आता है बकते जाते हो। मै तरह देती जाती हूँ, उसका यह फल है। मुझे कोई कुलटा समझ लिया है?

गजाधर—मै तो ऐसाही समझता हूँ।

सुमन—तुम मुझे मिथ्या पाप लगाते हो, ईश्वर तुमसे समझेंगे।

गजाधर—चली जा मेरे घर से, राँड़! कोसती है?!

सुमन—हाँ, यों कहो कि तुझे रखना नही चाहता। मेरे सिर पाप क्यों लगाते हो? क्या तुम्ही मेरे अन्नदाता हो? जही मजूरी करूँगी वही पेट पाल लूँगी।

गजाधर—जाती है कि खडी गालियाँ देती है?

सुमन जैसी सगर्वा स्त्री इस अपमान को सह न सकी। घर से निकालनेकी धमकी भयंकर इरादोको पूरा कर देती है।

सुमन बोली, अच्छा लो, जाती हूँ।

यह कहकर उसने दरवाजेकी तरफ एक कदम बढ़ाया, किन्तु अभी उसने जाने का निश्चय नहीं किया था।

गजाधर एक मिनट तक कुछ सोचता रहा, फिर बोला, अपने गहने-कपड़े लेती जा, यहाँ कोई काम नही है।

इस वाक्यने टिमटिमाते हुए आशारूपी दीपकको बुझा दिया। सुमन को विश्वास हो गया कि अब यह घर मुझसे छूटा। रोती हुई बोली, मैं लेकर क्या करूँगी।

सुमनने सन्दूकची उठा ली और द्वारसे निकल आई, अभी तक उसकी आस नही टूटी थी। वह समझती थी कि गजाधर अब भी मनाने आवेगा। इसलिये वह दरवाजेके सामने सडकपर चुपचाप खड़ी रही। रोते-रोते उसका आँचल भीग गया था। एकाएक गजाधरने दोनो किवाड जोरसे बन्द कर लिये। वह मानो सुमन की आशाका द्वार था जो सदैव के लिये उसकी ओरसे बन्द हो गया। सोचने लगी, कहाँ जाऊँ? उसे अब ग्लानि और पश्चात्तापके बदले गजाधर पर क्रोध आ रहा था। उसने

अपनी समझमें ऐसा कोई काम नही किया था, जिसका ऐसा कठोर दण्ड मिलना चाहिये था। उसे घर आनेमे देर हो गयी थी इसके लिए दो-चार घुड़कियाँ वहुत थीं। यह निर्वासन उसे घोर अन्याय प्रतीत होता था। उसने गजाधर को मनाने के लिये क्या नही किया? विनती की, खुशामद की, रोई, किन्तु उसने सुमनका अपमान ही नहीं किया, उसपर मिथ्या दोषारोपण भी किया। इस समय यदि गजाधर मनाने भी आता तो सुमन राजी न होती। उसने चलते-चलते कहा था, जाओ अव मुँह मत दिखाना। यह शब्द उसके कलेजेमें चुभ गये थे। मै ऐसी गई बीती हूँ कि अव वह मेरा मुँह भी देखना नही चाहते, तो फिर क्यों उन्हे मुँह दिखाऊँ? क्या ससारमें सव स्त्रियोंके पति होते है? क्या अनाथाएँ नही है? मै भी अव अनाथा हूँ। वसन्त के समीर और ग्रीष्मकी लू मे कितना अन्तर है! एक सुखद और प्राणपोषक, दूसरी अग्निमय और विनाशिनी। प्रेम वसन्त-समीर है, द्वेष ग्रीष्मकी लू। जिस पुष्पको वसन्तसमीर महीनोमें खिलाती है, उसे लू का एक झोका जलाकर राख कर देता है। सुमनके घरसे थोड़ी दूर पर एक खाली वरामदा था। वहाँ जाकर उसने सन्दूकची सिरहाने रक्खी और लेट गई। तीन वज चुके थे। दो घण्टे उसने यह सोचनेमें काटे कि कहाँ जाऊँ। उसकी सहचरियोमे हिरिया नामकी एक दुष्ट स्त्री थी, वहाँ आश्रय मिल सकता था, किन्तु सुमन उधर नही गई। आत्मसम्मान का कुछ अश अभी बाकी था। अव वह एक प्रकारसे स्वच्छन्द थी और उन दुष्कामनाओंको पूर्ण कर सकती थी जिनके लिये उसका मन बरसोंसे लालायित हो रहा था। अव उस सुखमय जीवनके मार्गमे कोई वाधा न थी। लेकिन जिस प्रकार वालक किसी गाय या बकरीको दूरसे देखकर प्रसन्न होता है, पर उसके निकट आते ही भयसे मुँह छिपा लेता है, उसी प्रकार सुमन अभिलाषाओके द्वारपर पहुँचकर भी भीतर प्रवेश न कर सकी। लज्जा, खेद, घृणा, अपमानने मिलकर उसके पैरोंमें वेड़ीसी डाल दी। उसने निश्चय किया कि सुभद्राके घर चलूँ, वही खाना पका दिया करूँगी, सेवा टहल करूँगी और पड़ी रहूँगी। आगे ईश्वर मालिक है।

उसने सदूकची आंचलमें छिपा ली और पंडित पद्मसिंहके घर आ पहुँची। कई मुवक्किल हाथ-पाँव धो रहे थे। कोई आसन बिछाये ध्यान करता था और सोचता था, कहीं मेरे गवाह न बिगड़ जायँ। कोई माला फेरता था, मगर उसके दानों से उन रुपयों का हिसाब लगा रहा था जो आज उसे व्यय करने पड़ेंगे। मेहतर खड़ा रातकी पूड़ियाँ समेट रहा था। सुमनको भीतर जाते हुए संकोच हुआ लेकिन जीतन कहार को आते देखकर वह शीघ्रतासे अन्दर चली गयी। सुभद्राने आश्चर्यसे पूछा—घरसे इतने सवेरे कैसे चली?

सुमनने कुण्ठित स्वरसे कहा, घरसे निकाल दी गई हूँ।

सुभद्रा—अरे! यह किस बात पर?

सुमन—यही कि रात मुझे यहाँसे जानेमें देर हो गई।

सुभद्रा—इस जरासी बात का इतना बतंगड़, देखो, मैं उन्हें बुलवाती हूँ, विचित्र मनुष्य है।

सुमन—नहीं नहीं, उन्हें न बुलाना, मैं रो-धोकर हार गई। लेकिन उस निर्दयीको तनिक भी दया न आई। मेरा हाथ पकड़कर घरसे निकाल दिया। उसे घमंड है कि मैं ही इसे पालता हूँ। मैं उसका यह घमंड तोड़ दूँगी।

सुभद्रा—चलो, ऐसी बातें न करो, मैं उन्हें बुलवाती हूँ।

सुमन—मैं अब उसका मुँह नहीं देखना चाहती।

सुभद्रा—तो क्या ऐसा बिगाड़ हो गया है?

सुमन—हाँ, अब ऐसा ही है। अब उससे मेरा कोई नाता नहीं।

सुभद्राने सोचा, अभी क्रोध में कुछ न सूझेगा, दो-एक रोजमें शान्त हो जायगी। बोली, अच्छा मुँह-हाथ तो धो डालो, आँखें चढ़ी हुई हैं, मालूम होता है, रातभर सोई नहीं हो। कुछ देर सो लो, फिर बातें होंगी।

सुमन—भाग्यमें सोना ही लिखा होता तो क्या ऐसे कुपात्रसे पाला पड़ता। अब तो तुम्हारी शरण आई हूँ। शरण दोगी तो रहूँगी, नहीं कहीं मुँहमें कालिख लगाकर डूब मरूँगी। मुझे एक कोनेमें थोड़ी-सी जगह दे

दो, वहीं पड़ी रहूँगी। अपनेसे जो कुछ हो सकेगा, तुम्हारी सेवा-टहल कर दिया करूँगी।

जब पंडितजी भीतर आये तो सुभद्राने सारी कथा उनसे कही। पंडितजी बड़ी चिन्ता में पड़े। एक अपरिचित स्त्रीको उसके पतिसे पूछे बिना अपने घरमे रखना अनुचित मालूम हुआ। निश्चय किया कि चलकर गजाधरको बुलवाऊँ और समझाकर उसका क्रोध शान्त कर दूँ। इस स्त्रीका यहाँ से चला जाना ही अच्छा है।

उन्होंने बाहर आकर तुरन्त गजाधरके बुलानेको आदमी भेजा, लेकिन वह घर पर न मिला। कचहरीसे आकर पण्डितजीने फिर गजाधरको बुलवाया, लेकिन फिर वही हाल हुआ।

उधर गजाधरको ज्योंही मालूम हुआ कि सुमन पद्मसिंहके घर गई है, उसका सन्देह पूरा हो गया। वह घूम-घूमकर शर्माजीको बदनाम करने लगा। पहले विट्ठलदास के पास गया। उन्होंने उसकी कथाको वेद-वाक्य समझा। यह देशका सेवक और सामाजिक अत्याचारों का शत्रु—उदारता और अनुदारताका विलक्षण संयोग था, उसके विश्वासी हृदय में सारे जगत् के प्रति सहानुभूति थी, किन्तु अपने वादीके प्रति लेशमात्र भी सहानुभूति न थी। वैमनस्यमें अन्ध-विश्वासकी चेष्टा होती है। जबसे पद्मसिंहने मुजरेका प्रस्ताव किया था विट्ठलदासको उनसे द्वेष हो गया था। वे यह समाचार सुनते ही फूले न समाये। शर्माजीके मित्र और सहयोगियोके पास जा-जाकर इसकी सूचना दे आये। लोगोंसे कहते, देखा आपने! मैं कहता न था कि यह जलसा अवश्य रंग लायेगा। एक ब्राह्मणीको उसके घरसे निकालकर अपने घरमे रख लिया। बेचारा पति चारों ओर रोता फिरता है। यह है उच्च शिक्षाका आदर्श! मैं तो ब्राह्मणीको उसके यहाँ देखते ही भाँप गया था कि दालमें कुछ काला है। लेकिन यह न समझता था कि अन्दर ही अन्दर यह खिचड़ी पक रही है।

आश्चर्य तो यह था कि जो लोग शर्माजीके स्वभावसे भली भाति परिचित थे उन्होंने भी इसपर विश्वास कर लिया।

दूसरे दिन प्रातःकाल जीतन किसी कामसे बाजार गया। चारों तरफ यही चर्चा सुनी। दूकानदार पूछते थे, क्यों जीतन नयी मालकिनके क्या रंग-ढंग है? जीतन यह आलोचनापूर्ण बाते सुनकर घबराया हुआ घर आया और बोला, भैया, बहूजीने जो गजाधर की दुलहिनको घर ठहरा लिया है, इसपर बाजारमे बड़ी बदनामी हो रही है। ऐसा मालूम होता है कि यह गजाधरसे लड़कर आई है।

वकील साहबने यह हाल सुना तो सन्नाटेमें आ गये। कचहरी जानेके लिए अचकन पहन रहे थे, एक हाथ आस्तीनमे था, दूसरा बाहर। कपड़े पहननेकी भी सुधि न रही। उन्हे जिस बातका भय था वह हो ही गई। अब उन्हे गजाधरकी लापरवाहीका मर्म ज्ञात हुआ। मूर्तिवत् खडे सोचते रहे कि क्या करूँ? इसके सिवा और कौन-सा उपाय है कि घरसे निकाल दूँ। उसपर जो बीतनी हो बीते, मेरा क्या वश है? किसी तरह बदनामीसे तो बचूँ। सुभद्रापर जीमें झुझलाये। इसे क्या पडी थी कि उसे अपने घरमे ठहराया। मुझसे पूछताछ नही। उसे तो घरमें रहना है, दूसरों के सामने आँखे तो मेरी नीची होंगी। मगर यहाँसे निकाल दूगा तो बेचारी जायगी कहाँ? यहाँ तो उसका कोई ठिकाना नही मालूम होता। गजाधर अब उसे शायद अपने घरमे न रखेगा, आज दूसरा दिनहै, उसने खबर तक नही ली। इससे तो यह विदित होता है कि उसने उसे छोड़ने का निश्चय कर लिया। दिलमे मुझे दयाहीन और क्रूर समझेगी। लेकिन बदनामीसे बचनेका यही एकमात्र उपाय है। इसके सिवा और कुछ नही हो सकता। यह विवेचना करके वह जीतनसे बोले, तुमने अबतक मुझसे क्यों न कहा?

जीतन—सरकार मुझे आज ही तो मालूम हुआ है, नही तो जान लो भया, मै बिना कहे नही रहता।

शर्माजी—अच्छा, तो घरमे जाओ और सुमनसे कहो कि तुम्हारे यहाँ रहनेसे उनकी बदनामी हो रही है। जिस तरह बन पडे आजही

यहाँसे चली जाय। जरा आदमीकी तरह बोलना, लाठी मत मारना। खूब समझाकर कहना कि उनका कोई वश नहीं है।

जीतन बहुत प्रसन्न हुआ। उसे सुमनसे बड़ी चिढ़ थी, जो नौकरोंको उन छोटे मनुष्योंसे होती है, जो उनके स्वामीके मुंहलगे होते है। सुमनकी चाल उसे अच्छी नही लगती थी। वुड्ढे लोग साधारण वनाव-सिंगारको भी सन्देहकी दृष्टिसे देखते है। वह गँवार था। कालेको काला कहता था, उजलेको उजला, कालेको उजला कहनेका ढग उसे न आता था। यद्यपि शर्म्माजीने समझा दिया था कि सावधानीसे बातचीत करना, किन्तु उसने जाते-ही जाते सुमनका नाम लेकर जोरसे पुकारा। सुमन शर्म्माजीके लिए पान लगा रही थी। जीतनकी आवाज सुनकर चौक पडी और कातर नेत्रोसे उसकी ओर ताकने लगी।

जीतनने कहा, ताकती क्या हो, वकील साहबका हुक्म है कि आज ही यहाँसे चली जाओ। सारे देशभरमें वदनाम कर दिया। तुमको लाज नही है, उनको तो नामकी लाज है। वाँड़ा आप गये, चार हाथकी पगहिया भी लेते गये।

सुभद्राके कानमें भी भनक पडी। आकर बोली, क्या है जीतन? क्या कह रहे हो?

जीतन—कुछ नही, सरकारका हुक्म है कि यह अभी यहाँसे चली जायँ। देशभरमे वदनामी हो रही है।

सुभद्रा—तुम जाकर जरा उन्हीको यहाँ भेज दो।

सुमनकी आँखोमे आँसू भरे थे। खड़ी होकर बोली, नही बहूजी! उन्हें क्यों बुलाती हो? कोई किसीके घरमें जबर्दस्ती थोड़े ही रहता है, मै अभी चली जाती हूँ। अब इस चौखटके भीतर फिर पाँव न रखूगी। विपत्तिमे हमारी मनोवृत्तियाँ बडी प्रबल हो जाती है। उस समय बेमुरौवती घोर अन्याय प्रतीत होती है और सहानुभूति असीम कृपा। सुमनको शर्म्माजीसे ऐसी आशा न थी। उस स्वाधीनताके साथ जो आपत्तिकालमें हृदयपर अधिकार पा जाती है उसने शर्म्माजीको दुरात्मा, भीरु, दयाशून्य

तथा नीच ठहराया। तुम आज अपनी बदनामीको डरते हो, तुमको इज्जत बड़ी प्यारी है ! अभी कल एक वेश्याके साथ बैठे हुए फूले न समाते थे उसके पैरों तले आँख बिछाते थे, तब इज्जत न जाती थी ! आज तुम्हारी इज्जतमें बट्टा लगा जाता है !

उसने सावधानीसे सन्दूकची उठा ली और सुभद्राको प्रणाम करके घरसे चली गई।

११

दरवाजेपर आकर सुमन सोचने लगी कि अब कहाँ जाऊँ। गजाधरकी निर्दयतासे भी उसे इतना दुःख न हुआ था जितना इस समय हो रहा था। उसे अब मालूम हुआ कि मैंने अपने घरसे निकलकर बड़ी भूल की। मैं सुभद्रा के बलपर कूद रही थी। मैं इन पण्डितजी को कितना भला आदमी समझती थी। पर अब यह मालूम हुआ कि यह भी रँगे हुए सियार हैं। अपने घरके सिवा अब मेरा कहीं ठिकाना नहीं है। मुझे दूसरोंकी चिरौरी करनेकी जरूरत ही क्या? क्या मेरा घर नहीं था? क्या मैं इनके घर जन्म काटने आई थी। दो-चार दिनमें जब उनका क्रोध शान्त हो जाता, आपही चली जाती। ओह ! नारायण! क्रोधमें बुद्धि कैसी भ्रष्ट हो जाती है। मुझे इनके घरमें भूलकर भी न आना चाहिए था, मैंने आते पाँवमें आपही कुल्हाड़ी मारी। वह अपने मनमें न जाने क्या समझते होंगे।

यह सोचते हुए सुमन आगे चली, पर थोड़ी ही दूर चलकर उसके विचारोंने फिर पलटा खाया। मैं कहाँ जा रही हूँ? वह अब मुझे कदापि घरमें न घुसने देंगे। मैंने कितनी विनती की, पर उन्होंने एक न सुनी। जब केवल रातदो घण्टेकी देर हो जानेसे उन्हें इतना सन्देह हो गया तो अब मुझे पूरे चौबीस घण्टे हो चुके हैं और मैं शामतकी मारी वहाँ आई जहाँ मुझे न आना चाहिए था। वह तो अब मुझे दूरहीसे दुत्कार देंगे। यह दुत्कार क्यों सहूँ? मुझे कहीं रहनेका स्थान चाहिए। रातें

भरको किसी-न-किसी तरह कमा लूंगी। कपडे भी सीऊँगी तो खाने भरको मिल जायगा, फिर किसीकी धौस क्यो सहूँ ? इनके यहाँ मुझे कौन-सा सुख था ? व्यर्थमें एक बेडी पैरोंमे पडी हुई थी। और लोक-लाजसे वह मुझे रख भी ले तो उठते-बैठते ताने दिया करेंगे। बस चलकर एक मकान ठीक कर लू, भोली क्या मेरे साथ इतना भी सलूक न करेगी ? वह मुझे अपने घर बार-बार बुलाती थी, क्या इतनी दया भी न करेगी ?

अमोला चली जाऊँ तो कैसा हो ? लेकिन वहाँ कौन अपना वैठा हुआ है। अम्माँ मर गई। शान्ता है, उसीका निर्वाह होना कठिन है, मुझे कौन पूछनेवाला है। मामी जीने न देंगी। छेद-छेदकर मार डालेगी। चलू भोलीसे कहूँ, देखू क्या कहती है। कुछ न हुआ तो गंगा तो कही नही गयी है ? यह निश्चय करके सुमन भोलीके घर चली। इधर-उधर ताकती जाती थी कि कही गजाधर न आता हो।

भोलीके द्वारपर पहुँचकर सुमनने सोचा, इसके यहाँ क्यो जाऊँ ? किसी पड़ोसिनके घर जानेसे काम न चलेगा ? इतने मे भोलीने उसे देखा ओर इशारेसे ऊपर बुलाया। सुमन ऊपर चली गई।

भोलीका कमरा देखकर सुमनकी आँखे खुल गई। एक बार वह पहले भी गई थी, लेकिन नीचेके आँगनसे ही लौट गई थी। कमरा फर्श, मसनद, चित्रो और शीशेके सामानोसे सजा हुआ था। एक छोटीसी चौकीपर चाँदीका पानदान रक्खा हुआ था। दूसरी चौकीपर चाँदीकी एक तश्तरी और चाँदीका एक ग्लास रखा हुआ था। सुमन यह सामान देखकर दंग रह गई।

भोलीने पूछा, आज यह सन्दूकची लिए इधर कहाँसे आ रही थी ?

सुमन—यह रामकहानी फिर कहूँगी, इस समय तुम मेरे ऊपर इतनी कृपा करो कि मेरे लिए कही अलग एक छोटा-सा मकान ठीक करा दो। मैं उसमे रहना चाहती हूँ।

भोलीने विस्मित होकर कहा, यह क्यो, शौहरसे लडाई हो गई है ?

सुमन—नही, लडाईकी क्या बात है ? अपना जी ही तो है।

भोली—जरा मेरे सामने तो ताको। हाँ, चेहरा साफ कह रहा है। क्या बात हुई ?

सुमन—सच कहती हूँ कोई बात नही है। अगर अपने रहनेसे किसीको कोई तकलीफ हो तो क्यों रहे।

भोली—अरे तो मुझसे साफ-साफ कहती क्यों नही, किस बातपर बिगडे है ?

सुमन—बिगडने की बात नही है। जब बिगड़ ही गये तो क्या रह गया ?

भोली—तुम लाख छिपाओ मै ताड़ गई सुमन, बुरा न मानो तो कह दूं। मै जानती थी कि कभी-न-कभी तुमसे खटकेगी जरूर। एक गाडीमें कहीं अरबी घोडी और लद्दू टट्टू जुत सकते है ? तुम्हें तो किसी बड़े घरकी रानी बनना चाहिए था। मगर पाले पडी एक खूसटके, जो तुम्हारा पैर धोने लायक भी नहीं। तुम्हीं हो कि यों निबाह रही हो, दूसरी होती तो ऐसे मियाँपर लात मारकर कभीकी चली गई होती। अगर अल्लाहतालाने तुम्हारी शक्ल सूरत मुझे दी होती तो मैंने अबतक सोनेकी दीवार खडी कर ली होती, मगर मालूम नही, तुम्हारी तबीयत कैसी है। तुमने शायद अच्छी तालीम नही पाई।

सुमन—मै दो सालतक एक ईसाई लेडीसे पढ चुकी हूँ।

भोली—दो तीन सालकी और कसर रह गई। इतने दिन और पढ लेती तो फिर यह ताक न लगी रहती। मालूम हो जाता कि हमारी जिन्दगीका क्या मकसद है, हमें जिन्दगीका लुत्फ कैसे उठाना चाहिए। हम कोई भेड़ बकरी तो है नहीं कि माँ-बाप जिसके गले मढ दें बस उसीकी हो रहें। अगर अल्लाहको मंजूर होता कि तुम मुसीबतें झेलो तो तुम्हें परियोंकी सूरत क्यों देता ? यह बेहूदा रिवाज यहींकि लोगोंमें है कि औरतको इतना जलील समझते है, नहीं तो और सब मुल्कोंमें औरतें आजाद है अपनी पसन्दसे शादी करती है और जब उससे राम नही आती

तो तलाक दे देती हैं। लेकिन हम सब वही पुरानी लकीर पीटे चली जा रही हैं।

सुमनने सोचकर कहा, क्या करूँ बहन, लोकलाजका डर है, नही तो आरामसे रहना किसे बुरा मालूम होता है ?

भोली—यह सब उसी जिहालतका नतीजा है। मेरे माँ-बापने भी मुझे एक बडे मियाँके गले बाँध दिया था। उसके यहाँ दौलत थी और सब तरहका आराम था, लेकिन उसकी सूरतसे मुझे नफरत थी। मैंने किसी तरह छ. महीने तो काटे, आखिर निकल खडी हुई। जिन्दगी जैसी निआमत रो-रोकर दिन काटनेके लिए नही दी गई है। जिन्दगीका कुछ मजा ही न मिला तो उससे फायदा ही क्या ? पहले मुझे भी डर लगता था कि बडी बदनामी होगी, लोग मुझे जलील समझेंगे, लेकिन घरसे निकलनेकी देर थी, फिर तो मेरा वह रग जमा कि अच्छे-अच्छे खुशामदे करने लगे। गाना मैंने घरपर ही सीखा था, कुछ और सीख लिया, बस सारे शहरमें धूम मच गई। आज यहाँ कौन रईस, कौन महाजन, कौन मौलवी, कौन पंडित ऐसा है जो मेरे तलुवे सहलानेमें अपनी इज्जत न समझे ? मन्दिरमें, ठाकुरद्वारेमें मेरे मुजरे होते हैं। लोग मिन्नते करके ले जाते है। इसे मै अपनी बेइज्जती कैसे समझू ? अभी एक आदमी भेज दू तो तुम्हारे कृष्णमन्दिरके महन्तजी दौडे चले आवें। अगर कोई इसे बेइज्जती समझे तो समझा करे।

सुमन—भला यह गाना कितने दिनमें आ जायगा ?

भोली—तुम्हे छः महीनेमे आ जायगा ! यहाँ गानेको कौन पूछता है, ध्रुपद और तिल्लानेकी जरूरत ही नहीं। बस चलती हुई गजलोंकी धूम है, दो-चार ठुमरियाँ और कुछ थियेटरके गाने आ जायँ और बस फिर तुम्ही तुम हो। यहाँ तो अच्छी सूरत और मजेदार बाते चाहिये, सो खुदाने यह दोनों बाते तुममे कूट-कूटकर भर दी हैं। मैं कसम खाकर कहती हूँ सुमन, तुम एक बार इस लोहेकी जंजीरको तोड़ दो, फिर देखो लोग कैसे दीवानोकी तरह दौड़ते हैं।

सुमनने चिन्तित भावसे कहा, यही बुरा मालूम होता है कि.... .

भोली—हाँ हाँ कहो, यही कहना चाहती हो न कि ऐरे गैरे सबसे बेशरमी करनी पड़ती है। शुरूमें मुझे भी यही झिझक होती थी। मगर बादको मालूम हुआ कि यह खयाल ही खयाल है। यहाँ ऐरे गैरोंके आनेकी हिम्मत ही नही होती। यहाँ तो सिर्फ रईस लोग आते है। बस, उन्हे फँसाये रखना चाहिए। अगर शरीफ है तब तो तबीयत आप ही आप उससे मिल जाती है और बेशरमीका ध्यान भी नही होता, लेकिन अगर उससे अपनी तबीयत न मिले तो उसे बातोंसे लगाये रहो, जहाँतक उसे नोचते-खसोटते बने, नोचो-खसोटो। आखिर को वह परेशान होकर खुद ही चला जायगा उसके दूसरे भाई और आ फँसेगे। फिर पहले पहल तो झिझक होती ही है, क्या शौहरसे नही होती ? जिस तरह धीरे-धीरे उसके साथ झिझक दूर होती जाती है, उसी तरह यहाँ होता है।

सुमनने मुस्कराकर कहा, तुम मेरे लिए एक मकान तो ठीक कर दो।

भोलीने ताड लिया कि मछली चारा कुतरने लगी, अब शिस्तको कड़ा करनेकी जरूरत है। बोली, तुम्हारे लिये यही घर हाजिर है। आरामसे रहो।

सुमन—तुम्हारे साथ न रहूँगी।

भोली—बदनाम हो जाओगी, क्यो ?

सुमन—(झेंपकर) नही, यह बात नही है।

भोली—खानदानकी नाक कट जायगी ?

सुमन—तुम तो हँसी उडाती हो।

भोली—फिर क्या, पडित गजाधरप्रसाद पाँडे नाराज हो जायँगे ?

सुमन—अब मैं तुमसे क्या कहूँ ?

सुमनके पास यद्यपि भोलीका जवाब देनेके लिए कोई दलील न थी, भोलीने उसकी शकाओंका मजाक उडाकर उन्हे पहलेसे ही निर्बल कर दिया था, यद्यपि अधर्म और दुराचारसे मनुष्यको जो स्वाभाविक घृणा होती है वह उसके हृदयको डावाँडोल कर रही थी। वह इस समय

कालिख मुँहमे लग ही गयी । अब चाहे सिरपर जो कुछ पड़े मगर उस घरमें न जाऊँगी ।

यह कहते-कहते सुमनकी आँखे भर आई । भोलीने दिलासा देकर कहा, अच्छा, पहले हाथ-मुँह धो डालो, कुछ नाश्ता कर लो, फिर सलाह होगी । मालूम होता है कि तुम्हे रातभर नीद नही आई ।

सुमन—यहाँ पानी मिल जायगा ?

भोलीने मुस्कराकर कहा, सब इन्तजाम हो जायगा । मेरा कहार हिन्दू है । यहाँ कितने ही हिन्दू आया करते है । उनके लिए एक हिन्दू कहार रख लिया है ।

भोलीकी बूढी मामा सुमनको गुसलखानेमे ले गई । वहाँ उसने साबुनसे स्नान किया । तब मामाने उसके बाल गूथे । एक नई रेशमी साडी पहिननेके लिए लाई । सुमन जब ऊपर आई और भोलीने उसे देखा तो मुस्कराकर बोली, जरा जाकर आईनेमे मुँह देख लो ।

सुमन शीशेके सामने गई । उसे मालूम हुआ कि सौन्दर्यकी मूर्ति सामने खडी है । सुमन अपनेको कभी इतना सुन्दर न समझती थी । लज्जायुक्त अभिमानसे मुख-कमल खिल उठा और आँखोमें नशा छा गया । वह एक कोच पर लेट गई ।

भोलीने अपनी मामासे कहा—क्यो जहूरन, अब तो सेठजी आ जायगे पजेमे ?

जहूरन बोली, तलुवे सुहलायेगे—तलुवे ।

थोडे देरमे कहार मिठाइयाँ लाया । सुमनने जलपान किया, पान खाया और फिर आइनेके सामने खडी हो गई । उसने अपने मनमें कहा, यह सुख छोड़कर उस अन्धेरी कोठरीमें क्यो रहूँ ?

भोलीने पूछा, गजाधर शायद मुझसे तुम्हारे बारेमे कुछ पूछे तो क्या कह दूँगी ?

सुमनने कहा, कहला देना कि यहाँ नही है ।

भोलीका मनोरथ पूरा हो गया । उसे निश्चय हो गया कि सेठ

बलभद्रदास जो अबतक मुझसे कन्नी काटते फिरते थे, इस लावण्यमयी सुन्दरीपर भ्रमरकी भांति मडलायेगे ।

सुमनकी दशा उस लोभी डाक्टरकीसी थी जो अपने किसी रोगी मित्रको देखने जाता है और फीस के रुपये अपने हाथो से नही लेता । सकोचवश कहता है, इसकी क्या जरूरत है लेकिन जब रुपये उसकी जेबमें डाल दिये जाते है तो हर्षसे मुस्कुराता हुआ घरकी राह लेता है ।

१२

पद्मसिंहके एक बड़े भाई मदनसिंह थे । वह घरका कामकाज देखते थे । थोडीसी जमीदारी थी, कुछ लेन-देन करते थे । उनके एक ही लड़का था, जिसका नाम सदनसिंह था । स्त्रीका नाम भामा था ।

माँ-बापका एकलौता लड़का बड़ा भाग्यशाली होता है । उसे मीठे पदार्थ खूब खाने को मिलते है, किन्तु कडवी ताड़ना कभी नही मिलती । सदन बाल्यकालमे ढीठ, हठी और लड़ाका था । वयस्क होनेपर वह आलसी, क्रोधी और बड़ा उद्दड हो गया । माँ-बापको यह सब मंजूर था । वह चाहे कितना ही बिगड़ जाय पर आँखके सामनेसे न टले । उससे एक दिनका विछोह भी न सह सकते थे । पद्मसिंहने कितनी ही बार अनुरोध किया कि इसे मेरे साथ जाने दीजिये, मै इसका नाम किसी अंग्रेजी मदरसेमें लिखा दूँगा, किन्तु माँ-बापने कभी स्वीकार नही किया । सदनने अपने कस्बेहीके मदरसेमें उर्दू और हिन्दी पढ़ी थी । भामाके विचारमे उसे इससे अधिक विद्याकी जरूरत ही नही थी । घरमे खानेको बहुत है, वन-वनकी पत्ती कौन तोडवाये ? बलासे न पढ़ेगा, आँखोसे देखते तो रहेगे ।

सदन अपने चाचाके साथ जानेके लिए बहुत उत्सुक रहता था । उनके साबुन, तौलिये, जूते, स्लीपर, घड़ी और कालरको देखकर उसका जी बहुत लहराता । घरमे सब कुछ था; पर यह फैशनकी सामग्रियाँ कहाँ ? उसका जी चाहता, मै भी चचाकी तरह कपडोसे सुसज्जित होकर टमटमपर हवा खाने निकलूँ । वह अपने चचाका बड़ा सम्मान करता था । उनकी कोई बात

न टालता। माँ-बापकी बातोंपर कान न धरता, प्रायः सम्मुख विवाद करता। लेकिन चचाके सामने वह शराफतका पुतला बन जाता था। उनके ठाट-बाटने उसे वशीभूत कर लिया था। पद्मसिंह घर आते तो सदनके लिए अच्छे-अच्छे कपडे जूते लाते। सदन इन चीजोंपर लहालोट हो जाता।

होलीके दिन पद्मसिंह अवश्य घर आया करते थे। अबकी भी एक सप्ताह पहले उनका पत्र आया था कि हम आवेंगे। सदन रेशमी अचकन और वारनिशदार जूतोंके स्वप्न देख रहा था। होलीके एक दिन पहले मदनसिंहने स्टेशनपर पालकी भेजी। प्रातःकाल भी; सन्ध्या भी। दूसरे दिन भी दोनों जून सवारी गई, लेकिन वहाँ तो भोली बाईके मुजरेकी ठहर चुकी थी, घर कौन आता। यह पहली ही होली थी कि पद्मसिंह घर नहीं आये। भामा रोने लगी। सदनके नैराश्यकी तो कोई सीमा ही न थी, न कपड़े, न लत्ते, होली कैसे खेले! मदनसिंह भी मन मारे बैठे थे, एक उदासी सी छाई हुई थी। गाँवकी रमणियाँ होली खेलने आईं। भामाको उदास देखकर तसल्ली देने लगी, बहन, पराया कभी अपना नहीं होता। वहाँ दोनों जने शहरकी बहार देखते होंगे, गाँवमें क्या करने आते। गाना बजाना हुआ, पर भामाका मन न लगा। मदनसिंह होलीके दिन खूब भाग पिया करते थे। आज भाग छुई तक नहीं। सदन सारे दिन नंगे बदन मुँह लटकाये बैठा था। सन्ध्याको जाकर माँसे बोला, मैं चचाके पास जाऊँगा।

भामा—वहाँ तेरा कौन बैठा हुआ है?

सदन—क्यों, चचा हैं नहीं?

भामा—अब वह चचा नहीं हैं। वहाँ कोई तुम्हारी बात भी न पूछेगा।

सदन—मैं तो जाऊँगा।

भामा—एक बार कह दिया मुझे दिक मत करो, वहाँ जाने को मैं न कहूँगी।

ज्यों ज्यों भामा मना करती थी सदन जिद पकड़ता था। अन्तमें

वह झुंझलाकर वहाँसे उठ गई। सदन भी बाहर चला आया। जिद सामनेकी चोट नही सह सकती, उसपर बगली वार करना चाहिए।

सदनने मनमें निश्चय किया कि चचाके पास भाग चलना चाहिए। न जाऊँ तो यह लोग कौन मुझे रेशमी अचकन बनवा देंगे। बहुत प्रसन्न होंगे तो एक नैनसुखका कुरता सिलवा देंगे। एक मोहनमाला बनवाया है तो जानते होगे जग जीत लिया। एक जोशन बनवाया है तो सारे गाँवमें दिखाते फिरते है। मानो मै जोशन पहनकर बैठूंगा। मैं तो जाऊँगा, देखूं कौन रोकता है ?

यह निश्चय करके वह अवसर ढूंढ़ने लगा। रातको जब सब लोग सो गये तो चुपकेसे उठकर घरसे निकल खड़ा हुआ। स्टेशन वहाँसे तीन मीलके लगभग था। चौथ का चाँद डूब चुका था, अँधेरा छाया हुआ था। गाँवके निकासपर बाँसकी एक कोठी थी। सदन वहाँ पहुँचा तो कुछ चूं चूं सी आवाज सुनाई दी। उसका कलेजा सन्न हो गया। लेकिन शीघ्र ही मालूम हो गया कि बाँस आपसमे रगड़ खा रहे है। जरा और आगे एक आमका पेड था। बहुत दिन हुए इसपरसे एक कुर्मीका लड़का गिरकर मर गया था। सदन यहाँ पहुँचा तो उसे शका हुई जैसे कोई खड़ा है। उसके रोंगटे खडे हो गये, सिरमें चक्कर-सा आने लगा। लेकिन मनको सम्भाल-कर जरा ध्यानसे देखा तो कुछ न था। लपककर आगे बढ़ा। गाँवसे बाहर निकल गया।

गाँवसे दो मीलपर पीपलका एक वृक्ष था। यह जनश्रुति थी कि वहाँ भूतोंका अड्डा है। सबके सब उसी वृक्षपर रहते है। एक कमलीवाला भूत उनका सरदार है। वह मुसाफिरोके सामने काली कमली ओढ़े, खडाऊँ पहने आता है और हाथ फैलाकर कुछ माँगता है। मुसाफिर ज्योही देनेके लिए हाथ बढाता है, वह अदृश्य हो जाता है। मालूम नही, इस क्रीडासे उसका क्या प्रयोजन था ! रातको कोई मनुष्य उस रास्तेसे अकेले न आता और जो कोई साहस करके चला जाता, वह कोई-न-कोई अलौकिक बात अवश्य देखता। कोई कहता गाना हो रहा था, कोई कहता

पञ्चायत बैठी हुई थी। सदनको अब यही एक शंका और थी। वह पहलेहीसे हृदयको स्थिर किये हुए था, लेकिन ज्यों-ज्यों वह स्थान समीप आता जाता था, उसका हियाव बर्फके समान पिघलता जाता था। जब एक फर्लाङ्ग शेष रह गया तो उसके पग न उठे। वह जमीनपर बैठ गया और सोचने लगा कि क्या करूँ। चारों ओर देखा, कहीं कोई मनुष्य न दिखाई दिया। यदि कोई पशु ही नजर आता तो उसे धैर्य हो जाता। आध घंटेतक वह किसी आने-जानेवालेकी राह देखता रहा, पर देहातका रास्ता रातको नहीं चलता। उसने सोचा, कबतक बैठा रहूँगा, एक बजे रेल आती है, देर हो जायगी तो सारा खेल ही बिगड़ जायगा। अतएव वह हृदयमें बलका संचार करके उठा और रामायणकी चौपाइयाँ उच्च स्वरसे गाता हुआ चला। भूत-प्रेतके विचारको किसी बहानेसे दूर रखना चाहता था। किन्तु ऐसे अवसरोंपर, गर्मीकी मक्खियोंकी भांति विचार टालनेसे नहीं टलता। हटा दो, फिर आ पहुँचे। निदान वह सघन वृक्ष सामने दिखाई देने लगा। सदनने उसकी ओर ध्यानसे देखा। रात अधिक जा चुकी थी, तारोंका प्रकाश भूमिपर पड़ रहा था। सदनको वहाँ कोई वस्तु न दिखाई दी, उसने और भी ऊँचे स्वरमें गाना शुरू किया। इस समय उसका एक-एक रोम सजग हो रहा था। कभी इधर ताकता, कभी उधर, नाना प्रकारके जीव दिखाई देते, किन्तु ध्यानसे देखते ही लुप्त हो जाते। अकस्मात् उसे मालूम हुआ कि दाहिनी ओर कोई बन्दर बैठा हुआ है। कलेजा सन्न हो गया। किन्तु क्षणमात्रमें बन्दर मिट्टीका ढेर बन गया। जिस समय सदन वृक्षके नीचे पहुँचा, उसका गला थरथराने लगा, मुँहसे आवाज न निकली। अब विचारको बढानेकी आवश्यकता भी न थी, मन और बुद्धिकी सभी शक्तियोंका संचय परमावश्यक था। अकस्मात् उसे कोई वस्तु दौड़ती नजर आई। वह उछल पड़ा, ध्यानसे देखा तो कुत्ता था। किन्तु वह सुन चुका था कि भूत कभी-कभी कुत्तोंके रूपमें भी आया करते हैं। शंका और भी प्रचंड हुई, सावधान होकर खड़ा हो गया, जैसे कोई वीर पुरुष शत्रुके वारकी प्रतीक्षा करता है। कुत्ता सिर झुकाए चुपचाप कतराकर निकल

गया। सदनने जोरसे डाँटा, धत्। कुत्ता दुम दवाकर भागा। सदन कई पग उसके पीछे दौडा। भयकी चरम सीमा ही साहस है। सदनको विश्वास हो गया, कुत्ता था, भूत होता तो अवश्य कोई न कोई लीला करता। भय कम हुआ, किन्तु वह वहाँ से भागा नही। वह अपने भीरु हृदयको लज्जित करनेके लिए कई मिनटतक पीपलके नीचे खड़ा रहा। इतना ही नहीं, उसने पीपलकी परिक्रमा की और उसे दोनों हाथोसे वलपूर्वक हिलानेकी चेष्टा की। यह विचित्र साहस था। ऊपर पत्थर, नीचे पानी, एक जरा-सी आवाज, एक जरा-सी पत्तीकी खड़कन उसके जीवनका निपटारा कर सकती थी। इस परीक्षासे निकलकर सदन अभिमानसे सिर उठाए आगे बढा।

१३

सुमनके चले जानेके वाद पद्मसिहके हृदयमें एक आत्मग्लानि उत्पन्न हुई। मैंने अच्छा नही किया। न मालूम वह कहाँ गई। अपने घर चली गई हो तो पूछना ही क्या, किन्तु वहाँ वह कदापि न गई होगी। मरता क्या न करता, कही कुली डिपोवालोंके जालमे फँस गई तो फिर छूटना मुश्किल है। यह दुष्ट ऐसे ही अवसरपर अपना वाण चलाते है, कौन जाने कही उनसे भी घोरतर दुष्टाचारियोंके हाथमें न पड़ जाय। साहसी पुरुषको कोई सहारा नही होता तो वह चोरी करता है, कायर पुरुषको कोई सहारा नही होता तो वह भीख माँगता है, लेकिन स्त्रीको कोई सहारा नही होता तो वह लज्जाहीन हो जाती है। युवतीका घरसे निकलना मुँहसे वातका निकलना है। मुझसे वडी भूल हुई, अब इस मर्यादापालनसे काम न चलेगा। वह डूब रही होगी, उसे वचाना चाहिए।

वह गजाधरके घर जानेके लिए कपडे पहनने लगे। तैयार होकर घरसे निकले। किन्तु यह सशय लगा हुआ था कि कोई मुझे उसके दरवाजेपर देख न ले। मालूम नहीं, गजाधर अपने मनमे क्या समझे। कही उलझ पड़ा तो मुश्किल होगी। घरसे वाहर निकल चुके थे, लौट पडे और कपड़े उतार दिये।

शर्माजीको ऐसा जान पड़ा मानो किसीने लोहेकी छड़ लाल करके उनके हृदयमें चुभा दी। माथेपर पसीना आ गया। वह सामनेसे तलवारका वार रोक सकते थे, किन्तु पीछेसे सूईकी नोक भी उनकी सहनशक्तिसे बाहर थी। विट्ठलदास उनके परम मित्र थे। शर्माजी उनकी इज्जत करते थे। आपसमें बहुधा मतभेद होनेपर भी वह उनके पवित्र उद्देश्योंका आदर करते थे। ऐसा व्यक्ति जान-बूझकर जब किसी पर कीचड़ फेंके तो इसके सिवा और क्या कहा जा सकता है कि शुद्ध विचार रखते हुए भी वह क्रूर हैं। शर्माजी समझ गये कि होली के जल्सेके प्रस्तावसे नाराज होकर विट्ठलदासने यह आग लगाई है, केवल मेरा अपमान करनेके लिए, जनताकी दृष्टिमें गिरानेके लिए मुझपर यह दोषारोपण किया है। क्रोधसे कांपते हुए बोले, तुम उनके मुँहपर कहोगे?

गजाधर—हाँ, साँचको क्या आँच? चलिये, अभी मैं उनके सामने कह दूँ। मजाल है कि वह इन्कार कर जायँ।

क्रोधके आवेगमें शर्माजी चलनेको प्रस्तुत हो गये। किन्तु इतनी देरमें आँधीका वेग कुछ कम हो चला था। सँभल गये। इस समय वहाँ जानेसे बात बढ़ जायगी, यह सोचकर गजाधरसे बोले, अच्छी बात है, जब बुलाऊँ तो चले आना। मगर निश्चिन्त मत बैठो। महाराजिनकी खोजमें रहो, समय बुरा है। जो खर्चकी जरूरत हो, वह मुझसे लो।

यह कहकर शर्माजी घर चले आये। विट्ठलदासकी गुप्त छुरीके आघातने उन्हें निस्तेज बना दिया था। वह यही समझते थे कि विट्ठलदासने केवल द्वेषके कारण यह षड्यन्त्र रचा है। यह विचार शर्माजीके ध्यानमें भी न आया कि सम्भव है, उन्होंने जो कुछ कहा हो वह शुभचिन्ताओंसे प्रेरित होकर कहा हो और उसपर विश्वास करते हों।

१४

दूसरे दिन पद्मसिंह सदनको साथ लेकर किसी स्कूलमें दाखिल कराने

चले। किन्तु जहाँ गये साफ जवाब मिला 'स्थान नहीं है'। शहर में बारह पाठशालाएँ थी, लेकिन सदनके लिए कही स्थान न था।

शर्माजीने विवश होकर निश्चय किया कि मै स्वयं पढ़ाऊँगा। प्रातःकाल तो मुवक्किलके मारे अवकाश नही मिलता। कचहरीसे आकर पढ़ाते किन्तु एक ही सप्ताहमे हिम्मत हार बैठे। कहाँ कचहरीसे आकर पत्र पढ़ते थे, कभी हारमोनियम वजाते, कहाँ अब एक बूढे तोतेको रटाना पडता था। वह बारम्बार झुझलाते, उन्हे मालूम होता कि सदन मन्द-बुद्धि है। यदि वह कोई पढा हुआ शब्द पूछ बैठता तो शर्माजी झल्ला पडते। वह स्थान उलट-पलट कर दिखाते, जहाँ वह शब्द प्रथम आया था। फिर प्रश्न करते और सदनहीसे उस शब्दका अर्थ निकलवाते। इस उद्योगमे काम कम होता था किन्तु उलझन बहुत थी। सदन भी सामने पुस्तक खोलते हुए डरता। वह पछताता कि कहाँसे कहाँ यहाँ आया, इससे तो गाँव ही अच्छा था। चार पक्तियाँ पढायेगे, लेकिन घण्टों बिगड़ेगे। पढ़ा चुकनेके वाद शर्माजी कुछ थकसे जाते। सैर करनेको भी जी नही चाहता। उन्हे विश्वास हो गया कि इस कामकी क्षमता मुझमें नही है।

मुहल्लेमे एक मास्टर साहब रहते थे। उन्होने २०) मासिक पर सदनको पढाना स्वीकार किया। अब यह चिन्ता हुई कि यह रुपये आवें कहाँसे? शर्माजी फैशनेबुल मनुष्य थे, खर्चका पल्ला सदा दबा ही रहता था। फैशनका बोझ अखरता तो अवश्य था, किन्तु उसके सामने कन्धा न डालते थे। बहुत देरतक एकान्तमे बैठे सोचते रहे, किन्तु बुद्धिने कुछ काम न किया, तव सुभद्राके पास जाकर वोले, मास्टर २०) पर राजी है।

सुभद्रा—तो क्या मास्टर ही न मिलते थे? मास्टर तो एक नहीं सौ है, रुपये कहाँ है?

शर्मा—रुपये भी ईश्वर कहीसे देगे ही।

सुभद्रा—मै तो कई सालसे देख रही हूँ, ईश्वरने कभी विशेषकृपा नही की। बस इतना दे देते है कि पेटकी रोटियाँ चल जायँ, वही तो ईश्वर है!

अपने हाथों से उसकेजूते साफ करने पड़ें तब भी मुझे इन्कार न होगा; नहीं तो मुझ जैसा कृतघ्न मनुष्य संसारमें न होगा।

ग्लानिसे सुभद्राका मुखकमल कुम्हला गया। यद्यपि शर्माजीने वे बातें सच्चे दिलसे कही थी, पर उसने समझा कि यह मुझे लज्जित करनेके निमित्त कही गई है। सिर नीचा करके बोली, तो मैंने यह कब कहा कि सदनके लिए मास्टर न रक्खा जाय? जो काम करना ही है उसे करा डालिये। जो कुछ होगा देखा जायगा। जब दादाजीने आपके लिए इतने कष्ट उठाए हैं तो यही उचित है कि आप भी सदनके लिए कोई बात उठा न रक्खें। मुझसे जो कुछ करनेको कहिए वह करूँ। आपने अबतक कभी इस विषयपर जोर नहीं दिया था, इसलिए मुझे भ्रम हुआ कि यह कोई आवश्यक खर्च नहीं है। आपको पहलेही दिनसे मास्टरका प्रबन्ध करना चाहिए था। इतने आगे-पीछेका क्या काम था? अबतक तो यह थोड़ा बहुत बढ़ भी चुका होता। इतनी उम्र गँवाने के बाद जब पढ़ानेका विचार किया है तो उसका एक दिन भी व्यर्थ न जाना चाहिए।

सुभद्रा ने तत्क्षण अपनी लज्जाका बदला ले लिया। पंडितजीको अपनी भूल स्वीकार करनी पड़ी। यदि अपना पुत्र होता तो उन्होंने कदापि इतना सोच-विचार न किया होता।

सुभद्रा को अपने प्रतिवाद पर खेद हुआ। उसने एक पान बनाकर शर्माजीको दिया। यह मानो सन्धिपत्र था। शर्माजी ने पान ले लिया, सन्धि स्वीकृत हो गई।

जब वह चलने लगे तो सुभद्रा ने पूछा, कुछ सुमन का पता चला?

शर्माजी—कुछ भी नहीं, न जाने कहाँ गायब हो गई, गजाधर भी नही दिखाई दिया। सुनता हूं। घर-बार छोड़ कर किसी तरफ निकल गया है।

दूसरे दिनसे मास्टर साहब सदनको पढ़ाने लगे। नौ बजे वह पढ़ाकर चले जाते तब सदन स्नान भोजन करके सोता। अकेले उसका जी बहुत घबराता, कोई संगी न साथी, न कोई हंसी न दिल्लगी, कैसे जी लगे।

हाँ, प्रात:काल थोडी-सी कसरत कर लिया करता था। इसका उसे व्यसन था। अपने गाँवमें उसने एक छोटा-सा अखाडा वनवा रखा था। यहाँ अखाडा तो न था, कमरेहीमे डंड कर लेता। शामको शर्माजी उसके लिए फिटिन तैयार करा देते। तब सदन अपना सूट पहनकर गर्वके साथ फिटिनपर सैर करने निकलता। शर्माजी पैदल घूमा करते थे। वे पार्क या छावनीकी ओर जाते, किन्तु सदन उस तरफ न जाता। वायु सेवनमें जो एक प्रकारका दार्शनिक आनन्द होता है उसका उसे क्या ज्ञान! शुद्ध वायुकी सुखद शीतलता, हरे भरे मैदानोंकी विचारोत्पादक निर्जनता और सुरम्य दृश्योंकी आनन्दमयी निस्तब्धता उसमे इनके रसास्वादनकी योग्यता न थी। उसका यौवनकाल था, जब बनाव-सिंगारका भूत सिरपर सवार रहता है। वह अत्यन्त रूपवान, सुगठित, वलिष्ठ युवक था। देहातमें रहा, न पढ़ना, न लिखना, न मास्टरका भय, न परीक्षाकी चिन्ता, सेरों दूध पीता था। घरकी भैंसें थीं, घी के लोदेके लोदे उठाकर खा जाता। उसपर कसरतका शौक। शरीर बहुत सुडौल निकल आया था। छाती चौड़ी, गरदन तनी हुई, ऐसा जान पड़ता था, मानो देहमें ईंगुर भरा हुआ है। उसके चेहरेपर वह गम्भीरता और कोमलता न थी जो शिक्षा और ज्ञानसे उत्पन्न होती है। उसके मुखसे वीरता और उद्दण्डता झलकती थी। आँखें मतवाली, सतेज और चञ्चल थी। वह वागका कलमी पौधा नही, वनका सुदृढ वृक्ष था। निर्जन पार्क यामैदानमें उसपर किसकी निगाह पड़ती? कौन उसके रूप और यौवनको देखता! इसलिए वह कभी दालमंडीकी तरफ जाता, कभी चोककी तरफ! उसके रगरूप, ठाटबाटपर बूढे जवान सबकी आँखें उठ जाती। युवक उसे ईर्पासे देखते, बूढ़े स्नेहसे। लोग राह चलते-चलते उसे एक आँख देखने के लिए ठिठक जाते। दूकानदार समझते कि यह किसी रईसका लडका है।

इन दूकानोंके ऊपर सौन्दर्यका वाजार था। सदनको देखते ही उस वाजारमें एक हलचल मच जाती। वेश्याएँ छज्जोंपर आ आकर खड़ी हो जाती और प्रेमकटाक्षके वाण उसपर चलातीं। देखें यह वहका हुआ कबूतर

किस छतरीपर उतरता है ? यह सोनेकी चिड़िया किस जालमें फँसती है ? सदनमें वह विवेक तो नहीं था जो सदाचारकी रक्षा करता है। उसमें वह आत्म-सम्मान भी नहीं था जो आँखोंको ऊपर नहीं उठने देता। उसकी फिटिन बाजारमें बहुत धीरे-धीरे चलती। सदनकी आँखें उन्हीं रमणियोंकी ओर लगी रहती। यौवनके पूर्वकालमें हम अपनी कुवासनाओंके प्रदर्शनपर गर्व करते हैं, उत्तर कालमें अपने सद्गुणोंके प्रदर्शनपर। सदन अपनेको रसिया दिखाना चाहता था, प्रेम से अधिक बदनामीका आकांक्षी था। इस समय यदि उसका कोई अभिन्नमित्र होता तो सदन उससे अपने कल्पित दुष्प्रेमकी विस्तृत कथाएँ वर्णन करता।

धीरे-धीरे सदनके चित्तकी चञ्चलता यहाँ तक बढ़ी कि पढ़ना लिखना सब छूट गया। मास्टर आते और पढ़ाकर चले जाते। लेकिन सदनको उनका आना बहुत बुरा मालूम होता। उसका मन हर घड़ी बाजारकी ओर लगा रहता, वही दृश्य आँखोंमें फिरा करते, रमणियोंके हाव-भाव और मृदु मुस्कानके स्मरणमें मग्न रहता। इस भाँति दिन काटनेके बाद ज्योंही शाम होती वह बनठनकर दालमण्डीकी ओर निकल जाता। अन्तमें मनकी इस कुप्रवृत्तिका वही फल हुआ जो सदैव हुआ करता है। तीन ही चार मासमें उसका सकोच उड़ गया। फिटिनपर दो आदमी दूतोंकी तरह उसके सिरपर सवार रहते। इसलिए वह इस बागके फूलोंमें हाथ लगानेका साहस न कर सकता था। वह सोचने लगा कि किसी भाँति इन दूतोंसे गला छुड़ाऊँ। सोचते-सोचते उसे एक उपाय सूझ गया। एक दिन उसने शर्माजीसे कहा, चचा, मुझे एक अच्छा सा घोड़ा ले दीजिये। फिटिन पर अपाहिजोंकी तरह बैठे रहना कुछ अच्छा नहीं मालूम होता। घोड़ेपर सवार होने से कसरत भी हो जायगी और मुझे सवारीका भी अभ्यास हो जायगा।

जिस दिनसे सुमन गई थी शर्माजी कुछ चिन्तातुर रहा करते थे। मुवक्किल लोग कहते कि आजकल इन्हें न जाने क्या हो गया है। बात बातपर झुंझला जाते हैं। हमारी बात ही न सुनेंगे तो बहस क्या करेंगे।

जब हमको मेहनताना देना है तो क्या यही एक वकील है ? गली-गली तो मारे-मारे फिरते है । इससे शर्माजीकी आमदनी दिन प्रतिदिन कम होती जाती थी । यह प्रस्ताव सुनकर चिन्तित स्वरसे बोले, अगर इसी घोड़ेपर जीन खिंचा लो तो कैसा हो ? दो-चार दिनमे निकल जायगा ।

सदन---जी नही, बहुत दुर्बल है, सवारीमें न ठहरेगा । कोई चाल भी तो नही, न कदम, न सरपट । कचहरीसे थका-माँदा आयेगा तो क्या चलेगा ?

शर्मा---अच्छा, तलाश करूँगा, कोई जानवर मिला तो ले लूंगा । शर्माजीने चाहा कि इस तरह बात टाल दूँ । मामूली घोड़ा भी ढाई तीन सौसे कममे न मिलेगा, उसपर कमसे कम २५) मासिकका खर्च अलग । इस समय वे इतना खर्च उठानेमे समर्थ न थे, किन्तु सदन कब माननेवाला था । नित्यप्रति उनसे तकाजा करता, यहाँतक कि दिन मे कई बेर टोंकनेकी नौबत पहुँची । शर्माजी उसकी सूरत देखते ही सूख जाते । यदि उससे अपनी आर्थिक दशा साफ-साफ कह देते तो सदन चुप हो जाता, लेकिन अपनी चिन्ताओकी राम कहानी सुनाकर वह उसे कष्टमें नही डालना चाहते थे ।

सदनने अपने दोनो साईसोसे कह रक्खा था कि कही घोड़ा बिकाऊ हो तो हमसे कहना । साईसोंने दलालीके लोभसे दत्तचित होकर तलाश की । घोडा मिल गया । डिगवी नामके एक साहब विलायत जारहे थे । उनका घोड़ा बिकनेवाला था । सदन खुद गया, घोडेको देखा, उसपर सवार हुआ, चाल देखी । मोहित हो गया । शर्माजीसे आकर कहा, चलिये घोड़ा देख लीजिये मुझे बहुत पसन्द है । शर्माजीको अब भागनेका कोई रास्ता न रहा, जाकर घोड़ेको देखा, डिगवी साहबसे मिले, दाम पूछे । उन्होने ४००) मॉगे, इससे कौड़ी कम नही ।

अब इतने रुपये कहाँसे आवें । घरमें अगर सौ-दो-सौ रुपये थे तो वह सुभद्राके पास थे और सुभद्रासे इस विषयमे शर्माजीको सहानुभूतिकी लेशमात्र भी आशा न थी । उपकारी बैंकके मैनेजर बाबू चारुचन्द्रसे उनकी

मित्रता थी । उनसे उधार लेनेका विचार किया लेकिन आज तक शर्माजीको ऋण माँगनेका अवसर नहीं पड़ा था। वार-वार इरादा करते और फिर हिम्मत हार जाते । कहीं वह इन्कार कर गये तव ? इस इन्कारका भीषण भय उन्हें सता रहा था । वह यह विल्कुल न जानते थे कि लोग कैसे महाजनोपर अपना विश्वास जमा लेते है । कई वार कलम दवात लेकर रुक्का लिखने वैठे, किन्तु लिखें क्या यह न सूझा । इसी वीचमें सदन डिगवी साहवके यहाँसे घोडा ले आया । जीन साजका मूल्य ५०) और हो गया । दूसरे दिन रुपये चुका देनेका वादा हुआ । केवल रातभरकी मोहलत थी । प्रात.काल रुपये देना परमावश्यक था । शर्माजीकी-सी हैसियतके आदमीके लिए इतने रुपयेका प्रवन्ध करना कोई मुश्किल न था । किन्तु उन्हे चारो ओर अन्धकार दिखाई देता था । उन्हे आज अपनी क्षुद्रताका ज्ञान हुआ । जो मनुष्य कभी पहाड़पर नही चढा है, उसका सिर एक छोटेसे टीलेपर भी चक्कर खाने लगता है । इस दुरवस्थामें सुभद्राके सिवा उन्हें कोई अवलम्व न सूझा । उसने उनकी रोनी मूरत देखी तो पूछा, आज इतने उदास क्यो हो ? जी तो अच्छा है ?

शर्माजीने सिर झुकाकर उत्तर दिया, हाँ, जी तो अच्छा है ।

सुभद्रा—तो चेहरा क्यो उतरा है ?

शर्मा—क्या वताऊँ, कुछ कहा नही जाता, सदनके मारे हैरान हूँ । कई दिनसे घोड़ेकी रट लगाये हुए था । आज डिगवी साहवके यहाँसे घोड़ा ले आया, साढे चार सौ रुपयेके मत्थे डाल दिया ।

सुभद्राने विस्मित होकर कहा, अच्छा यह सव हो गया और मुझे खवर ही नही ।

शर्मा—तुमसे कहते हुए डर मालूम होता था ।

सुभद्रा—डरकी कौन वात थी ? क्या मै सदनकी दुश्मन थी जो जलभुन जाती ? ... उसके खेलने खानेके क्या और कोई दिन आवेंगे ? कौन वड़ा खर्च है, तुम्हें ईश्वर कुशलसे रखें, ऐसे चार-पाँच सौ रुपये

कहाँ आवेंगे और कहाँ जायेंगे । लडकेका मन तो रह जायगा । उसी भाईका बेटा है जिसने आपको पाल पोसकर आज इस योग्य बनाया ।

शर्माजी इस व्यंगके लिए तैयार थे। इसीलिए उन्होंने सदनकी शिकायत करके यह बात छोड़ी थी । किन्तु वास्तवमे उन्हे सदनका यह व्यसन उतना दुखजनक नही मालूम होता था जितनी अपनी दारुण धनहीनता । सुभद्राकी अनुमति प्राप्त करनेके लिए उसके हृदयमें पैठना जरूरी था। बोले, चाहे जो कुछ हो, मुझे तो तुमसे कहते हुए डर लगता था । मनकी बात कहता हूँ । लडकोंका खाना-खेलना सबको अच्छा लगता है, पर घरमे पूजी हो तब । दिनभरसे इसी फिक्रमे पडा हुआ हूँ । कुछ बुद्धि काम नहीं करती । सबेरे डिगवी साहबका आदमी आवेगा उसे क्या उत्तर दूंगा ? बीमार भी पड जाता तो एक बहाना मिल जाता ।

सुभद्रा—तो यह कौन मुश्किल बात है । सबेरे चादर ओढ़कर लेट रहियेगा, मैं कह दूंगी कि आज तबीयत अच्छी नही है ।

शर्माजी हँसीको रोक न सके । इस व्यंगमें कितनी निर्दयता कितनी विरक्ति थी । बोले, अच्छा मान लिया कि आदमी कल लौट गया, लेकिन परसों तो डिगवी साहब जानेवाले ही है, कल कोई न कोई फिक्र करनी ही पड़ेगी ।

सुभद्रा—तो वही फिक्र आज क्यो नही कर डालते ।

शर्मा—भाई, चिढाओ मत, अगर मेरी बुद्धि काम करती तो तुम्हारी शरण क्यो आता ? चुपचाप काम न कर डालता ? जब कुछ नहीं बन पड़ा है तब तुम्हारे पास आया हूँ । बताओ क्या करूँ ?

सुभद्रा—मैं क्या बताऊँ ? आपने तो वकालत पढ़ी है, मैं तो मिडिल-तक भी नही पढ़ी, मेरी बुद्धि यहाँ क्या काम देगी ? इतना जानती हूँ कि घोड़े का द्वारपर हिनहिनाते सुनकर बैरियोंकी छाती धड़क जायगी जिस वक्त आप सदनको उसपर बैठे देखेंगे, तो आँखे तृप्त हो जायँगी ।

शर्मा—यही तो पूछता हूँ कि यह अभिलाषाएँ कैसे पूरी हों ?

सुभद्रा—ईश्वरपर भरोसा रखिए, वह कोई-न-कोई जुगुत निकालेगा ही।

शर्मा—तुम तो ताने देने लगी।

सुभद्रा—इसके सिवा मेरे पास और है ही क्या? अगर आप समझते हों कि मेरे पास रुपये होंगे तो यह आपकी भूल है। मुझे हेर-फेर करना नही आता, सन्दूककी चावी लीजिये, सौ सवा सौ रुपये पड़े हुए हैं, निकाल ले जाइये। वाकीके लिए और कोई फिक्र कीजिये। आपके कितने ही मित्र हैं, क्या दो-चार सौ रुपयेका प्रवन्ध नही कर देंगे।

यद्यपि पद्मसिंह यही उत्तर पानेकी आशा रखते थे, पर इसे कानोंसे सुनकर वह अधीर हो गये। गाँठ जरा भी हलकी न पड़ी। चुपचाप आकाश की ओर ताकने लगे, जैसे कोई अथाह जलमें वहा जाता हो।

सुभद्रा सन्दुककी चावी देनेको तैयार तो थी, लेकिन सन्दूकमें १००) की जगह पूरे ५००) वटुएमें रक्खे हुए थे। यह सुभद्राकी दो सालकी कमाई थी। इन रुपयोंको देख-देख सुभद्रा फूली न समाती थी। कभी सोचती, अवकी घर चलूंगी तो भाभीके लिए अच्छासा कगन लेती चलूंगी और गाँवकी सव कन्याओंके लिए एक-एक साडी। कभी सोचती, यही कोई काम पड जाय और शर्माजी रुपयेके लिए परेशान हो तो मैं चट निकालकर दे दूंगी। वह कैसे प्रसन्न होंगे! चकित हो जायेंगे। साधारणतः युवतियोंके हृदयमें ऐसे उदार भाव नही उठा करते। वह रुपये जमा करती हैं अपने गहनोंके लिए। लेकिन सुभद्रा वडे घरकी वेटी थी, गहनोंसे मन भरा हुआ था।

उसे रुपयोंका जरा भी लोभ न था। हाँ, एक ऐसे अनावश्यक कार्यके लिए उन्हें निकालनेमें कष्ट होता था, पर पण्डितजीकी रोनी सूरत देखकर उसे दया आ गई, वोली, आपने वैठे-विठाये यह चिन्ता अपने सिर ली। सीधी-सी तो वात थी। कह देते, भाई अभी रुपये नही हैं, तवतक किसी तरह काम चलाओ। इस तरह मन वढाना कौन सी अच्छी वात है? आज घोड़ेकी जिद है, कल मोटरकार की धुन होगी, तव क्या कीजियेगा? माना कि दादाजीने आपके साथ वड़े अच्छे सलूक किये हैं,

लेकिन सब काम अपनी हैसियत देखकर ही किये जाते हैं। दादाजी यह सुनकर आपसे खुश न होंगे।

यह कहकर वह झमककर उठी और सन्दूकमेंसे रुपयोंकी पाँच पोटलियाँ निकाल लाई, उन्हें पतिके सामने पटक दिया और कहा—यह लीजिये ५००) हैं, जो चाहे कीजिये। रक्खे रहते तो आपहीके काम आते, पर ले जाइये किसी भाँति आपकी चिन्ता तो मिटे। अब सन्दूकमें फूटी कौड़ी भी नहीं है।

पण्डिजीने हकबकाकर रुपयोंकी ओर कातर नेत्रोंसे देखा, पर उनपर टूटे नही। मनका बोझ हलका अवश्य हुआ, चेहरेसे चित्तकी शान्ति झलकने लगी। किन्तु वह उल्लास, वह विह्वलता जिसकी सुभद्राको आशा थी, दिखाई न दी। एक ही क्षणमें वह शान्तिकी झलक भी मिट गई। खेद और लज्जाका रंग प्रकट हुआ। इन रुपयोंमें हाथ लगाना उन्हें अतीव अनुचित प्रतीत हुआ। सोचने लगे, मालूम नही; सुभद्राने किस नियतसे यह रुपये बचाये थे, मालूम नही, इनके लिए कौन-कौनसे कष्ट सहे थे।

सुभद्राने पूछा, सेतका धन पाकर भी प्रसन्न नही हुए ? शर्माजीने अनुग्रहपूर्ण दृष्टिसे देखकर कहा, क्या प्रसन्न होऊँ ? तुमने नाहक यह रुपये निकाले। मैं जाता हूँ, घोड़ेको लौटा देता हूँ। यह कह दूंगा 'सितारा, पेशानी' है या और कोई दोष लगा दूंगा। सदनको बुरा लगेगा, इसके लिए क्या करूँ।

यदि रुपये देनेके पहले सुभद्राने यह प्रस्ताव किया होता तो शर्माजी बिगड़ जाते। इसे सज्जनताके विरुद्ध समझते और सुभद्राको आड़े हाथों लेते, पर इस समय सुभद्राके आत्मोत्सर्गने उन्हें वशीभूत कर लिया था। समस्या यह थी कि घरमें सज्जनता दिखावे या बाहर। उन्होंने निश्चय किया कि घरमें इसकी अधिक आवश्यकता है, किन्तु हम बाहरवालोंकी दृष्टिमें मान मर्य्यादा बनाये रखनेके लिए घरवालोंकी कब परवाह करते हैं ?

सुभद्रा विस्मित होकर बोली, यह क्या ? इतनी जल्दी काया पलट

हो गई। जानवर लेकर उसे लौटा दोगे तो क्या बात रह जायगी ? यदि डिगवी साहब फेर भी लें तो यह उनके साथ कितना अन्याय है ? वह बेचारे विलायत जानेके लिए तैयार बैठे हैं। उन्हें यह बात कितनी अखरेगी ? नहीं, यह छोटी सी बात है, रुपये ले जाइये, दे दीजिये, रुपया इन्हीं दिनोंके लिए जमा किया जाता है। मुझे इनकी कोई जरूरत नही है मैं सहर्ष दे रही हूँ। यदि ऐसा ही है तो मेरे रुपये फेर दीजियेगा, ऋण समझकर लीजिये।

बात वही थी, पर जरा बदले हुए रूपमें। शर्माजीने प्रसन्न होकर कहा, हाँ, इस शर्तपर ले सकता हूँ, मासिक किस्त बाँधकर अदा करूँगा।

१५

प्राचीन ऋषियोंने इन्द्रियोंका दमन करनेके दो साधन बताये हैं—एक राग, दूसरा वैराग्य। पहला साधन अत्यन्त कठिन और दुस्साध्य है। लेकिन हमारे नागरिक समाजने अपने मुख्य स्थानोंपर मीनाबाजार सजाकर इसी कठिन मार्गको ग्रहण किया है। उसने गृहस्थीको कीचडका कमल बताना चाहा है।

जीवनकी भिन्न-भिन्न अवस्थाओंमें भिन्न-भिन्न वासनाओंका प्राबल्य रहता है। बचपन मिठाइयोंका समय है, बुढ़ापा लोभका, यौवन प्रेम और लालसाओंका समय है। इस अवस्थामे मीनाबाजारकी सैर मनमें विप्लव मचा देती है। जो सुदृढ हैं, लज्जाशील वा भाव-शून्य वह सँभल जाते हैं। शेष फिसलते हैं और गिर पड़ते हैं।

शराबकी दूकानोंको हम बस्तीसे दूर रखनेका यत्न करते हैं, जुएखानेसे भी हम घृणा करते हैं, लेकिन वेश्याओंकी दूकानोंको हम सुसज्जित कोठोंपर चौक बाजारोंमें ठाटसे सजाते हैं। यह पापोत्तेजना नहीं तो और क्या है ?

बाजारकी साधारण वस्तुओंमें कितना आकर्षण है ! हम उनपर लट्टू हो जाते हैं और कोई आवश्यकता न होनेपर भी उन्हें ले लेते हैं।

तव वह कौन-सा हृदय है जो रूपराशि जैसे अमूल्य रत्नपर मर न मिटेगा ? क्या हम इतना भी नही जानते ?

विपक्षी कहता है, यह व्यर्थकी शका है। सहस्रों युवक नित्य शहरों में घूमते रहते हैं, किन्तु उनमेंसे विरला ही कोई विगड़ता है। वह मानव-पतनका प्रत्यक्ष प्रमाण चाहता है। किन्तु उसे मालूम नही कि वायुकी भाँति दुर्बलता भी एक अदृश्य वस्तु है, जिसका ज्ञान उसके कर्म से ही हो सकता है। हम इतने निर्लज्ज, इतने साहसरहित क्यों हैं ? हममें आत्म-गौरवका इतना अभाव क्यों है ? हमारी निर्जीविताका क्या कारण है ? वह मानसिक दुर्वलताके लक्षण है।

इसलिए आवश्यक है कि इन विषभरी नागिनोंको आवादीसे दूर, किसी पृथक् स्थानमे रखा जाय। तव उन निन्द्य स्थानोकी ओर सैर करनेको जाते हुए हमें संकोच होगा। यदि वह आवादीसे दूर हो और वहाँ घूमनेके लिए किसी वहानेकी गुजाइश न हो तो ऐसे वहुत कम वेहया आदमी होगे जो इस मीनावाजारमे कदम रखनेका साहस कर सकें।

कई महीने वीत गये। वर्षाकाल आ पहुँचा। मेलों-ठेलोंकी धूम मच गई। सदन वाँकी सजधज वनाये मनचले घोडेपर चारो ओर घूमा करता। उसके हृदयमे प्रेमलालसाकी एक आग-सी जलती रहती अव वह इतना नि.शक हो गया था कि दालमण्डीमे घोड़ेसे उतरकर तम्वोलियोंकी दूकान पर पान खाने वैठ जाता। वह समझते, यह कोई विगडा हुआ रईसजादा है। उससे रूपहाटकी नई-नई घटनाओका वर्णन करते। गानेमे कौन अच्छी है और कौन सुन्दरतामें अद्वितीय है, इसकी चर्चा छिड़ जाती। इस वाजारमे नित्य यह चर्चा रहती। सदन इन वातोको चावसे सुनता। अवतक वह कुछ रसज्ञ हो गया था। पहले जो गजलें निरर्थक मालूम होती थीं उन्हे सुनकर अव उसके हृदयका एक एक तार सितारकी भाँति गूजने लगता था। सगीतके मधुर स्वर उसे उन्मत्त कर देते, वडी कठिनतासे वह अपनेको कोठों पर चढनेसे रोक सकता।

पद्मसिंह सदनको फैशनेवुल तो वनाना चाहते थे, लेकिन उसका

यहाँ चली आई। जब हिन्दू जातिको खुदही लाज नही है तो फिर हम जैसी अवलाएँ उसकी रक्षा कहाँतक कर सकती है।

विट्ठलदास—सुमन, तुम सच कहती हो, बेशक हिन्दू जाति अधोगतिको पहुँच गई, और अबतक वह कभीभी नष्ट हो गई होती, पर हिन्दू स्त्रियोहीने अभीतक उसकी मर्यादाकी रक्षाकी है। उन्हीके सत्य और सुकीर्तिने उसे बचाया है। केवल हिन्दुओकी लाज रखनेके लिए लाखो स्त्रियाँ आगमे भस्म हो गई है। यही वह विलक्षण भूमि है जहाँ स्त्रियाँ नाना प्रकारके कष्ट भोगकर, अपमान और निरादर सहकर पुरुषोंकी अमानुषीय क्रूरताओको चित्तमे न लाकर हिन्दू जातिका मुख उज्ज्वल करती थी। यह साधारण स्त्रियोका गुण था और ब्राह्मणियोका तो पूछना ही क्या ? पर शोक है कि वही देवियाँ अब इस भाँति मर्यादाका त्याग करने लगी। सुमन, मै स्वीकार करता हूँ कि तुमको घरपर बहुत कष्ट था, माना कि तुम्हारा पति दरिद्र था, क्रोधी था, चरित्रहीन था, माना कि उसने तुम्हें अपने घरसे निकाल दिया था, लेकिन ब्राह्मणी अपनी जाति और कुलके नामपर यह सब दुख झेलती है, आपत्तियोका झेलना और दुरवस्थामे स्थिर रहना यही सच्ची ब्राह्मणियोका धर्म है, पर तुमने वह किया जो नीच जातिकी कुलटायें किया करती है, पतिसे रूठकर मैके भागती, और मैके मे निवाह न हुआ तो चकलेकी राह लेती है। सोचो तो कितने खेदकी बात है कि जिस अवस्थामे तुम्हारी लाखों बहन हँसी-खुशी जीवन व्यतीत कर रही है, वही अवस्था तुम्हें इतनी असह्य हुई कि तुमने लोकलाज, कुल-मर्य्यादाको लात मार कर कुपथ ग्रहण किया। क्या तुमने ऐसी स्त्रियाँ नही देखी जो तुमसे कही दीन, हीन, दरिद्र, दुखी है? पर ऐसे कुविचार उनके पास नही फटकने पाते, नही आज यह स्वर्गभूमि नरकके समान हो जाती। सुमन, तुम्हारे इस कर्मने ब्राह्मण जातिका नही, समस्त हिन्दू जातिका मस्तक नीचा कर दिया।

सुमनकी आँख सजल थी। लज्जासे सिर न उठा सकी। विट्ठलदास फिर बोले ! इसमें सन्देह नहीं कि यहाँ तुम्हें भोग विलासकी सामग्रियाँ

खूब मिलती है, तुम एक ऊँचे, सुसज्जित भवनमें निवास करती हो, नर्म कालीनोंपर बैठती हो, फूलोंकी सेजपर सोती हो ; भाँति भाँतिके पदार्थ खाती हो ; लेकिन सोचो तो तुमने यह सामग्रियाँ किन दामों मोल ली हैं ? अपनी मानमर्य्यादा बेचकर । तुम्हारा कितना आदर था, लोग तुम्हारी पदरज माथेपर चढ़ाते थे, लेकिन आज तुम्हे देखना भी पाप समझा जाता है ....

सुमनने बात काट कर कहा, महाशय, यह आप क्या कहते है ? मेरा तो यह अनुभव है कि जितना आदर मेरा अब हो रहा हैं उसका शतांश भी तब नही होता था । एक बार मै सेठ चिम्मनलालके ठाकुरद्धारेमें झूला देखने गई थी, सारी रात बाहर खडी भीगती रही, किसीने भीतर न जाने दिया, लेकिन कल उसी ठाकुरद्धारेमे मेरा गाना हुआ तो ऐसा जान पड़ता था मानों मेरे चरणो से वह मन्दिर पवित्र हो गया ।

विट्ठलदास—लेंकिन तुमने यह भी सोचा है कि वह किस आचरणके लोग हैं ।

सुमन—उनके आचरण चाहे जैसे हों, लेकिन वह काशीके हिन्दू समाजके नेता अवश्य है । फिर उन्हीपर क्या निर्भर है ? मै प्रात.कालसे सन्ध्यातक हजारों मनुष्योंको इसी रास्ते आते-जाते देखती हूँ । पढ़े-अपढ़, मूर्ख-विद्वान् धनी-गरीब सभी नजर आते है, तुरन्त सबको अपनी तरफ खुली या छिपी दृष्टिसे ताकते पाती हूँ, उनमें कोई ऐसा नही मालूम होता जो मेरी कृपादृष्टिपर हर्षसे मतवाला न हो जाय । इसे आप क्या कहते है ? सम्भव है, शहरमें दो चार मनुष्य ऐसे हों जो मेरा तिरस्कार करते हो । उनमेंसे एक आप हैं, उन्हीमें आपके मित्र पद्मसिह है, किन्तु जब ससार मेरा आदर करता है तो इने-गिने मनुष्योके तिरस्कारकी मुझे क्या परवाह है ? पद्मसिहको भी जो चिढ़ है वह मुझसे है, मेरी बिरादरीसे नही । मैंने इन्हीं आँखोसे उन्हे होलीके दिन भोलीसे हँसते देखा था ।

विट्ठलदासको कोई उत्तर न सूझता था । बुरे फँसे थे । सुमनने फिर कहा, आप सोचते होगे कि भोगविलासकी लालसासे कुमार्गमें आई हूँ,

पर वास्तवमें ऐसा नही है । मै ऐसी अन्धी नही कि भले-बुरेकी पहचान न कर सकू । मै जानती हूँ कि मैने अत्यन्त निकृष्ट कर्म किया है । लेकिन मै विवश थी, इसके सिवा मेरे लिए और कोई रास्ता न था । आप अगर सुन सकें तो मै अपनी रामकहानी सुनाऊँ । इतना तो आप जानते ही हैं कि संसारमें सबकी प्रकृति एकसी नही होती । कोई अपना अपमान सह सकता है, कोई नही सह सकता । मै एक ऊँचे कुलकी लडकी हूँ, पिताकी नादानीसे मेरा विवाह एक दरिद्र मूर्ख मनुष्यसे हुआ, लेकिन दरिद्र होने पर भी मुझसे अपना अपमान न सहा जाता था । जिनका निरादर होना चाहिए उनका आदर होते देखकर मेरे हृदयमें कुवासनाएँ उठने लगती थी । मगर मै इस आगसे मन ही मन जलती थी । कभी अपने भावोको किसीसे प्रकट नही किया । सम्भव था कि कालान्तरमें यह अग्नि आप ही आप शान्त हो जाती, पर पद्मसिंहके जलसेने इस अग्निको भड़का दिया । इसके बाद मेरी जो दुर्गति हुई वह आप जानते ही हैं । पद्मसिंहके घरसे निकलकर मै भोली-बाईकी शरणमें गई । मगर उस दशामे भी मै इस कुमार्गसे भागती रही । मैने चाहा कि कपड़े सीकर अपना निर्वाह करूँ, पर दुष्टोने मुझे ऐसा तग किया कि अन्तमें मुझे इस कुएँमें कूदना पड़ा । यद्यपि इस काजलकी कोठरी आकर पवित्र रहना अत्यन्त कठिन है, पर मैंने यह प्रतिज्ञा कर ली है कि अपने सत्यकी रक्षा करूँगी, गाऊँगी, नाचूंगी पर अपनेको भ्रष्ट न होने दूंगी ।

विट्ठल—तुम्हारा यहाँ बैठना ही तुम्हे भ्रष्ट करनेके लिए काफी है ।

सुमन—तो फिर मै और क्या कर सकती हू । आप ही बताइये । मेरे लिए सुखसे जीवन बितानेका और कौन-सा उपाय है ।

विट्ठल—अगर तुम्हें यह आशा है कि यहाँ सुखसे जीवन कटेगा तो तुम्हारी बड़ी भूल है । यदि अभी नही तो थोड़े दिनोंमें तुम्हे अवश्य मालूम हो जायगा कि यहाँ सुख नहीं है । सुख सन्तोषसे प्राप्त होता है, विलाससे सुख कभी नहीं मिल सकता ।

सुमन—सुख न सही, यहांपर मेरा आदर तो है । मै किसीकी गुलाम तो नहीं हूँ ।

विट्ठल—यह भी तुम्हारी भूल है। तुम यहाँ चाहे और किसीकी गुलाम न हो, पर अपनी इन्द्रियोंकी गुलाम तो हो? इन्द्रियोंकी गुलामी उस पराधीनतासे कही दुःखदायिनी होती है। यहाँ तुम्हें न सुख मिलेगा, न आदर। हाँ, कुछ दिनो भोग विलास कर लोगी, पर अन्तमें इससे भी हाथ धोना पड़ेगा। सोचो तो, थोडे दिनोंतक इन्द्रियोंको सुख देनेके लिए तुम अपनी आत्मा और समाजपर कितना बडा अन्याय कर रही हो?

सुमनने आजतक किसीसे ऐसी बात न सुनी थी। वह इन्द्रियोंके सुखको अपने आदरको जीवनका मुख्य उद्देश्य समझती आई थी उसे आज मालूम हुआ कि सुख सन्तोषसे प्राप्त होता है और आदर सेवासे।

उसने कहा, मैं सुख और आदर दोनोंहीको छोड़ती हूँ, पर जीवन-निर्वाहका तो कुछ उपाय करना पडेगा?

विट्ठलदास—अगर ईश्वर तुम्हे सुबुद्धि दे तो सामान्य रीतिसे जीवन-निर्वाह करनेके लिए तुम्हे दालमण्डीमें बैठनेकी जरूरत नही है। तुम्हारे जीवन-निर्वाहका केवल यही एक उपाय नही है। ऐसे कितने धन्धे हैं जो तुम अपने घरमें बैठी हुई कर सकती हो।

सुमनका मन अब कोई बहाना न ढूँढ़ सका। विट्ठलदासके सदुत्साहने उसे वशीभूत कर लिया। सच्चे आदमीको हम धोखा नही दे सकते। उसकी सच्चाई हमारे हृदयमे उच्च भावोको जागृत कर देती है। उसने कहा, मुझे यहाँ बैठते स्वतः लज्जा आती है। बताइये, आप मेरे लिए क्या प्रबन्ध कर सकते है? मैं गानेमे निपुण हूँ। गाना सिखानेका काम कर सकती हूँ।

विट्ठलदास—ऐसी तो यहाँ कोई पाठशाला नही है।

सुमन—मैंने कुछ विद्या भी पढ़ी है, कन्याओको अच्छी तरह पढ़ा सकती हूँ।

विट्ठलदासने चिन्तित भावसे उत्तर दिया, कन्या पाठशालाएँ तो कई है, पर तुम्हे लोग स्वीकार करेंगे, इसमे सन्देह है।

सुमन—तो फिर आप मुझसे क्या करनेको कहते है? कोई ऐसा हिन्दू जातिका प्रेमी है जो मेरे गुजारेके लिए ५०) मासिक देनेपर राजी हो?

विट्ठलदास—यह तो मुश्किल है।

सुमन—तो क्या आप मुझसे चक्की पिसाना चाहते हैं? मैं ऐसी सन्तोषी नहीं हूँ।

विट्ठलदास—(झेंपकर) विधवाश्रममें रहना चाहो तो उसका प्रबन्ध कर दिया जाय।

सुमन—(सोचकर) मुझे यह भी मंजूर है, पर वहाँ मैंने स्त्रियोंको अपने सम्बन्धमें कानाफूसी करते देखा तो पलभर न ठहरूँगी।

विट्ठलदास—यह टेढ़ी शर्त है, मैं किस किसकी जबानको रोकूँगा। लेकिन मेरी समझमें सभावाले तुम्हें लेनेपर राजी भी न होंगे।

सुमनने तानेसे कहा, तो जब आपकी हिन्दू जाति इतनी हृदयशून्य है तो मैं उसकी मर्यादा पालनेके लिए क्यों कष्ट भोगूं, क्यों जान दूं। जब आप मुझे अपनानेके लिए जातिको प्रेरित नहीं कर सकते, तब जाति आप ही लज्जाहीन है तो मेरा क्या दोष है। मैं आपसे केवल एक प्रस्ताव और करूँगी और यदि आप उसे भी पूरा न कर सकेंगे तो फिर मैं आपको और कष्ट न दूंगी। आप पं० पद्मसिंहको एक घंटेके लिए मेरे पास बुला लाइये, मैं उनसे एकान्तमें कुछ कहना चाहती हूँ। उसी घड़ी मैं यहांसे चली जाऊँगी। मैं केवल यह देखना चाहती हूँ कि जिन्हें आप जातिके नेता कहते हैं, उनकी दृष्टिमें मेरे पश्चात्तापका कितना मूल्य है। विट्ठलदास खुश होकर बोले, हाँ, यह मैं कर सकता हूँ, बोलो, किस दिन?

सुमन—जब आपका जी चाहे।

विट्ठलदास—फिर तो न जाओगी?

सुमन—अभी इतनी नीच नहीं हुई हूँ?

१६

महाशय विट्ठलदास इस समय ऐसे खुश थे मानों उन्हें कोई सम्पत्ति मिल गई हो। उन्हें विश्वास था कि पद्मसिंह इस जरासे कष्टसे मुँह न मोड़ेंगे, केवल उनके पास जानेकी देर है। वह होलीके कई दिन पहलेसे

शर्माजीके पास नही गये थे। यथाशक्ति उनकी निन्दा करनेमें कोई वात उठा न रक्खी थी, जिसपर कदाचित् अव वह मनमे लज्जित थे, तिसपर भी शर्माजीके पास जानेमें उन्हे जरा भी सकोच न हुआ। उनके घरकी ओर चले। रातके दस बज गये थे। अकाशमे बादल उमड़े हुए थे, घोर अन्धकार छाया हुआ था। लेकिन राग-रंगका बाजार पूरी रौनकपर था। अट्टालिकाओसे प्रकाशकी किरणे छिटक रही थी। कही सुरीली तानें सुनाई देती थी, कही मधुर हास्यकी ध्वनि, कही आमोद-प्रमोदकी बातें। चारो ओर विषय-वासना अपने नग्नरूपमें दिखाई दे रही थी। दालमण्डीसे निकलकर विट्ठलदासको ऐसा जान पड़ा मानों वह किसी निर्जन स्थानमें आ गये। रास्ता अभी बन्द न हुआ था। विट्ठलदासको ज्योंही कोई परिचित मनुष्य मिल जाता, वह उसे तुरन्त अपनी सफलताकी सूचना देते। आप कुछ समझते हैं, कहाँसे आ रहा हूँ? सुमनबाईकी सेवामे गया था। ऐसा मन्त्र पढ़ा कि सिर न उठा सकी, विधवाश्रममे जानेपर तैयार है। काम करनेवाले यों काम किया करते हैं।

पद्मसिंह चारपाईपर लेटे हुए निद्रादेव की आराधना कर रहे थे कि इतनेमे विट्ठलदासने आकर आवाज दी। जीतन कहार अपनी कोठरी मे बैठा हुआ दिनभरकी कमाईका हिसाब लगा रहा था कि यह आवाज कानमें आई। बडी फुरतीसे पैसे समेट कर कमरमे रख लिए और बोला, कौन है?

विट्ठलदासने कहा, अजी मै हूँ, क्या पण्डितजी सो गये? जरा भीतर जाकर जगा तो दो, मेरा नाम लेना, कहना बाहर खड़े है, बड़ा जरूरी काम है, जरा चले आवे।

जीतन मनमे बहुत झुझलाया, उसका हिसाब अधूरा रह गया, मालूम नही अभी रुपया पूरा होनेमे कितनी कसर है। अलसाता हुआ उठा, किवाड़ खोले और पडितजीको खबर दी। वह समझ गये कि कोई नया समाचार होगा तभी यह इतनी रात गये आये है। तुरन्त बाहर निकल आये।

विट्ठल—आइये, मैंने आपको बहुत कष्ट दिया, क्षमा कीजियेगा। कुछ समझे, कहाँसे आ रहा हूँ। सुमनबाईके पास गया था, आपका

पत्र पाते ही दौड़ा कि बन पड़े तो उसे सीधी राहपर लाऊँ। इसमें उसीकी बदनामी नही सारी जातिकी बदनामी है। वहाँ पहुँचा तो उसके ठाट देखकर दग रह गया। वह भोली-भाली स्त्री अब दालमडीकी रानी है; मालूम नही इतनी जल्दी वह ऐसी चतुर कैसे हो गई। कुछ देरतक तो चुपचाप मेरी बातें सुनती रही, फिर रोने लगी। मैंने समझा, अभी लोहा लाल है, दो-चार चोटे और लगाई, बस आ गई पजेमें। पहले विधवा-श्रम का नाम सुनकर घबराई। कहने लगी—मुझे ५०) महीना गुजर के लिये दिलवाइये। लेकिन आप जानते है यहाँ ५०) देन वाला कौन है? मैंने हामी न भरी। अन्तमें कहते सुनते एक शर्त पर राजी हुई। उस शर्तको पूरा करना आपका काम है।

पद्मसिहने विस्मित होकर विट्ठलदासकी ओर देखा।

विट्ठलदास—घबराइये नही, बहुत सीधी-सी शर्त है, बस यही कि आप जरा देरके लिये उसके पास चले जांय, वह आपसे कुछ कहना चाहती है। यह तो मुझे निश्चय था कि आपको इसमें कोई आपत्ति न होगी। यह शर्त मजूर कर ली, तो बताइये कब चलने का विचार है। मेरी समझ में सबरे चलें।

किन्तु पद्मसिह विचारशील मनुष्य थे। वह घण्टो सोच विचारके बिना कोई फैसला न कर सकते थे। सोचने लगे कि इस शर्तका क्या अभि-प्राय है? वह मुझसे क्या कहना चाहती है? क्या बात पत्र द्वारा न हो सकती थी? इसमें कोई न कोई रहस्य अवश्य है। आज अबुलवफा ने मेरे बरांडेपर से कूद पड़नेका वृत्तांत उससे कहा होगा। उसने सोचा होगा; यह महाशय इस तरह नही आते तो यह चाल चलूं, देखूं कैसे नही आते। केवल मुझे नीचा दिखाना चाहती है। अच्छा, अगर मैं जाऊँगा भी पीछेसे वह अपना वचन पूरा न करे क्या होगा? यह युक्ति उन्हें अपना गला छुड़ाने के लिये उपयोगी मालूम हुई। बोले, अच्छा, अगर वह फिर जाय तो?

विट्ठल—फिर क्यों जायगी? ऐसा हो सकता है?

पद्म—हॉ, ऐसा होना असभव नही ।

विट्ठल—तो क्या आप कोई प्रतिज्ञापत्र लिखवाना चाहते हैं ?

पद्म–नही, मुझे सदेह यही है कि वह सुख-विलास छोडकर विधवा श्रममें क्यो जाने लगी और सभावाले उसे लेना स्वीकार कब करेगें ?

विट्ठल—सभावालोको मनाना तो मेरा काम है । न मानेगे तो मैं उसके गुजारेका और कोई प्रबंध करूँगा । रही पहली बात । मान लीजिये, वह अपने वचनको मिथ्या ही कर दे तो इसमे हमारी क्या हानि है ? हमारा कर्तव्य तो पूरा हो जायगा ।

पद्म—हॉ, यह सन्तोष चाहे हो जाय, लेकिन देख लीजियेगा वह अवश्य धोखा देगी ।

विट्ठलदास अधीर हो गये; झुँझलाकर बोले, अगर धोखा ही दे दिया तो आपका कौन छप्पन टका खर्च हुआ जाता है ।

पद्म—आपके निकट मेरी कुछ प्रतिष्ठा न हो, लेकिन मैं अपनेको इतना तुच्छ नही समझता ।

विट्ठल—सारांश यह कि न जायगे ?

पद्म—मेरे जानसे कोई लाभ नही है । हॉ, यदि मेरा मानमर्दन कराना ही अभीष्ट हो तो दूसरी बात है ।

विटठल—कितने खेदकी बात है कि आप एक ज्ञातीय कार्य्यके लिये इतनी मीनमेष निकाल रहे है ! शोक ! आप ऑखोसे देख रहे हैं कि हिन्दू जातिकी स्त्री कुएमे गिरी हुई है, और आप उसी जातिके एक विचारवान पुरुष होकर उसे निकालनेमे इतना आगा-पीछा कर रहे है ! बस, आप इसी कामके है कि मूर्ख किसानो और जमींदारोका रक्त चूसे । आपसे ओर कुछ न होगा ।

शर्माजीने इस तिरस्कारका उत्तर न दिया । वह मनमे अपनी अकर्मण्यतापर स्वय लज्जित थे और अपने को इस तिरस्कारका भागी समझते थे । लेकिन एक ऐसे पुरुषके मुँहसे ये बातें अत्यंत अप्रिय मालूम हुई, जो इस बुराईका मूल कारण हो । वह बड़ी कठिनाई से प्रत्युत्तर देनेके आवेगको

रोक सके। यथार्थमे वह सुमनकी रक्षा करना चाहते थे, लेकिन गुप्त रीतिसे। बोले, उसकी और भी तो शर्ते है ?

विट्ठल—जी हाँ, है तो, लकिन आपमे उन्हे पूरा करनेकी सामर्थ्य है ? वह गुजारेके लिये ५०) मासिक माँगती है, आप दे सकते है ?

शर्माजी—५०) नही, लेकिन २०) देनेको तैयार हूँ।

विट्ठल—शर्माजी, बातें न बनाइये। एक जरासा कष्ट तो आपसे उठाया नही जाता, आप २०) मासिक देगे !

शर्माजी—मै आपको वचन देता हूँ कि २०) मासिक दिया करूँगा और अगर मेरी आमदनी कुछ भी बढ़ी तो पूरी रकम दे दूँगा। हाँ, इस समय विवश हूँ। यह २०) भी घोडागाड़ी बेचनेसे बच सकेगे, मालूम नही क्यो इन दिनो मेरा बाजार गिरा जा रहा है।

विट्ठल—अच्छा, आपने २०) दे ही दिये तो शेष कहाँ से आवेंगे ? औरोंका तो हाल आप जानते ही हैं, विधवाश्रमके चन्दे ही कठिनाईसे वसूल होते है। मै जाता हूँ यथाशक्ति उद्योग करूँगा, लेकिन यदि कार्य सिद्ध न हुआ तो उसका दोष आपके सिर पडेगा।

१७

सन्ध्याका समय है। सदन अपने घोड़े पर सवार दालमडीमे दोनों तरफ छज्जो और खिडकियोंकी ओर ताकता जा रहा है। जबसे सुमन वहाँ आई है, सदन उसके छज्जेके सामने किसी-न-किसी बहाने जरा देरके लिए अवश्य ठहर जाता है। इस नव-कुसुमने उसकी प्रेमलालसा को ऐसा उत्तेजित कर दिया है कि अब उसे किसी पल चैन नही पडता। उसके रूप-लावण्यमे एक प्रकारकी मनोहारिणी सरलता है जो उसके हृदयको बलात् अपनी ओर खीचती है। वह इस सरल सौंदर्यमूर्तिको अपना प्रेम अर्पण करनेका परम अभिलाषी है, लेकिन उसे इसका कोई सुअवसर नही मिलता, सुमनके यहाँ रसिकोका नित्य जमघट रहता है। सदनको यह भय होता कि इनमे कोई चचा की जान-पहचान का मनुष्य न हो। इसलिये उसे ऊपर

जानेका साहस नही होता। अपनी प्रवल आकांक्षाको हृदयमे छिपाये वह नित्य इसी तरह निराश होकर लौट जाता है। लेकिन आज उसने मुलाकात करनेका निश्चय कर लिया है, चाहे कितनी देर क्यो न हो जाय। विरह का दाह अब उससे नही सहा जाता। वह सुमनके कोठेके सामने पहुँचा। श्यामकल्याणकी मधुर ध्वनि आ रही थी। आगे वढा और दो घटे तक पार्क और मैदानमे चक्कर लगाकर नौ वजे फिर दालमंडीकी ओर चला

आश्विनके चन्द्रकी उज्ज्वल किरणोने दालमडीकी ऊँची छतोपररुपहली चादर-सी विछा दी थी। वह फिर सुमनके कोठे सामने रुका। सगीत ध्वनि वन्द थी, कुछ वोल-चाल न सुनाई दी। निश्चय हो गया कि कोई नही है। घोडेसे उतरा, उसे नीचेकी दूकानके एक खम्भेसे वॉध दिया ओर सुमनके द्वारपर खडा हो गया। उसकी सॉस वडे वेगसे चल रही थी और छाती जोरसे धड़क रही थी।

सुमनका मुजरा अभी समाप्त हुआ था, और उसके मन पर वह शिथिलता छाई हुई थी जो ऑधीके पीछे आनेवाले सन्नाटे के समान आमोद-प्रमोद का प्रतिफल हुआ करती है। यह एक प्रकारकी चेतावनी होती है जो आत्मा की ओरसे भोग-विलास मे लिप्त मन को मिलती है। इस दशामे हमारा हृदय पुरानी स्मृतियोका क्रीडा क्षेत्र वन जाया करता है। थोडी देरके लिए हमारे ज्ञानचक्षु खुल जाते है। सुमनका ध्यान इस समय सुभद्राकी ओर लगा हुआ था। वह मनमे उससे अपनी तुलना कर रही थी। जो शान्तिमय सुख उसे प्राप्त है, क्या वह मुझे मिल सकता है? असभव! यह तृष्णासागर है, यहाँ शान्तिसुख कहॉ? जब पद्मसिहके कचहरीसे आनेका समय होता तो सुभद्रा कितनी उल्लसित होकर पान के वीडे लगाती थी, ताजा हलवा पकाती थी। जव वह घरमे आते थे तो वह कैसी प्रेम विह्वल होकर उनसे मिलने दोड़ती थी। आह! मैंने उनका प्रेमालिंगन भी देखा है, कितना भावमय! कितना सच्चा! मुझे वह सुख कहॉ? यहॉ तो अन्धे आते है, या वातोके चोर। कोई अपने धन का जाल विछाता है, कोई अपनी चिकनी चुपडी वातो का। उनके हृदय भावशून्य, शुष्क ओर ओछेपनसे भरे हुए होते है।

इतनेमें सदनने कमरेमें प्रवेश किया। सुमन चौंक पड़ी। उसने सदनको कई दिन देखा था। उसका चेहरा उसे पद्मसिंह के चेहरेसे मिलता हुआ मालूम होता था। हाँ उस गंभीरताकी जगह एक उद्दंडता झलकती थी। वह काइयाँपन, वह क्षुद्रता, जो इस माया नगरके प्रेमियो का मुख्य लक्षण है, वहाँ नामको भी न थी। वह सीधासादा, सहज स्वभाव, सरल नवयुवक मालूम होता था। सुमनने आज उसे कोठोका निरीक्षण करते देखा था। उसने ताड़ लिया था कि कबूतर अब पर तौल रहा है, किसी छतरीपर उतरना चाहता है। आज उसे अपने यहाँ देखकर उसे गर्वपूर्ण आनन्द हुआ जो दंगलमे कुश्ती मारकर किसी पहलवानको होता है। वह उठी और मुस्कराकर सदनकी ओर हाथ बढाया।

सदनका मुख लज्जासे अरुणवर्ण हो गया। आँखे झुक गई। उस पर एक रोब-सा छा गया। मुख से एक शब्द भी न निकला।

जिसने कभी मदिरा का सेवन न किया हो, मदलालसा होनेपर भी उसे मुँहसे लगाते हुए वह झिझकता है।

यद्यपि सदनने सुमनबाईको अपना परिचय ठीक नही दिया, उसने अपना नाम कुँवर सदनसिंह बताया, पर उसका भेद बहुत दिनो तक न छिप सका। सुमनने हिरिया के द्वारा उसका पता भली भाँति लगा लिया और तभीसे वह बड़े चक्करमें पड़ी हुई थी। सदनको देखे बिना उसे चैन न पडता, उसका हृदय दिनोदिन उसकी ओर खिंचता जाता था। उसके बैठे सुमनके यहाँ किसी बड़े-से-बड़े रईस का गुजर होना भी कठिन था। किन्तु वह इस प्रेमको अनुचित और निषिद्ध समझती थी, इसे छिपाती थी। उसकी कल्पना किसी अव्यक्त कारणसे प्रेमलालसाको भीषण विश्वासघात समझती थी। कही पद्मसिंह और सुभद्रापर यह रहस्य खुल जाय तो वह मुझे क्या समझेंगे? उन्हे कितना दुःख होगा? मै उनकी दृष्टिमें कितनी नीच और घृणित हो जाऊँगी? जब कभी सदन प्रेमरहस्यकी बात करने लगता तो सुमन बातको पलट देती, जब कभी सदनकी अँगुलियाँ ढिठाई करना चाहती तो वह उसकी ओर लज्जायुक्त नेत्रोंसे देखकर धीरेसे उसका हाथ हटा देती। साथही,

वह सदनको उलझाये भी रखना चाहती थी। इस प्रेम कल्पनासे उसे जो आनन्द मिलता था, उसका त्याग करनेमें वह असमर्थ थी।

लेकिन सदन उसके भावोसे अनभिज्ञ होनेके कारण उसकी प्रेम शिथिलताको अपनी धनहीनतापर अवलबित समझता था। उसका निष्कपट हृदय प्रगाढ़प्रेममें मग्न हो गया था। सुमन उसके जीवनका आधार बन गई थी। मगर विचित्रता यह थी कि प्रेमलालसाके इतने प्रबल होते हुए भी वह अपनी कुवासनाओको दवाता था। उसका अक्खड़पन लुप्त हो गया था। वह वही करना चाहता था जो सुमनको पसन्द हो। वह कामातुरता जो कलुषित प्रेममें व्याप्त होती हैं, सच्चे अनुरागके आधीन होकर सहृदयतामें परिवर्तित हो गई थी, पर सुमनकी अनिच्छा दिनों दिन बढ़ती देखकर उसनेअपने मन मे यह निर्धारित किया कि पवित्र प्रेमकी कदर यहाँ नही हो सकती। यहाँके देवता उपासनासे नही, भेंटसे प्रसन्न होते हैं लेकिन भेंटके लिये रुपये कहाँ से आवें? माँगे किससे? निदान उसने पिताको एक पत्र लिखा कि यहाँ मेरे भोजनका अच्छा प्रबंध नही है, लज्जावश चाचा साहवसे कुछ कह नही सकता, मुझे कुछ रुपये भेज दीजिये।

घरपर यह पत्र पहुँचा तो भामाने पतिको ताने देने शुरू किये, इसी भाई का तुम्हे इतना भरोसा था, घमंडसे धरतीपर पाँव नहीं रखते थे। अव घमंड टूटा कि नहीं? वह भी चाचापर वहुत फूला हुआ था, अव आँखें खुली होगी। इस कालमे नेकी किसीको याद नही रहती, अपने दिन भूल जाते है। उसके लिये मैंने कौन-कौन सा यत्न नही किया, छातीसे दूध भर नही पिलाया। उसीका यह वदला मिल रहा है। उस वेचारेका कुछ दोष नही, उसे मैं जानती हूँ, यह सारी करतूत उन्ही महारानीकी है। अवकी भेंट हुई तो वह खरी खरी सुनाऊँ कि याद करे।

मदनसिंहको सन्देह हुआ कि सदनने यह पाखड रचा है। भाईपर उन्हें अखड विश्वास था, लेकिन जव भामाने रुपये भेजने पर जोर दिया तो उन्हें भेजने पडे। सदन रोज डाकघर जाता, डाकियेसे वार-वार पूछता। आखिर चौथे दिन २५) का मनीआर्डर आया। डाकिया उसे पहचानता था,

रुपये मिलनेमें कोई कठिनाई न हुई। सदन हर्षसे फूला न समाया। सन्ध्याको बाजारसे एक उत्तम रेशमी साड़ी मोल ली। लेकिन यह शंका हो रही थी कि कहीं सुमन इसे नापसन्द न करे। वह कुँवर बन चुका था, इसलिए ऐसी तुच्छ भेंट देते हुए झेंपता था। साड़ी जेबमे रख बडी देर तक घोडे पर इधर-उधर टहलता रहा। खाली हाथ वह सुमनके यहाँ नित्य बेधड़क चला जाया करता था, पर आज यह भेंट लेकर जानेमें सकोच होता था। जब खूब अन्धेरा होगया तो मन को दृढ़ करके कोठेपर चढ गया और साडी चुपके से जेबसे निकालकर शृंगारदानपर रख दी। सुमन उसके इस विलंबसे चिंतित हो रही थी। उसे देखते ही फूलके समान खिल गई, बोली, यह क्या लाये? सदनने झेंपते हुए कहा, कुछ नही, आज एक साडी नजर आ गई, मु [illegible] मालूम हुई, ले ली, यह तुम्हारी भेंट है। सुमन मुस्करा-कर कहा, [illegible] बड़ी देरतक राह दिखाई, क्या यह उसीका प्रायश्चित है? यह कहकर उसने साड़ीको देखा। सदनकी वास्तविक अवस्थाके विचारसे वह बहुमूल्य कही जा सकती थी।

सुमनके मनमें प्रश्न हुआ कि इतने रुपये इन्हें मिले कहाँ? कहीं घरसे तो नहीं उठा लाये? शर्माजी इतने रुपये क्यो देने लगे? या इन्होंने उनसे कोई बहाना करके ठगे होंगे या उठा लाये होंगे। उसने विचार किया कि साडी लौटा दूं, लेकिन उससे उसके दुःखी हो जाने का भय था। इसके साथही साड़ीको रख लेनेसे उसके दुरुत्साहके बढनेकी आशका थी। निदान उसने निश्चय किया कि इसे अबकी बार रख लूं, पर भविष्यके लिये चेतावनी दे दूं। बोली, इस अनुग्रहसे कृतार्थ हुई, लेकिन आपसे मैं भेंटकी भूखी नहीं, आपकी यही कृपा क्या कम है कि आप यहाँतक आने का कष्ट करते है? मैं केवल आपकी कृपादृष्टि चाहती हू।

लेकिन जब इस पारितोषिकसे सदनका मनोरथ पूरा न हुआ और सुमनके बर्तावमें उसे कोई अन्तर न दिखाई दिया तो उसे विश्वास हो गया गोया कि मेरा उद्योग निष्फल हुआ। वह अपने मनमे लज्जित हुआ कि मैं एक तुच्छ भेंट देकर उससे इतने बड़े फलकी आशा रखता हूँ, जमीनसे

उचककर आकाशसे तारे तोडनेकी चेष्टा करता हूँ। अतएव वह कोई मूल्यवान् प्रेमोपहार देनेकी चिन्ता मे लीन हो गया। मगर महीनों तक उसे इसका कोई अवसर न मिला।

एक दिन वह नहाने बैठा, तो साबुन न था। वह भीतरके स्नानालयमें साबुन लेने गया। अन्दर पैर रखते ही उसकी निगाह ताकपर पडी, उसपर एक कंगन रखा हुआ था। सुभद्रा अभी नहाकर गई थी, उसने कंगन उतारकर रख दिया था, लेकिन चलते समय उसकी सुध न रही। कचहरीका समय निकट था, वह रसोईमे चली गई। कगन वही धरा रह गया। सदनने उसे देखते ही लपककर उठा लिया। इस समय [illegible]मनमे कोई बुरा भाव न था? उसने सोचा, चाचीको खूब हैरान करके नब दूंगा; अच्[illegible] [illegible] रहेगी। कंगनको छिपाकर बाहर लाया और सन्दू[illegible] रख[illegible] सुभदा भोजनसे निवृत्त होकर लेट रही, आलस्य आया, सोई [illegible]हरको उठी। इसी बीचमे पंडितजी कचहरीसे आ गये, उनसे बातचीत करने लगी, कंगन का ध्यान ही न रहा। सदन कई बार भीतर गया कि देखूं इसकी कोई चर्चा हो रही है या नही, लेकिन उसका कोई जिक्र न सुनाई दिया। सन्ध्या समय जब वह सैर करने के लिये तैयार हुआ तो एक आकस्मिक विचारसे प्रेरित होकर उसने वह कंगन जेबमें रख लिया। उसने सोचा, क्यों न यह कगन सुमनबाईकी नजर करूँ? यहाँ तो मुझसे कोई पूछेगा ही नही और अगर पूछा भी गया तो कह दूंगा, मै नही जानता। चाची समझेगी नौकरों मेसे कोई उठा ले गया होगा। इस तरह के कुविचारोने उसका संकल्प दृढ कर दिया। उसका जी कही सैर करनेमे न लगा। वह उपहार देने के लिए व्याकुल हो रहा था। नियमित समयसे कुछ पहलेही घोडेको दालमडीकी तरफ फेर दिया। यहाँ उसने एक छोटा सा मखमली बक्स लिया, उसमे कगनको रखकर सुमनके यहाँ जा पहुँचा। वह इस बहुमूल्य वस्तुको इस प्रकार भेंट करना चाहता था मानो वह कोई अति सामान्य वस्तु दे रहा हो। आज वह बहुत देर तक बैठा रहा। सन्ध्याका समय उसने उसके लिये निकाल रखा था किन्तु आज प्रेमालापमे भी उसका जी न लगता था। उसेतान्चि

प्रस्ताव तो बहुत उत्तम है, लेकिन यह बताइये, सुमनको आप रखना कहाँ चाहते है ?

विट्ठलदास—विधवाश्रममे ।

बलभद्र—आश्रम सारे नगरमे बदनाम हो जायगा, और सभव है कि अन्य विधवाये भी छोड भागे ।

विट्ठल—तो अलग मकान लेकर रख दूँगा ।

बलभद्र—मुहल्लेके नवयुवकोमे छुरी चल जायगी ।

विट्ठल—तो फिर आपही कोई उपाय बताइये ।

बलभद्र—मेरी सम्मति तो यह है कि आप इस झगडेमे न पडे । जिस स्त्रीको लोकनिन्दाकी लाज नही, उसे कोई शक्ति नही सुधार सकती । यह नियम है कि जब हमारा कोई अग विकृत होता है तो उसे काट डालते है, जिसमे उसका विष समस्त शरीरको नष्ट न कर डाले । समाजमे भी उसी नियम का पालना करना चाहिए । मै देखता हूँ कि आप मुझसे सहमत नही है, लेकिन मेरा जो कुछ विचार था वह मैने स्पष्ट कह दिया । आश्रमकी प्रबन्धकारिणी सभाका एक मेम्बर मै भी तो हूँ ? मै किसी तरह इस वेश्याको आश्रममें रखनेकी सलाह न दूँगा ।

विट्ठलदासने रोषसे कहा, सारांश यह कि इस कामम आप मुझे कोई सहायता नही दे सकते ? अब आप जैसे महापुरुषोका यह हाल है तो दूसरोसे क्या आशा हो सकती है । मैने आपका बहुत समय नष्ट किया, इसके लिये क्षमा कीजियेगा ।

यह कहकर विट्ठलदास उठ खडे हुए और सेठ चिम्मनलालकी सेवामे पहुँचे । यह साँवले रगके बेडौल मनुष्य थे । बहुतही स्थूल, ढीले-ढाले, शरीरमे हाडकी जगह माँस और माँसकी जगह वायु भरी हुई थी । उनके विचार भी शरीरही के समान बेडौल थे । वह ऋषि-धर्म-सभाके सभापति, रामलीला कमेटीके चेयरमैन और रासलीला परिषद्के प्रबन्धकर्ता थे । राजनीतिको विषभरा साँप समझते थे और समाचार पत्रोको साँप की बाँबी । उच्च अधिकारियोंसे मिलनेकी धुन थी । अग्रजोके समाजमे उनका

विशेष मान था। वहाँ उनके सद्गुणोकी बडी प्रशसा होती थी। वह उदार न थे, न कृपण। इस विषयम चन्देकी नामवलि उनका मार्ग निश्चय किया करती थी। उनमे एक बड़ा गुण था जो उनकी दुर्बलताओको छिपाये रहता था। यह उनकी विनोदशीलता थी।

विट्ठलदासका प्रस्ताव सुनकर बोले, महाशय, आप भी बिलकुल शुष्क मनुष्य है। आपमे जरा भी रस नही। मुद्दतके बाद तो दालमडी में एक चीज नजर आई, आप उसे भी गायब करनेपर तुले हुए है। कमसे कम अबकी रासलीला तो हो जाने दीजिये। राजगद्दीके दिन उसका जल्सा होगा, धूम मच जायगी। आखिर तुर्किन आकर मन्दिर को भ्रष्ट करती है, ब्राह्मणी रहे तो क्या बुरा है! खैर, यह तो दिल्लगी हुई, क्षमा कीजियेगा। आपको धन्यवाद है कि ऐसे-ऐसे शुभ कार्य्य आपके हाथो पूरे होते है। कहाँ है चन्देकी फिहरिस्त?

विट्ठलदासने सिर खुजलाते हुए कहा, अभी तो मै केवल सेठ बलभद्र-दासजीके पास गया था, लेकिन आप जानते ही है, वह एक बैठकबाज हैं, इधर-उधरकी बात करके टाल दिया।

अगर बलभद्रदासने एक लिखा होता तो यहाँ दो मे संदेह न था। दो लिखते तो चारका निश्चित था। जब गुण कही शून्य हो तो गुणनफल शून्यके सिवा और क्या हो सकता था, लेकिन बहाना क्या करते। तुरन्त एक आश्रय मिल गया। बोले—महाशय, मुझे आपसे पूरी सहानुभूति है। लेकिन बलभद्रदासने कुछ समझकर ही टाला होगा। जब मै भी दूरतक सोचता हूँ तो इस प्रस्तावमे कुछ राजनीतिका रग दिखाई देता है, इसमे जरा भी सन्देह नही। आप चाहे इसे उस दृष्टिसे न देखते हों लेकिन मुझे तो इसमे गुप्त राजनीति भरी हुई साफ नजर आती है। मुसलमानोको यह बात अवश्य बुरी मालूम होगी, वह जाकर अधिकारियोसे इसकी शिकायत करेंगें। अधिकारियोको आप जानते ही है, आँख नही, केवल कान होते हैं। उन्हे तुरन्त किसी षड्यन्त्रका सन्देह हो जायगा।

विट्ठलदासने झुंझलाकर कहा, साफ-साफ क्यों नहीं कहते कि मैं कुछ नहीं देना चाहता ?

चिम्मनलाल—आप ऐसा ही समझ लीजिये। मैंने सारी जाति का कोई ठेका थोड़े ही लिया है ?

विट्ठलदासका मनोरथ यहाँ भी पूरा न हुआ, लेकिन यह उनके लिये कुछ नई बात न थी। ऐसे निराशाजनक अनुभव उन्हे नित्य ही हुआ करते थे। यहाँसे डाक्टर श्यामाचरणके पास पहुँचे। डाक्टर महोदय बड़े समझदार और विद्वान् पुरुष थे। शहरके प्रधान राजनीतिक नेता थे। उनकी वकालत खूब चमकी हुई थी। बहुत तौल-तौल कर मुँहसे शब्द निकालते थे। उनकी मौन गंभीरता विचारशीलताका द्योतक समझी जाती थी। शान्तिके भक्त थे, इसलिये उनके विरोधसे न किसीको हानि थी,न उनके योगसे किसीको लाभ। सभीतरहके लोग उन्हें अपना मित्र समझते थे, सभी अपना शत्रु। वह अपनी कमिश्नरीकी ओरसे सूबेके सलाहकारी सभाके सभासद् थे। विट्ठलदासजी की बात सुनकर बोले, मेरे योग्य जो सेवा हो वह मैं करनेको तैयार हूँ। लेकिन उद्योग यह होना चाहिये कि उन कुप्रथाओंका सुधार किया जाय जिनके कारण ऐसी समस्याएँ उपस्थित होती हैं। इस समय आप एककी रक्षा कर ही लेंगे तो इससे क्या होगा ? यहाँतो नित्यही ऐसी दुर्घटनाएँ होती रहती हैं। मूल कारणोंका सुधार होना चाहिये। कहिये तो कौंसिलमें कोई प्रश्न करूँ ?

विट्ठलदास उछलकर बोले, जी हाँ, यह तो बहुत ही उत्तम होगा ?

डाक्टरसाहबने तुरन्त प्रश्नोंकी एक माला तैयार की—

(१) क्या गवर्नमेंट बता सकती है कि गत वर्ष वेश्याओंकी संख्या कितनी बढ़ी ?

(२) क्या गवर्नमेंटने इस बातका पता लगाया है कि इस वृद्धिके क्या कारण हैं और गवर्नमेंट उसे रोकनेके लिये क्या उपाय करना चाहतीहै ?

(३) ये कारण कहाँ तक मनोविकारोंसे संबंध रखते हैं, कहाँतक आर्थिक स्थितिसे और कहाँ तक सामाजिक कुप्रथाओंसे ?

इसके बाद डाक्टर साहब अपने मुवक्किलोंसे बातें करने लगे; विट्ठलदास आध घंटे तक बैठे रहे, अन्तमें अधीर होकर बोले, तो मुझे क्या आज्ञा होती है ?

श्यामाचरण—आप इतमीनान रक्खें, अबकी कौंसिलकी बैठकमें मैं गवर्नमेंटका ध्यान इस ओर अवश्य आकर्षित करूँगा।

विट्ठलदासके जीमें आया कि डाक्टर साहबको आड़े हाथों लूं, किन्तु कुछ सोचकर चुप रह गये। फिर किसी बड़े आदमीके पास जानेका साहस न हुआ। लेकिन उस कर्मवीरने उद्योगसे मुंह नहीं मोड़ा। नित्य किसी सज्जनके पास जाते और उससे सहायता की याचना करते। यह उद्योग सर्वथा निष्फलतो नहीं हुआ। उन्हें कईसौ रुपयेके वचन और कई सौ रुपये नकद मिल गये, लेकिन ३०) मासिक की जो कमी थी वह इतने धनसे क्या पूरी होती ? तीन महीनेकी दौड़-धूपके बाद वह बड़े मुश्किलसे १०) मासिकका प्रबंध करने में सफल हो सके।

अन्तमें जब उन्हें अधिक सहायताकी कोई आशा न रही तो वह एक दिन प्रातःकाल सुमनबाईके पास गये। बह इन्हें देखतेही कुछ अनमनी-सी होकर बोली, कहिये महाशय, कैसे कृपा की ?

विट्ठल—तुम्हें अपना वचन याद है ?

सुमन—इतने दिनोंकी बातें अगर मुझे भूल जायँ तो मेरा दोष नहीं।

विट्ठल—मैंने तो बहुत चाहा कि शीघ्र ही प्रवन्ध हो जाय, लेकिन ऐसीजातिसे पाला पड़ा है। जिसमें जातीयताका सर्वथा लोप हो गया है। तिसपर भी मेरा उद्योग बिलकुल व्यर्थ नहीं हुआ। मैंने ३०) मासिकका प्रबन्ध कर लिया है और आशा है कि और जो कसर है वह भी पूरी हो जायगी। अब तुमसे मेरी यह प्रार्थना है कि इसे स्वीकार करो और आजही नरककुण्डको छोड़ दो।

सुमन—शर्माजीको आप नहीं ला सके क्या ?

विट्ठल—वह किसी तरह आनेपर राजी न हुए। इस ३०) में २०) मासिकका वचन उन्होंने दिया है।

सुमनने विस्मित होकर कहा, अच्छा! वह तो बड़े उदार निकले। सेठों से भी कुछ मदद मिली?

विट्ठल—सेठोंकी बात न पूछो। चिम्मनलाल रामलीलाके लिये हजार दो हजार रुपये खुशीसे दे देंगे। बलभद्रदाससे अफसरोंकी बधाई के लिये इससे भी अधिक मिल सकता है, लेकिन इस विषयमें उन्होंने कोरा जवाब दिया।

सुमन इस समय सदनके प्रेमजाल में फँसी हुई थी। प्रेमका आनन्द उसे कभी नहीं प्राप्त था, इस दुर्लभ रत्नको पाकर वह उसे हाथसे नहीं जाने देना चाहती थी। यद्यपि वह जानती थी कि इस प्रेमका परिणाम वियोगके सिवा और कुछ नहीं हो सकता, लेकिन उसका मन कहता था कि जब तक यह आनन्द मिलता है तबतक उसे क्यों न भोगूँ। आगे चलकर न जाने क्या होगा, जीवनकी नाव न जाने किस-किस भँवरमें पड़ेगी, न जाने कहाँ-कहाँ भटकेगी। भावी चिन्ताओंको वह अपने पास न आने देती थी क्योंकि उधर भयंकर अंधकारके सिवा और कुछ न सूझता था। अतएव जीवनके सुधारका वह उत्साह, जिसके वशीभूत होकर उसने विट्ठलदाससे वह प्रस्ताव किये थे, क्षीण हो गया था। इस समय अगर विट्ठलदास १००) मासिकका लोभ दिखाते तो भी वह खुश न होती, किन्तु एक बार जो बात खुद ही उठाई थी उससे फिरते हुए शर्म आती थी। बोली, मैं इसका जवाब आपको कल दूँगी। अभी कुछ सोच लेने दीजिये।

विट्ठल—इसमें क्या सोचना समझना है?

सुमन—कुछ नहीं, लेकिन कल ही पर रखिये।

रातके दस बज गये थे। शरद् ऋतुकी सुनहरी चाँदनी छिटकी हुई थी। सुमन खिड़कीसे नीलवर्ण आकाशकी ओर ताक रही थी। जैसे चाँदनीके प्रकाश में तारागणकी ज्योति मलीन पड़ गई थी, उसी प्रकार उसके हृदयमें चन्द्ररूपी सुविचारने विकाररूपी तारागणको ज्योतिहीन कर दिया था।

सुमनके सामने एक कठिन समस्या उपस्थित थी, विट्ठलदासको क्या उत्तर दूं ?

आज प्रात.काल उसने कल जवाव देनेका वहाना करके विट्ठलदास को टाला था। लेकिन दिन भर के सोच-विचार ने उसके विचारोमें कुछ सशोधन कर दिया था।

सुमनको यद्यपि यहाँ भोग-विलासके सभी सामान प्राप्त थे, लेकिन वहुधा उसे ऐसे मनुष्योकी आवभगत करनी पड़ती थी जिनकी सूरत से उसे घृणा होती थी, जिनकी वातोको सुनकर उसका जी मचलाने लगता था। अभी उसके मनमे उत्तम भावोका सर्वथा लोप नही हुआ था। वह उस अधोगतिको नहीं पहुँची थी जहाँ दुर्व्यसन हृदयके समस्त भावोको नष्ट कर देता है। इसमे सन्देह नही कि वह विलासकी सामग्रियोंपर जान देती थी, लेकिन इन सामग्रियोंकी प्राप्तिके लिये जिस बेहयाईकी जरूरत थी वह उसके लिये असहृय थी और कभी कभी एकान्तमे वह अपनी वर्तमान दशा को पूर्वावस्थासे तुलना किया करती थी। वहाँ यह टीमटाम न थी, किन्तु वह अपने समाजमें आदर की दृष्टिसे देखी जाती थी। वह अपनी पड़ोसिनोंके सामने अपनी कुलीनतापर गर्व कर सकती थी, अपनी धार्मिकता और भक्ति-भावका रोव जमा सकती थी। किसी के सम्मुख उसका सिर नीचा नही होता था। लेकिन यहाँ उसके सगर्व हृदयको पग-पगपर लज्जासे मुह छिपाना पड़ता था। उसे ज्ञात होता था कि मै किसी कुलटाके सामने भी सिर उठाने योग्य नहीं हूँ। जो निरादर और अपमान उसे उस समय सहने पडते थे उनकी अपेक्षा यहाँकी प्रेमवार्ता और आँखोंकी सनकियाँ अधिक दु:खजनक प्रतीत होती थीं और उसके भावपूर्ण हृदयपर कुठाराघात कर देती थी। तव उसका व्यथित हृदय पद्मसिहपर दाँत पीसकर रह जाता था। यदि उस निर्दय मनुष्यने अपनी वदनामीके भयसे मेरी अवहेलना न की होती तो मुझे इस पापकुण्डमे कूदनेका साहस न होता। अगर वह मुझे चार दिन भी पडा रहने देते तो कदाचित् मै अपने घर लौट जाती अथवा वह (गजाधर) ही मुझे मना ले जाते, फिर उसी प्रकार लड़-झगड़कर जीवनके दिन काटने-

कटने लगते। इसलिये उसने विट्ठलदाससे पद्मसिहको अपने साथ लानेकी शर्त की थी।

लेकिन जब आज जब विट्ठलदाससे उसे ज्ञात हुआ कि शर्माजी मुझे उबारनेके लिये कितने उत्सुक हो रहे है और कितनी उदारताके साथ मेरी सहायता करने पर तैयार है तो उनके प्रति घृणाके स्थानपर उसके मनमे श्रद्धा उत्पन्न हुई। वह बडे सज्जन पुरुष है। मै खामखाह अपने दुराचार का दोष उनके सिर रखती हूँ। उन्होने मुझपर दया की है। मै जाकर उनके पैरोपर गिर पड़ूंगी और कहूँगी कि आपने इस अभागिनीका उपकार किया है उसका बदला आपको ईश्वर देगे : यह कगन भी लौटा दूं, जिसमें उन्हें यह सतोष हो जाय कि जिस आत्माकी मैने रक्षाकी है, वह सर्वथा उसके अयोग्य नही है। बस, वहांसे आकर इस पापके मायाजालसे निकल भागूं।

लेकिन सदन को कैसे भुलाऊँगी।

अपने मनकी इस चचलतापर वह झुझला पड़ी। क्या उस पापमय प्रेमके लिये जीवन-सुधारक इस दुर्लभ अवसरको हाथसे जाने दूं! चार दिन की चाँदनीके लिये सदैव पापके अन्धकारमें पडी रहूँ? अपने हाथसे एक सरलहृदय युवक का जीवन नष्ट करूँ? जिस सज्जन पुरुषने मेरे साथ वह सद्व्यवहार किया है उन्हीके साथ यह छल! यह कपट! नही, मै इस दूषित प्रेमको हृदयसे निकाल दूंगी। सदनको भूल जाऊँगी। उससे कहूँगी, तुम भी मुझे इस मायाजाल से निकलने दो।

आह! मुझे कैसा धोखा हुआ! यह स्थान दूरसे कितना सुहावना, मनोरम, कितना सुखमय दिखाई देता था। मैने इसे फूलोका बाग समझा, लेकिन है क्या? एक भयकर वन, मांसाहारी पशुओ और विषैले कीड़ोसे भरा हुआ!

यह नदी दूरसे चाँदकी चादर-सी बिछी हुई कैसी भली मालूम होती थी? पर अन्दर क्या मिलता है? बडे बडे विकराल जलजन्तुओंका क्रीड़ास्थल! सुमन इसी प्रकार विचार सागर में मग्न थी। उसे यह

उत्कंठा हो रही थी कि किसी तरह सवेरा होजाय और विट्ठलदास आ जायं, किसी तरह यहाँ से निकल भागूं। आधी रात बीत गई और उसे नीद न आई। धीरे-धीरे उसे शका होने लगी कि कही सवेरे विटठलदास न आये तो क्या होगा ? क्या मुझे फिर यहाँ प्रात:कालसे सध्यातक मीरासियों ओर धाड़ियोंकी चापलूसियाँ सुननी पड़ेगी। फिर पापरजोलिप्त पुतलियोका आदर सम्मान करना पडेगा ? सुमनको यहाँ रहते हुए अभी छ: मास भी पूरे नहीं हुए थे लेकिन इतने ही दिनोमे उसे यहाँका पूरा अनुभव हो गया था। उसके यहाँ सारे दिन मीरासियोका जमघट रहता था। वह अपने दुराचार, छल ओर क्षुद्रताकी कथाएँ बड़े गर्वसे कहते, उनमें कोई चतुर गिरहकट था, कोई धूर्त ताश खेलने वाला, कोई टपकेकी विद्यामे निपुण, कोई दीवार फांदनेके फनका उस्ताद और सबके सब अपने दुस्साहस और दुर्बलतापर फूले हुए। पड़ोस की रमणियाँ भी नित्य आती थी, रंगी, बनी ठनी, दीपकके समान जगमगाती हुई, किन्तु यह स्वर्णपात्र थे हलाहलसे भरे हुए पात्र-उनमे कितना छिछोरापन था ! कितना छल ! कितनी कुवासना ! वह अपनी निर्लज्जता और कुकर्मो के वृत्तांत कितने मजे ले लेकर कहती। उनमें लज्जाका अश भी न रहा था। सब ठगनेकी, छलनेकी, धुन में मन सदैव पापतृष्णा मे लिप्त। शहरमे जो लोग सच्चरित्र थे उन्हे यहाँ खूब गालियाँ दी जाती थी, उनकी खूब हंसी उड़ाई जाती थी, बुद्धू गोखा आदि की पदवियाँ दी जाती थी। दिनभर सारे शहरकी चोरी और डाके, हत्या और व्यभिचार, गर्भपात और विश्वासघातकी घटनाओंकी चर्चा रहती। यहाँका आदर और प्रेम अब अपने यथार्थ रूपमे दिखाई देता था। यह प्रेम नहीं था, आदर नही था, केवल कामलिप्सा थी। अबतक सुमन धैर्यके साथ यह सारी विपत्तियाँ झेलती थी, उसने समझ लिया था कि अब इसी नरककुण्डमे जीवन व्यतीत करना है तो इन बातोसे कहाँ तक भागूं। नरकमे पडकर नारकीय धर्मका पालन करना अनिवार्य था। पहलीबार विट्ठलदास जब उसके पास आये थे तो उसने मनमें उनकी उपेक्षा की थी, उस समय तक उसे यहांके रंग ढंग का ज्ञान न था। लेकिन आज मुक्तिका द्वार सामने

खुला देखकर इस कारागारमें उसे क्षणभरभी ठहरना असह्य हो रहा था। जिस तरह अवसर पाकर मनुष्यकी पापचेष्टा जागृत हो जाती है, उसी प्रकार अवसर पाकर उसकी धर्मचेष्टा भी जागृत हो जाती है। रातके तीन बजे थे। सुमन अभी तक करवटे बदल रही थी, उसका मन वलात् सदन की ओर खिचता था। ज्यो-ज्यो प्रभात निकट आता था, उसकी व्यग्रता बढ़ती जाती थी। वह अपने मनको समझा रही थी। तू इस प्रेमपर फूला हुआ है? क्या तुझे मालूम नही कि इसका आधार केवल रग रूप है! यह प्रेम नही है, प्रेमकी लालसा है। यहाँ कोई सच्चा प्रेम करने नही आता। जिस भाँति मन्दिरमे कोई सच्ची उपासना करने नही जाता, उसी प्रकार उस मण्डीमे कोई प्रेमका सौदा करने नही आता, सब लोग केवल मन बहलानेके लिये आते है। इस प्रेमके भ्रममे मत पड़।

अरुणोदयके समय सुमनको नीद आ गयी।

२२

शाम हो गई। सुमनने दिन भर विट्ठलदासकी राह देखी, लेकिन वह अब तक नही आये। सुमनके मनमे जो नाना प्रकारकी शंकाएँ उठ रही थीं वह पुष्ट हो गईं। विट्ठलदास अब नही आवेगे, अवश्य कोई विघ्न पडा। या तो वे किसी दूसरे काममे फंस गये या जिन लोगोने सहायताका वचन दिया था पलट गये। मगर कुछ भी हो एक बार विट्ठलदासको यहाँ आना चाहिये था मुझे मालूम तो हो जाता कि क्या निश्चय हुआ। अगर कोई मेरी सहायता न करता, न करे, मै अपनी मदद आप कर लूंगी, केवल एक सज्जन पुरुषकी आड़ चाहिये। क्या विट्ठलदाससे इतना भी नही होगा। चलूं, उनसे मिलूं और कह दूं कि मुझे आर्थिक सहायताकी इच्छा नही है, आप इसके लिये हैरान न हों, केवल मेरे रहने का प्रबंध कर दे और मुझे कोई काम बता दें, जिससे मुझे सूखी रोटियाँ मिल जाया करे, मै और कुछ नही चाहती। लेकिन मालूम नही, वह कहाँ रहते है, बे पते-ठिकाने कहाँ-कहाँ भटकती फिरूँगी।

चलूँ पार्ककी तरफ, लोग वहाँ हवा खाने आया करते हैं, सम्भव हैं, उनसे भेंट हो जाय। शर्माजी नित्य उधर ही घूमने जाया करते हैं, संभव हैं, उन्हीसे भेंट हो जाय। उन्हें यह कंगन दे दूंगी और इसी बहाने से इस विषयमें भी कुछ बातचीत कर लूँगी।

यह निश्चय करके सुमनने एक किरायेकी बग्घी मँगवाई और अकेले सैर को निकली। दोनों खिडकियाँ बन्द कर दी, लेकिन झँझरियो से झाँकती जाती थी। छावनीकी तरफ दूर तक इधर उधर ताकती चली गई लेकिन दोनों आदमियोंमे कोई भी न दिखाई पडा। वह कोचवानको कुइन्स पार्ककी तरफ चलनेके लिये कहना ही चाहती थी कि सदन घोड़े को दौडाता आता दिखाई दिया। सुमन का हृदय उछलने लगा। ऐसा जान पड़ा मानो इसे वरसोंके बाद देखा है। स्थानके बदलने से कदाचित् प्रेममें नया उत्साह आ जाता हैं। उसका जी चाहा कि उसे आवाज दूँ लेकिन जब्त कर गई। जबतक आँखोसे ओझल न हुआ उसे सतृष्ण प्रेम दृष्टिसे देखती रही। सदनके सर्वांगपूर्ण सौदर्यपर वह कभी इतनी मुग्ध न हुई थी।

बग्घी कुइन्स पार्ककी ओर चली। यह पार्क शहरसे दूर था, बहुत कम लोग इधर आते थे। लेकिन पद्मसिंहका एकान्त प्रेम उन्हे यहाँ खींच लाया था। यहाँ विस्तृत मैदान मे एक तकियेदार बेंच पर बैठे हुए वह घंटों विचारमे मग्न रहे। ज्योंही बग्धी फाटकके भीतर आई सुमनको शर्माजी मैदानमें अकेले बैठे दिखाई दिये। सुमनका हृदय दीपशिखाकी भाँति थर-थराने लगा। भयकी इस दशाका ज्ञान पहले होता तो वह यहाँतक आ ही, न सकती। लेकिन इतनी दूर आकर और शर्माजीको सामने बैठे देखकर निष्काम लौट जाना मूर्खता थी। उसने जरा दूर पर बग्घी रोक दी और गाड़ी से उतरकर शर्माजीकी ओर चली, उसी प्रकार जैसे शब्द वायुके प्रतिकूल चलता हैं।

शर्माजी कुतूहलसे बग्घी देख रहे थे। उन्होने सुमनको पहचाना नही, आश्चर्य हो रहा था कि यह कौन महिला इधर चली आती है। विचारकिया कि कोई ईसाई लेडी होगी, लेकिन जब सुमन समीप आ गई तो उन्होने उसे

पहचाना। एक बार उसकी ओर दबी आँखोंसे देखा, फिर जैसे हाथ पाँव फूल गये हो। जब सुमन सिर झुकाये हुए उनके सामने आकर खडी हो गई तो वह झेंपे हुए दीनतापूर्ण नेत्रोंसे इधर-उधर देखने लगे, मानो छिपने के लिये कोई बिल ढूंढ रहे हो। तब अकस्मात् वह लपककर उठे और पीछेकी ओर फिरकर वेगके साथ चलने लगे। सुमनपर जैसे वज्रपात हो गया। वह क्या आशा मनमें लेकर आयी थी और क्या आँखों से देख रही है! प्रभो, यह मुझे इतना नीच और अधम समझते है कि मेरी परछाईसे भी भागते है। वह श्रद्धा जो उसके हृदयमे शर्माजीके प्रति उत्पन्न हो गई थी, क्षणमात्रमें लुप्त हो गई। बोली, मै आपहीसे कुछ कहने आई हूँ, जरा ठहरिये, मुझपर इतनी कृपा कीजिये।

शर्माजीने और भी कदम बढाया, जैसे कोई भूतसे भागे। सुमनसे यह अपमान न सहा गया। तीव्र स्वरसे बोली, मै आपसे कुछ माँगने नही आई हूँ कि आप इतना डर रहे है। मै आपको केवल यह कंगन देने आई हूँ। यह लीजिये, अब मै आपही चली जाती हूँ।

यह कहकर उसने कंगन निकालकर शर्माजीकी तरफ फेका।

शर्माजी ठिठक गये, जमीनपर पडे हुए कगनको देखा। यह सुभद्रा का कंगन था।

सुमन बग्घीकी तरफ कई कदम जा चुकी थी। शर्माजी उसके निकट आकर बोले, तुम्हें यह कंगन कहाँ मिला?

सुमन—अगर मै आपकी बातें न सुनूं और मुँह फेरकर चली जाऊँ तो आपको बुरा न मानना चाहिये।

पद्म—सुमन बाई, मुझे लज्जित न करो, मै तुम्हारे सामने मुँह दिखाने योग्य नहीं हूँ।

सुमन—क्यों?

पद्म—मुझे बार-बार यह वेदना होती है कि अगर उस अवसर पर मैंने तुम्हें अपने घरसे जानेके लिये न कहा होता तो यह नौबत न आती।

सुमन—तो इसके लिये आपको लज्जित होनेकी क्या आवश्यकता

है ? अपने घरसे निकालकर आपने मुझपर बड़ी कृपा की, मेरा जीवन सुधार दिया ।

शर्माजी इस तानेसे तिलमिला उठे, अगर यह कृपा है तो गजाधर पांडे और विट्ठलदासकी है, मैं ऐसी कृपाका श्रेय नही चाहता ।

सुमन—आप 'नेकीकर और दरिया में डाल' वाली कहावतपर चले, पर मैं तो मनमें आपका एहसान मानती हूँ । शर्माजी, मेरा मुंह न खुलवाइये, मन की बात मन ही में रहने दीजिये, लेकिन आप जैसे सहृदय मनुष्यसे मुझे ऐसी निर्दयताकी आशा न थी । आप चाहे समझते हों कि आदर और सम्मानकी भूख बड़े आदमियो हीको होती है किन्तु दीनदशावाले प्रणियोको इसकी भूख और अधिक होती है, क्योकि उनके पास इसके प्राप्त करनेका कोई साधन नही होता । वे इसके लिये चोरी, छल कपट सब कुछ कर बैठते है । आदरमें वह संतोष है जो धन और भोग विलासमें भी नहीं है । मेरे मनमे नित्य यही चिंता रहती थी कि यह आदर कैसे मिले । इसका उत्तर मुझे कितनी ही बार मिला, लेकिन आपके होलीवाले जलसेके दिन जो उत्तर मिला, उसने भ्रम दूर कर दिया, मुझे आदर और सम्मानका मार्ग दिखा दिया । यदि मैं उस जलसेमें न आती तो आज मैं अपने झोपड़ेमे संतुष्ट होती ! आपको मैं बहुत सच्चरित्र पुरुष समझती थी, इसलिये आपकी रसिकता का मुझपर और भी प्रभाव पडा । भोलीबाई आपके सामने गर्वसे बैठी हुई थी, आप उसके सामने आदर और भक्तिकी मूर्ति बने हुए थे । आपके मित्र-वृन्द उसके इशारोंपर कठपुतलीकी भाँति नाचते थे । एक सरलहृदय आदर को अभिलाषिणी स्त्रीपर इस दृश्यका जो फल हो सकता था वही मुझपर हुआ, पर अब उन बातोंका जिक्र ही क्या ? जो हुआ वह हुआ । आपको क्यो दोष दूं ? यह सब मेरा अपराध था । मैं........

सुमन और कुछ कहना चाहती थी, लेकिन शर्माजीने, जो इस कथाको बड़े गभीर भावसे सुन रहे थे, बात काट दी और पूछा, सुमन, ये बाते तुम मुझे लज्जित करनेके लिये कह रही हो या सच्ची है ?

सुमन—कह तो आपको लज्जित करनेहीके लिये रहीहूँ लेकिन बातें सच्ची है। इन बातोंको बहुत दिन हुए मैंने भुला दिया था लेकिन इस समय आपने मेरी परछाईंसे भी दूर रहनेकी चेष्टा करके वे सब बातें मुझे याद दिला दी। लेकिन अब मुझे स्वयं पछतावा हो रहा है, मुझे क्षमा कीजिये।

शर्माजीने सिर न उठाया, फिर विचारमें डूब गये। सुमन उन्हें धन्य-वाद देने आई थी, लेकिन बातोंका कुछ क्रम ऐसा बिगडा कि उसे इसका अवसर ही न मिला और अब इतनी अप्रिय बातोंके बाद उसे अनुग्रह और कृपा की चर्चा असंगत जान पडी। वह अपनी बग्घीकी ओर चली। एकाएक शर्माजीने पूछा—और कंगन ?

सुमन—यह मुझे कल सर्राफेमें दिखाई दिया। मैंने बहूजीके हाथोंमें इसे देखा था, पहचान गई; तुरन्त वहांसे उठा लाई।

शर्मा—कितना देना पडा ?

सुमन—कुछ नहीं, उलटे सर्राफपर और धौंस जमाई।

शर्मा—सर्राफका नाम बता सकती हो।

सुमन—नहीं, वचन दे आई हूँ। यह कहकर सुमन चली गई। शर्माजी कुछ देर तक तो बैठे रहे, फिर बेंचपर लेट गये। सुमनका एक एक शब्द उनके कानों में गूंज रहा था। वह ऐसे चिंतामग्न हो रहे थे कि कोई उनके सामने आकर खडा हो जाता तो भी उन्हे खबर न होती। उनके विचारोंने उन्हें स्तंभित कर दिया था। ऐसा मालूम होता था मानों उनके मर्मस्थानपर कडी चोट लग गई है, शरीरमें एक शिथिलतासी प्रतीत होती थी। वह एक भावुक मनुष्य थे। सुभद्रा अगर कभी हँसीमें भी कोई चुभती हुई बात कह देती तो कई दिनों तक वह उनके हृदयको मथती रहती थी। उन्हें अपने व्यवहारपर, आचारविचारपर, अपने कर्तव्यपालन पर अभिमान था। आज वह अभिमान चूर-चूर हो गया। जिस अपराधको उन्होंने पहले गजाधर और विट्ठलदासके सिर मढकर अपनेको सतुष्ट किया था, वही आज सौगुने बोझके साथ उनके सिरपर लद गया ! सिर हिलानेकी भी जगह न थी। वह इस अपराधसे दबे जाते थे। विचार तीव्र होकर

मूर्तिमान हो जाता है। कही बहुत दूरसे उनके कानमें आवाज आई वह जलसा न होता तो आज मै अपने झोपड़ेमे मग्न होती। इतनेमें हवा चली, पत्तियाँ हिलने लगी, मानो वृक्ष अपने काले, भयंकर सिरोको हिला हिलाकर कहते थे, सुमनकी यह दुर्गति तुमने की है।

शर्माजी घबरा कर उठे, देर होती थी? सामने गिरजाघरका ऊँचा शिखर था। उसमे घण्टा बज रहा था। घण्टे की सुरीली ध्वनि कह रही थी, सुमनकी यह दुर्गति तुमने की।

शर्माजीने बलपूर्वक विचारोको समेटकर आगे कदम बढया, आकाशपर दृष्टि पडी। काले पटलपर उज्ज्वल दिव्य अक्षरोमे लिखा हुआ था, सुमनकी यह दुर्गति तुमने की।

जैसे किसी चटैल मैदानमें सामनेसे उमडी हुई काली घटाओको देखकर मुसाफिर दूरके अकेले वृक्षकी ओर सवेग चलता है उसी प्रकार शर्माजी लम्बे लम्बे पग धरते हुए उस पार्कसे आबादीकी तरफ चले, किन्तु विचार-चित्रको कहाँ छोडते? सुमन उनके पीछे-पीछे आती थी, कभी सामने आकर रास्ता रोक लेती और कहती, मेरी यह दुर्गति तुमने की है। कभी इस तरफसे कभी उस तरफसे निकल आती और यही शब्द दुहराती। शर्माजीने बड़ी कठिनाईसे उतना रास्ता तै किया, घर आये और कमरेमें मूँह ढाँपकर पडे रहे। सुभद्राने भोजन करनेके लिए आग्रह किया तो उसे सिर-दर्दका बहाना करके टाला। सारी रात सुमन उनके हृदयमे बैठी हुई उन्हे कोसती रही, तुम विद्वान् बनते हो, तुमको अपने बुद्धि-विवेकपर घमड है, लेकिन तुम फूसके झोपड़ोके पास बारूदकी हवाई फुलझड़ियाँ छोड़ते हो। अगर तुम अपना धन फूकना चाहते हो तो जाकर मैदानमें फूँको, गरीब-दुखियोंका घर क्यो जलाते हो?

प्रातःकाल शर्माजी विट्ठलदासके घर जा पहुंचे।

२०

सुभद्राको संध्याके समय कगनकी याद आई। लपकी हुई स्नानघरमें गई। उसे खूब याद था कि उसने यही ताकपर रख दिया था, लेकिन उसका

वहाँ पता न था, इसपर वह घबराई। अपने कमरेके प्रत्येक ताक और आलमारीको देखा, रसोईके कमरेमें जाकर चारो ओर ढूँढा। घबराहट और भी बढ़ी। फिर तो उसने एक-एक सन्दूक, एक एक कोना छान मारा, मानो कोई सूई ढूँढ रही हैं, लेकिन कुछ पता न चला। महरीसे पूछा तो उसने बेटेकी कसम खाकर कहा, मै नही जानती। जीतनको बुलाकर पूछा, वह बोला, मालकिन, बुढ़ापेमे यह दाग मत लगाओ। सारी उमिर भले भले आदमियोंकी चाकरीहीमें कटी है, लेकिन कभी नीयत नही बिगाड़ी, अब कितने दिन जीना है कि नीयत बद करूँगा। सुभद्रा हताश हो गई, अब किससे पूछे? जी न माना, फिर सन्दूक, कपडोकी गठरियाँ आदि खोल-खोलकर देखी। आटे दालकी हाँडियाँ भी न छोडी, पानीके मटकोमे हाथ डाल-डालकर टटोला। अन्तको निराश होकर चारपाईपर लेट गई। उसने सदनको स्नानगृहमें जाते देखा था, शंका हुई कि उसीने हँसीसे छिपाकर रखा हो, लेकिन उससे पूछनेकी हिम्मत न पड़ी। सोचा शर्माजी घूमकर खाना खाने आवें तो उनसे कहूँगी। ज्योही शर्माजी घरमें आये, सुभद्राने उनसे रिपोर्ट की! शर्माजीने कहा अच्छी तरह देखो, घरहीमें होगा, ले कौन जायगा?

सुभद्रा—घरकी एक-एक अँगुल जमीन छान डाली।

जी—नौकरोंसे छोपूछा ?

सुभद्रा—सबसे पूछा, दोनो कसम खाते हैं, मुझे खूब याद है कि मैंने उसे नहानेके कमरेमे ताकपर रख दिया था।

शर्मा—तो क्या उसके पर लगे थे जो आपही उड गया?

सुभद्रा—नौकरोंपर तो मेरा सन्देह नहीं है।

शर्मा—तो दूसरा कौन ले जायगा?

सुभद्रा—कहो तो सदनसे पूछूं? मैंने उसे उस कमरेमें जाते देखा था, शायद दिल्लगीके लिये छिपा रखा हो।

शर्मा—तुम्हारी भी क्या समझ है! उसने छिपाया होता तो कह न देता?

सुभद्रा—तो पूछनेमें हर्जही क्या है ? सोचता हो कि खूब हैरान करके बताऊँगा ।

शर्मा—हर्ज क्यों नही है ? कही उसने न देखा हो तो समझेगा, मुझे चोरी लगाती है ।

सुभद्रा—उस कमरेमें तो वह गया था ? मैंने अपनी आँखो देखा ।

शर्मा—तो क्या वहाँ तुम्हारा कंगन उठाने गया था ? बे बातकी बात करती हो। उससे भूलकर भी न पूछना। एक तो वह ले ही न गया होगा, और ले भी गया होगा, तो आज नही कल दे देगा, जल्दी क्या है ?

सुभद्रा—तुम्हारे जैसा दिल कहाँ से लाऊँ ? ढाढ़स तो हो जायगी ?

शर्मा—चाहे जो कुछ हो, उससे कदापि न पूछना ।

सुभद्रा उस समय तो चुप हो गई लेकिन जब रातको चचा भतीजे भोजन करने बैठे तो उससे न रहा गया। सदनसे बोली—लाला मेरा कंगन नही मिलता, छिपा रखा हो तो दे दो, क्यो हैरान करते हो ?

सदनके मुखका रग उड गया और कलेजा काँपने लगा। चोरी करके सीनाजोरी करने का ढंग न जानता था। उसके मुँहमे कौर था, उसे चबाना भूल गया। इस प्रकार मौन हो गया कि मानों कुछ सुना ही नही। शर्माजीने सुभद्राकी ओर ऐसे आग्नेय नेत्रोंसे देखा कि उसका रक्त सूख गया। फिर जबान खोलने का साहस न हुआ। फिर सदनने शीघ्रतापूर्वक दो चार ग्रास खाये और चौकेसे उठ गया।

शर्माजी बोले, यह तुम्हारी क्या आदत है कि मैं जिस कामको मना करता हूँ वह अदबदाके करती हो ।

सुभद्रा—तुमने उसकी सूरत नही देखी ? वही ले गया है, अगर झूठ निकल जाय तो जो चोर की सजा वह मेरी ।

शर्मा—यह सामुद्रिक विद्या कबसे सीखी ?

सुभद्रा—उसकी सूरतसे साफ मालूम होता था ।

शर्मा—अच्छा मान लिया वही ले गया हो तो ? कंगनकी क्या हस्ती है,मेरा तो यह शरीर ही उसीका पाला है। वह अगर मेरी जान माँगे तो

मैं खुशीसे दे दूं ! मेरा सब कुछ उसका है, वह चाहे माँगकर ले जाय चाहे उठा ले जाय।

सुभद्रा चिढ़कर बोली, तो तुमने गुलामी लिखाई है, गुलामी करो; मेरी चीज कोई उठा ले जायगा तो मुझसे चुप न रहा जायगा।

दूसरे दिन सन्ध्याको जब शर्माजी सैर करके लौटे तो सुभद्रा उन्हें भोजन करनेके लिये बुलाने गई। उन्होंने कगन उसके सामने फेंक दिया। सुभद्राने आश्चर्यसे दौडकर उठा लिया और पहचानकर बोली, मैंने कहा था न कि उन्होंने छिपाकर रखा होगा, वही बात निकली न ?

शर्मा—फिर वही ये सिर पैरकी बातें करती हो। इसे मैंने बाजारमें एक सर्राफेकी दूकानपर पाया है। तुमने सदनपर सन्देह करके उसे भी दुःख पहुँचाया और आपको भी कलुषित किया।

२१

विट्ठलदासको सन्देह हुआ कि सुमन ३०) मासिक स्वीकार नहीं करना चाहती, इसलिये उसने कल उत्तर देनेका बहाना करके मुझे टाला है। अतएव वह दूसरे दिन उसके पास नहीं गये, इसी चिन्तामें पड़े रहे कि शेष रुपयोंका कैसे प्रबन्ध हो ? कभी सोचते, दूसरे शहरमें डेपुटेशन ले जाऊँ, कभी कोई नाटक खेलने का विचार करते। अगर उनका वश चलता तो इस शहरके सारे बडे-बडे धनाढ्य पुरुषोंको जहाजमें भरकर काले पानी भेज देते। शहरमें एक कुँवर अनिरुद्धसिंह सज्जन, उदार पुरुष रहते थे। लेकिन विट्ठलदास उनके द्वार तक जाकर केवल इसलिये लौट आये कि उन्हें वहाँ तबलेकी गमक सुनाई दी। उन्होंने मनमे सोचा, जो मनुष्य राग-रंगमें इतना लिप्त है वह इस काममे मेरी क्या सहायता करेगा ? इस समय उसकी सहायता करना उनकी दृष्टिमें सबसे बडा पुण्य और उसकी उपेक्षा करना सबसे बडा पाप था। वह इसी संकल्प विकल्पमें पडे हुए थे कि सुमनके पास चलूँ या न चलूँ। इतने में पंडित पद्मसिंह आते हुए दिखाई दिये. आँखें चढी हुई लाल और वदन मलिन था। ज्ञात होता था कि सारी रातके जागे है। चिन्ता और ग्लानिकी मूर्ति बने हुए थे। तीन महीनेसे

विट्ठलदास उनके पास नहीं गये थे, उनकी ओरसे हृदय फट गया था। लेकिन शर्माजीकी यह दशा देखतेही पिघल गये और प्रेमसे हाथ मिलाकर बोले, भाई साहब उदास दिखाई देते हो, कुशल तो है ?

शर्मा—जी हाँ, सब कुशल ही है, इधर महीनोसे आपकी भेंट नही हुई, मिलनेको जी चाहता था, सुमनके विषयमें क्या निश्चय किया ?

विट्ठल—उसी चिन्तामें तो रात-दिन पड़ा रहता हूँ। इतना बड़ा शहर है पर ३०) मासिकका प्रबन्ध नही हो सकता। मुझे ऐसा अनुमान होता है कि मुझे मॉगना नही आता। कदाचित् मुझमे किसीके हृदयको आकर्षित करनेकी सामर्थ्य नही है। मै दूसरोंको दोष देता हूँ, पर वास्तवमें दोष मेरा ही है। अभीतक केवल १०) का प्रबन्ध हो सका है ! जितने रईस है सबके सब पाषाण हृदय। अजी रईसोकी बात तो न्यारी रही, मि० प्रभाकर रावने भी कोरा जवाब दिया। उनके लेखोको पढ़ो तो मालूम होता है कि देशानुराग और दयाके सागर हैं, होलीके जलसेके बाद महीनों तक आपपर विषकी वर्षा करते रहे, लेकिन कल जो उनकी सेवामें गया तो बोले, क्या जातिका सबसे बड़ा ऋणी मै ही हूँ, मेरे पास लेखनी है, उससे जातिकी सेवा करता हूँ, जिसके पास धन हो, वह धनसे सेवा करे। उनकी बातें सुनकर चकित रह गया। नया मकान बनवा रहे हैं, कोयलेकी कंपनीमें हिस्से खरीदे है, लेकिन इस जातीय कामसे साफ निकल गये। अजी, और लोग जरा सकुचाते तो है, उन्होने तो उल्टे मुझीको आड़े हाथो लिया।

शर्माजी—आपको निश्चय है कि सुमनबाई ५०) पर विधवाश्रममें चली आवेगी ?

विट्ठल—हाँ मुझे निश्चय है, यह दूसरी बात है कि आश्रम कमेटी उसे लेना पसन्द न करे। तब कोई और प्रबन्ध करूँगा।

शर्मा—अच्छा तो लीजिये, आपकी चिन्ताओं का अन्त किये देता हूँ मैं ५०) मासिक देने पर तैयार हूँ और ईश्वरने चाहा तो आजन्म देता रहूँगा।

विट्ठलदासने विस्मयसे शर्माजीकी तरफ देखा और कृतज्ञतापूर्ण

भावसे उनके गले लिपटकर बोले, भाई साहब, तुम धन्य हो ! इस समय तुमने वह काम किया है कि जी चाहता है, तुम्हारे पैरोंपर गिरकर रोऊँ। तुमने हिन्दू जातिकी लाज रख ली और सारे लखपतियोंके मुँहमें कालिख लगा दी। लेकिन इतना भारी बोझ कैसे सभालोगे ?

शर्मा—सब हो जायगा, ईश्वर कोई-न-कोई राह अवश्य निकालेंगे ही।

विट्ठल—आजकल आमदनी अच्छी हो रही है क्या ?

शर्मा—आमदनी नहीं पत्थर हो रही है, घोड़ागाड़ी बेच दूंगा, ३०) की बचत यों हो जायगी, बिजलीका खर्च तोड़ दूंगा १०) यों निकल आवेंगे, १०) और इधर-उधरसे खींच खाँचकर निकाल लूंगा।

विट्ठल—तुम्हारे ऊपर अकेले इतना बोझ डालते हुए मुझे कष्ट होता है, पर क्या करूँ, शहरके बड़े आदमियोंसे हारा हुआ हूँ। गाडी बेच दोगे तो कचहरी कैसे जाओगे ? रोज किरायेकी गाड़ी करनी पड़ेगी।

शर्मा—जी नहीं, किरायेकी गाड़ीकी जरूरत न पड़ेगी ! मेरे भतीजेने एक सब्ज घोड़ा ले रखा है, उसी पर बैठकर चला जाया करूँगा।

विट्ठल—अरे, वही तो नहीं है, जो कभी-कभी शामको चौकमें घूमने निकला करता है ?

शर्मा—संभव है वही हो।

विट्ठल—सूरत आपसे बहुत मिलती है, धारीदार सर्जका कोट पहनता है, खूब हृष्ट-पुष्ट है, गोरा रग, बड़ी बड़ी आँखे कसरती जवान है।

शर्मा—जी हां, हुलियातो आप ठीक बताते है। वही है।

विट्ठल—आप उसे बाजारमें घूमनेसे रोकते क्यों नहीं ?

शर्मा—मुझे क्या मालूम कहाँ घूमने जाता है। सभव है कभी-कभी बाजारकी तरफ चला जाता हो, लेकिन लड़का सच्चरित्र है—इसलिये मैने कभी चिन्ता नहीं की।

विट्ठल—यह आपसे बडी भूल हुई। पहले वह चाहे जितना सच्चरित्र हो, लेकिन आजकल उसके रग अच्छे नहीं है ; मैंने उसे एकबार नहीं,

कई वार वहाँ देखा है, जहाँ न देखना चाहिये था। सुमनवाईके प्रेमजालमें पड़ा हुआ मालूम होता है।

शर्माजीके होश उड़ गये। वोले, यह तो आपने वुरी खवर सुनाई। वह मेरे कुलंका दीपक है, अगर वह कुपथपर चला तो मेरी जानही पर वन जायगी। मैं शरमके मारे भाईसाहव को मुंह न दिखा सकूँगा।

यह कहते-कहते शर्माजीकी आँखे सजल हो गई। फिर वोले, महाशय, उसे किसी तरह समझाइये। भाईसाहवके कानोमे इस वात की भनक भी गई तो वह मेरा मुंह न देखेगे।

विट्ठल—नही, उसे सीधे मार्गपर लाने के लिये उद्योग किया जायगा। मुझे आजतक मालूम ही न था कि वह आपका भतीजा है। मैं आजही इस कामपर उतारू हो जाऊँगा और सुमन कलतक वहाँसे चली आई तो वह आपही संभल जायगा।

शर्मा—सुमनके चले आनेसे वाजार थोड़ेही खाली हो जायगा। किसी दूसरीके पजे फँस जायगा। क्या करूँ, उसे घर भेज दूं?

विट्ठल—वहाँ अब वह रह चुका, पहले तो जायगा ही नहीं, और गया भी तो दूसरे ही दिन भागेगा। यौवनकालकी दुर्वासिनाएँ वड़ी प्रवल होती है। कुछ नही, यह सब इसी कुप्रथाकी करामात है, जिसने नगरके सार्वजनिक स्थानोको अपना कार्यक्षेत्र वना रखा है। यह कितना वड़ा अत्याचार है कि ऐसे मनोविकार पैदा करने वाले दृश्योंको गुप्त रखनेके वदले हम उनकी दूकान सजाते है और अपने भोलेभाले सरल वालकोंकी कुप्रवृत्तियोको जगाते है। मालूम नही वह कुप्रथा कैसे चली। मैं तो समझता हूँ कि विषयी मुसलमान वादशाहों के समयमे इसका जन्म हुआ होगा। जहाँ ग्रन्थालय, धर्म सभाएँ और सुधारक सस्थाओके स्थान होने चाहिए, वहाँ हम रूपका वाजार सजाते है। यह कुवासनाओको नेवता देना नही तो और क्या है? हम जान-वूझकर युवकोको गढेमें ढकेलते है। शोक!

शर्मा—आपने इस विषमे कुछ आन्दोलन तो किया था।

विट्ठल—हाँ, किया तो था लेकिन जिस प्रकार आप एक वार मौखिक

सहानुभूति प्रकट करके मौन साध गये, उसी प्रकार अन्य सहायकोने भी आना कानी की, तो भाई अकेला चना तो भाड़ नही फोड़ सकता ? मेरे पास न धन है न ऐश्वर्य है, न उच्च उपाधियाँ है, मेरी कौन सुनता है ? लोग समझते हैं, वक्की है ! नगरमें इतने सुयोग्य विद्वान् पुरुष चैनसे सुख भोग कर रहे हैं,कोई भूलकर भी मेरी नही सुनता ।

शर्माजी शिथिल प्रकृतिके मनुष्य थे । उन्हें कर्तव्य क्षेत्रमें लाने के लिये किसी प्रबल उत्तेजना की आवश्यकता थी । मित्रोकी वाह-वाह जो प्रायः मनुष्यकी सुप्तावस्थाको भग किया करती है उनके लिये काफी न थी । वह सोते नही थे, जागते थे । केवल आलस्यके कारण पड़े हुए थे । इसलिये उन्हें जगानेके लिये चिल्लाकर पुकारनेकी इतनी जरूरत नही थी जितनी किसी विशेष बातकी । यह कितनी अनोखी लेकिन यथार्थ बात है कि सोये हुए मनुष्यको जगानेकी अपेक्षा जागते हुए मनुष्यको जगाना कठिन है । सोता हुआ आदमी अपना नाम सुनते ही चौंककर उठ बैठता है, जागता हुआ मनुष्य सोचता है कि यह किसकी अवाज है ! उसे मुझसे क्या काम है ? इससे मेरा काम न निकल सकेगा ? जब इन प्रश्नोका सतोपजनक उत्तर उसे मिलता है, तो वह उठता है, नही तो पड़ा रहता है पद्मसिंह इन्हीं जागते हुए आलसियोमें से थे । कई बार जातीय पुकारकी ध्वनि उनके कानों में आई थी किन्तु वे सुनकर भी न उठे थे । इस समय जो पुकार उनके कानोमें पहुँच रही थी; उसने उन्हें बलात् उठा दिया । अपने भतीजे को जिसे वह पुत्रसे भी बढ़कर प्यार करते थे, कुमार्गसे बचाने के लिये, अपने भाईकी अप्रसन्नताका निवारण करनेके लिये वे सब कुछ कर सकते थे । जिस कु-व्यवस्थाका ऐसा भयकर परिणाम हुआ उसके मूलोच्छेदन पर कटिबद्ध होनेके लिये अन्य प्रमाणोकी जरूरत न थी । बाल विधवा-विवाह के घोर शत्रुओको भी जब तब उसका समर्थन करते देखा गया है । प्रत्यक्ष उदा-हरणसे प्रबल और कोई प्रमाण नहीं होता । शर्माजी बोले यदि मैं आपके किसी काम आ सकूँ तो आपकी सहायता करनेको तैयार हूँ ।

विट्ठलदास उल्लसित होकर बोले, भाई साहब, अगर तुम मेरा हाथ

बटाओ तो मैं धरती और आकाश एक कर दूँगा लेकिन क्षमा करना, तुम्हारे संकल्प दृढ़ नही होते । अभी यों कहते हो, कल ही उदासीन हो जाओगे । ऐसे कामोंमें धैर्यकी बड़ी जरूरत है ।

शर्माजो लज्जित होकर बोले, ईश्वर चाहेगा तो अबकी आपको इसकी शिकायत न रहेगी ।

विट्ठल—तब तो हमारा सफल होना निश्चित् है ।

शर्मा—यह तो ईश्वरके हाथ है । मुझे न तो बोलना आता है, न लिखना आता है, बस आप जिस राह पर लगा देंगे, उसीपर आँख बन्द किये चला जाऊँगा ।

विट्ठल—अजी सब आ जायेगा, केवल उत्साह चाहिये । दृढ सकल्प हवामें किले बना देता है,आपकी वक्तृताओंमें तो वह प्रभाव होगा कि लोग सुनकर दंग हो जायेंगे । हाँ, इतना स्मरण रखियेगा कि हिम्मत नहीं हारनी चाहिये ।

शर्मा—आप मुझे सँभाले रहियेगा ।

विट्ठल—अच्छा, तो अब मेरे उद्देश्य भी सुन लीजिये । मेरा पहला उद्देश्य है, वेश्याओंको सार्वजनिक स्थानोंसे हटाना और दूसरा, वेश्याओके नाचने गानेकी रस्मको मिटाना । आप मुझसे सहमत हैं या नही ?

शर्मा—क्या अब भी कोई संदेह है ?

विट्ठल—नाचके विषयमे आपके वह विचार तो नही है ?

शर्मा—अब क्या एक घर जलाकर भी वही खेल खेलता रहूँगा ? उन दिनों मुझे न जाने क्या हो गया था, मुझे अब यह निश्चय होगया है कि मेरे उसी जलसेने सुमनबाई को घर से निकाला ! लेकिन यहाँ मुझे एक शंका होती है । आखिर हमलोगोने भी तो शहरो ही मे इतना जीवन व्यतीत किया है, हम लोग इन दुर्वासनाओंमे क्यों नहीं पड़े ? नाच भी शहरमें आये दिन हुआ ही करते हैं, लेकिन उनका ऐसा भीषण परिणाम होते बहुत कम देखा गया है । इससे यही सिद्ध होता है कि इस विषयमें मनुष्यका स्वभाव ही प्रधान है । आप इस आन्दोलनसे स्वभाव तो नही बदल सकते ।

विट्ठल—हमारा यह उद्देश्य ही नहीं, हम तो केवल उन दशाओंका संशोधन करना चाहते है जो दुर्बल स्वभावके अनुकूल है, और कुछ नही चाहते। कुछ मनुष्य जन्महीसे स्थूल होते है, उनके लिये खाने पीनेकी किसी विशेष वस्तुकी जरूरत नही, कुछ मनुष्य ऐसे होते हैं जो घी-दूध आदि का इच्छापूर्वक सेवन करनेसे स्थूल हो जाते है और कुछ लोग ऐसे होते है जो सर्वत्र दुबले रहते है, वह चाहे घी दूध के मटकेही मे रख दिये जाँय तो भी मोटे नही हो सकते। हमारा प्रयोजन केवल दूसरी श्रेणीके मनुष्योंसे है। हम और आप जैसे मनुष्य क्या दुर्व्यसनमे पडेंगे, जिन्हें पेट के धन्धोसे कभी छुट्टी ही नही मिली, जिन्हें कभी यह विश्वास ही नही हुआ कि प्रेमकी मडीमें उनकी आवभगत होगी। वहाँ तो वह फँसते है जो धनी है, रूपवान् है, उदार है, रसिक है। स्त्रियोंको अगर ईश्वर सुन्दरता दे तो धनसे वंचित न रक्खे, धनहीन सुन्दर चतुर स्त्रीपर दुर्व्यसन का मन्त्र शीघ्र ही चल जाता है।

सुमन पार्कसे लौटी तो उसे खेद होने लगा कि मैने शर्माजी को वे जी दुखानेवाली बातें क्यों कही ? उन्होंने इतनी उदारतासे मेरी सहायता की, जिसका मैने यह बदला किया ? वास्तवमें मैंने अपनी दुर्बलताका अपराध उनके सिर मढा। संसारमें घर-घर नाच गाना हुआ ही करता है, छोटे बडे दीन दुःखी सब देखते है कि और आनन्द उठाते है। यदि मैं अपनी कुचेष्टाओंके कारण आगमे कूद पडी तो उसमें शर्माजी का या किसी औरका क्या दोष ? बाबू विट्ठलदास शहरके आदमियोंके पास दौड़े, क्या वह उन सेठोंके पास न गये होगे जो यहाँ आते है ? लेकिन किसीने उनकी मदद न की, क्यों ? इसलिये न की कि वह नही चाहते है कि मैं यहाँसे मुक्त हो जाऊँ ? मेरे चले जानेसे उनकी कामतृष्णामें विघ्न पडेगा, वह दयाहीन व्याघ्रके समान मेरे हृदयको घायल करके मेरे तड़पनेका आनन्द उठाना चाहते है। केवल एक ही पुरुष है, जिसने मुझे इस अन्धकारसे निकालनेके लिये हाथ बढाया, उसीका मैने इतना अपमान किया।

मुझे मनमें कितना कृतघ्न समझेंगे। वे मुझे देखते ही कैसे भागे।

चाहिये तो यह था कि मैं लज्जासे वहीं गड़ जाती, लेकिन मैंने इस पापभयके लिये इतनी निर्लज्जतासे उनका तिरस्कार किया ! जो लोग अपने कलुषित भावोंसे मेरे जीवनको नष्ट कर रहे हैं, उनकामैं कितना आदर करती हूँ। लेकिन जब व्याधा पक्षीको अपने जाल मे फँसते नही देखता तो उसे उसपर कितना क्रोध आता है ! बालक जब कोई अशुद्ध वस्तु छू लेता है तो वह अन्य बालकोंको दौड दौड़कर छूना चाहता है, जिसमें वह भी अपवित्र हो जायँ। क्या मैं भी हृदयशून्य व्याधा हूँ या अबोध बालक ? -

किसी ग्रन्थकारसे पूछिये कि वह एक निष्पक्ष समालोचकके कटुवाक्योंके सामने विचारहीन प्रशंसाका क्या मूल्य समझता है। सुमनको शर्माजीकी यह घृणा अन्य प्रेमियोंकी रसिकतासे अधिक प्रिय मालूम होती थी।

रात भर वह इन्ही विचारोंमें डूबी रही। मनमें निश्चय कर लिया कि प्रातःकाल विट्ठलदासके पास चलूँगी और उनसे कहूंगी कि मझे आश्रय दीजिये। मैं आपसे कोई सहायता नही चाहती, केवल एक सुरक्षित स्थान चाहती हूँ, चक्की, पीसूँगी, कपड़े सीऊँगी, और किसी तरह अपना निर्वाह कर लूँगी।

सवेरा हुआ। वह उठी और विट्ठलदासके घर चलनेकी तैयारी करने लगी कि इतनेमें वह स्वयं आ पहुँचे। सुमनको ऐसा आनन्द हुआ जैसे किसी भक्त को आराध्यदेवके दर्शन से होता है। बोली, आइये महाशय ! तो कल दिन भर आपकी राह देखती रही, इस समय आपके यहाँ जाने का विचार कर रही थी।

विट्ठलदास—कल कई कारणोसे नही आ सका।

सुमन—तो आपने मेरे रहनेका कोई प्रवन्ध किया ?

विट्ठल—मझसे तो कुछ नहीं हो सका लेकिन पद्मसिंहने लाज रख ली। उन्होने तुम्हारा प्रण पूरा कर दिया। वह अभी मेरे पास आये थे ओर वचन दे गये है कि तुम्हे ५०) मासिक आजन्म देते रहेंगे।

सुमनके विस्मयपूर्ण नेत्र सजल हो गये। शर्माजीकी इस महती उदारता ने उसके अन्तःकरणको भक्ति, श्रद्धा और विमल प्रेमसे प्लावित कर

दिया। उसे अपने कटु वाक्योंपर अत्यंत क्षोभ हुआ। बोली, शर्माजी दया और धर्मके सागर हैं। इस जीवनमें उनसे उऋण नहीं हो सकती। ईश्वर उन्हें सदैव सुखी रक्खें। लेकिन मैंने उस समय जो कुछ कहा था, वह केवल परीक्षाके लिये था। मैं देखना चाहती थी कि सचमुच मुझे उबारना चाहते हैं या केवल धर्मका शिष्टाचार कर रहे हैं। अब मुझे विदित हो गया कि आप दोनों सज्जन देवरूप हैं। आप लोगोंको वृथा कष्ट नहीं देना चाहती मैं सहानुभूतिकी भूखी थी वह मुझे मिल गई। अब मैं अपने जीवनका भार आप लोगोंपर नहीं डालूँगी। आप केवल मेरे रहनेका कोई प्रबन्ध कर दें जहाँ मैं विघ्न बाधासे बची रह सकूँगी।

विट्ठलदास चकित हो गये। जातीय गौरवसे आँखें चमक उठीं। उन्होंने सोचा, हमारे देशकी पतित स्त्रियोंके विचार भी ऐसे उच्च होते हैं। बोले, सुमन तुम्हारे मुँहसे ऐसे पवित्र शब्द सुनकर मुझे इस समय जो आनन्द हो रहा है, उसका वर्णन नहीं कर सकता। लेकिन रुपयों के बिना तुम्हारा निर्वाह कैसे होगा?

सुमन—मैं परिश्रम करूँगी। देशमें लाखों दुखियाएँ हैं, उनका ईश्वरके सिवा और कौन सहायक है? अपनी निर्लज्जताका कर आपसे न लूँगी।

विट्ठल—वे कष्ट तुमसे सहे जायँगे?

सुमन—पहले नहीं सहे जाते थे, लेकिन अब सब कुछ सह लूँगी। यहाँ आकर मुझे मालूम हो गया कि निर्लज्जता सब कष्टसे दुःसह है। और कष्टोंसे शरीरको दुःख होता है, इस कष्टसे आत्माका संहार हो जाता है। मैं ईश्वरको धन्यवाद देती हूँ कि उसने आप लोगोंको मेरी रक्षाके लिये भेज दिया।

विट्ठल—सुमन, तुम वास्तवमें विदुषी हो।

सुमन—तो मैं यहाँसे कब चलूँ?

विट्ठल—आज ही। अभी मैंने आश्रमकी कमेटीमें तुम्हारे रहने का प्रस्ताव नहीं किया है, लेकिन कोई हरज नहीं है, तुम वहाँ चलो, ठहरो। अगर कमेटीने कुछ आपत्तिकी तो देखा जायगा। हाँ, इतना याद रखना कि

अपने विषयमें किसीसे कुछ मत कहना, नहीं तो विधवाओंमें हलचल मच जायगी।

सुमन—आप जैसा उचित समझे करें मै तैयार हूँ।

विट्ठल—सन्ध्या समय चलना होगा।

विट्ठलदासके जानेके थोडी ही देर वाद दो वेश्याएँ सुमनसे मिलने आयीं। सुमनने कह दिया, मेरे सिर मे दर्द है। सुमन अपने ही हाथसे भोजन बनाती थी। पतित होकर भी वह खाना पान मे विचार करती थी। आज उसने व्रत करने का निश्चय किया था। मुक्तिके दिन कैदियोंको भी भोजन अच्छा नही लगता।

दोपहरको धाडियोका गोल आ पहुँचा। सुमनने उन्हे भी वहाना करके टाला। उसे अव उनकी सूरतसे घृणा होती थी। सेठ वलभद्रदास के यहाँसे नागपुरी संतरे की एक टोकरी आयी, उसे सुमनने तुरन्त लौटा दया। चिम्मनलालने चार वजे अपनी फिटिन सुमनके सैर करनेको भेजा उसने उसको भी लौटा दिया।

जिस प्रकार अन्धकारके वाद अरुणका उदय होते ही पक्षी कलरव करने लगते है और वछड़े किलोलोंमें मग्न हो जाते है, उसी प्रकार सुमनके मनमे भी क्रीड़ा करनेकी प्रवल इच्छा हुई। उसने सिगरेटकी एक डिविया मँगवाई और वारनिश की एक वोतल मँगाकर ताकपर रख दिया और एक कुर्सीका एक पाया तोड़कर कुर्सी छज्जेपर दीवारके सहारे रख दी। पाँच वजते वजते मुंशी अवुलवफा का आगमन हुआ। यह हजरत सिगरेट वहुत पीते थे। सुमनने आज असाधारण रीतिसे उनकी आवभगत की और इधर-उधर की वातें करनेके वाद वोली, आइये आज आपको वह सिगरेट पिलाऊँ कि आप भी याद करें।

अवुलवफा—नेकी और पूछ पूछ!

सुमन—देखिये, एक अंग्रेजी दूकानसे खास आपकी खातिर मँगवाया है। यह लीजिये।

अवुलवफा—तब तो मैं भी अपना शुमार खुश-नसीबोमें करूँगा। वाहरे मैं, वाहरे मेरे साजे जिगर की तासीर !

अवुलवफाने सिगरेट मुँहमें दवाया। सुमनने दियासलाईकी डिविया निकालकर एक सलाई रगडी। अवुलवफाने सिगरेटको जलाने के लिए मुँह आगे वढ़ाया, लेकिन न मालूम कैसे आग सिगरेटमे न लगकर उनकी दाढ़ीमें लग गई। जैसे पुआल जलता है, उसी तरह एक क्षणमे दाढ़ी आधीसे ज्यादा जल गई। उन्होने सिगरेट फेंककर दोनो हाथोंसे दाढी मलना शुरू किया। आग वुझ गई मगर दाढ़ीका सर्वनाश हो चुका था। आइनेमे लपक कर मुँह देखा दाढ़ीका भस्मावशेष उवाली हुई सुथनीके रेशकी तरह मालूम-हुआ। सुमनने लज्जित होकर कहा, मेरे हाथोंमें आग लगे। कहाँसे कहाँ मैंने दियासलाई जलाई।

उसने वहुत रोका, पर हँसी ओंठपर आ गई। अवुलवफा ऐसे खिसि-याये हुए थे मानो अव वह अनाथ हो गये। सुमनकी हँसी अखर गई। उस भोंडी सूरतपर खेद और खिसियाहटका अपूर्व दृश्य था। वोले, यह कवकी कसर निकाली ?

सुमन—मुन्शीजी, मैं सच कहती हूँ, यह दोनो आँखें फूट जाँय अगर मैंने जानवूझकर आग लगाई हो। आपसे वैर भी होता तो दाढी वेचारीने मेरा क्या विगाडा था ?

अवुल—माशूकोकी शेखी और शरारत अच्छी मालूम होती है, लेकिन इतनी नहीं कि मुँह जला दे। अगर तुमने आगसे कही दाग दिया होता तो इससे अच्छा था। अव यह भुन्नासकी सी सूरत लेकर मैं किसे मुँह दिखा-ऊँगा। वल्लाह ! आज तुमने मटियामेट कर दिया।

सुमन—क्या करूँ ? खुद पछता रही हूँ। अगर मेरे दाढी होती तो आपको दे देती। क्यों, नकली दाढियाँ भी तो मिलती है ?

अवुल—सुमन, जख्म पर निमक न छिडको। अगर दूसरे ने यह हरकत की होती तो आज उसका खून पी जाता।

सुमन—अरे, तो थोड़ेमे वाल ही जल गये या और कुछ महीने दो

महीनेमें फिर निकल आवेंगे। जरासी बात के लिये आप इतनी हाय-हाय मचा रहे हैं।

अबुल—सुमन जलाओ मत, नही तो मेरी जबानसे भी कुछ निकल जायगा। मैं इस वक्त आपेमे नही हूँ।

सुमन—नारायण, नारायण, जरासी दाढ़ीपर इतना जामेके वाहर हो गये। मान लीजिये मैंने जानकर ही दाढ़ी जलीदी तो? आप मेरी आत्माको, मेरे धर्मको, हृदयको रोज जलाते हैं, क्या उनका मूल्य आपकी दाढ़ीसे भी कम है? मियाँ, आशिक बनना मुँहका नेवाला नही है। जाइये अपने घरकी राह लीजिये, अब कभी यहाँ न आइयेगा मुझे ऐसे छिछोरे आदमियोंकी जरूरत नही है।

अबुलवाफाने क्रोधसे सुमनकी ओर देखा, तब जेवसे रुमाल निकाला और जली हुई दाढ़ीको उसकी आढ़ मे छिपाकर चुपकेसे चले गये। यह वही मनुष्य है, जिसे खुले बाजार एक वेश्याके साथ आमोद प्रमोद में लज्जा नहीं आती थी।

अब सदनके आने का समय हुआ। सुमन आज मिलनेके लिये वहुत उत्कंठित थी। आज वह अन्तिम मिलाप होगा। आज यह प्रेमाभिनय समाप्त हो जायगा। वह मोहिनी मूर्ति फिर देखनेको न मिलेगी। उसके दर्शनोको नेत्र तरस-तरस रहेंगे। वह सरल प्रेमसे भरी हुई मधुर बातें सुनने में न आवेगी। जीवन फिर प्रेम विहीन और नीरस हो जायगा। कुलुषित ही पर यह सच्चा था। भगवान्! मुझे यह वियोग सहनेकी शक्ति दीजिये। नहीं, इस समय सदन न आवे तो अच्छा है, उससे न मिलनेमें ही कल्याण है; कौन जाने उसके सामने मेरा संकल्प स्थिर रह सकेगा या नही, पर वह आ जाता तो एक वार दिल खोलकर उससे वाते कर लेती उसे इस कपट सागरमे डूबनेसे वचानेकी चेष्टा करती।

इतनेमें सुमनने विट्ठलदासको एक किरायेकी गाड़ीमे से उतरते देखा। उसका हृदय वेगसे धड़कने लगा।

एक क्षणमें विट्ठलदास ऊपर आ गये बोले, अरे अभी तुमने कुछ तैयारी नही की—

सुमन—मै तैयार हूँ।

विट्ठल—अभी विस्तरे तक नही बँधे।

सुमन—यहाँकी कोई वस्तु साथ न ले जाऊँगी, यह वास्तवमे मेरा पुनर्जन्म हो रहा है।

विट्ठल—यह सामान क्या होगे ?

सुमन—आप इसे बेचकर किसी शुभ कार्यमें लगा दीजियेगा।

विट्ठल—अच्छी बात है, मैं यहाँ ताला डाल दूंगा। तो अब उठो, गाडी मौजूद है।

सुमन—दस बजेसे पहले नही चल सकती। आज मुझे अपने प्रेमियोसे विदा होना है। कुछ उनकी सुननी है कुछ अपनी कहनी है। आप तबतक छतपर जाकर बैठिये, मुझे तैयार ही समझिये।

विट्ठलदासको बुरा मालूम हुआ पर धैर्यसे काम लिया। ऊपर जाके खुली हुई छत पर टहलने लगे।

सात बज गये लेकिन सदन न आया। आठ बजे तक सुमन उसकी राह देखती रही, अन्तको वह निराश हो गई। जबसे वह यहाँ आने लगा, आजही उसने नागा किया। सुमनको ऐसा मालूम होता था मानो वह किसी निर्जन स्थानमें खो गई है। हृदयमें एक अत्यत तीव्र किन्तु सरल, वेदनापूर्ण, किन्तु मनोहारी आकाक्षा का उद्वेग हो रहा था। मन पूछता था, उसके न आनेका क्या कारण है ? किसी अनिष्टकी आशकाने उसे बेचैन कर दिया।

आठ बजे सेठ चिम्मनलाल आये। सुमन उनकी गाडी देखते ही छज्जेपर जा बैठी। सेठजी बहुत कठिनाईसे ऊपर आए और हाँफते हुए बोले, कहाँ हो देवी, आज बग्घी क्यो लौटा दी? क्या मुझसे कोई खता हुई।

सुमन—यहीं छज्जेपर चले आइये, भीतर कुछ गरमी मालूम होती है। आज सिरमें दर्द था, सैर करनेको जी नही चाहता था।

चिम्मनलाल—हिरियाको मेरे यहाँ क्यों नही भेज दिया, हकीम साहब से कोई नुस्खा तैयार करा देता। उनके पास तेलोके अच्छे अच्छे नुस्खे है।

यह कहते हुए सेठजी कुरसीपर बैठे, लेकिन तीन टाँगकी कुरसी उलट गई, सेठजीका सिर नीचे हुआ और पैर ऊपर, और वह एक कपड़ेकी गाँठके समान औधे मुँह लेट गये। केवल एकबार मुँहसे 'अरे' निकला और फिर वह कुछ न बोले। जडने चैतन्य को परास्त कर दिया।

सुमन डरी कि चोट ज्यादा आ गई, लालटेन लाकर देखा तो हँसी न रुक सकी सेठजी ऐसे असाध्य पडे थे, मानों पहाड पर से गिर पडे है। पडे-पडे बोले—हाय राम कमर टूट गयी। जरा मेरे साईस को बुलवा दो, घर जाऊँगा।

सुमन—चोट बहुत आ गई क्या ? आपने भी तो कुरसी खीच ली, दीवारसे टिककर बैठते तो कभी न गिरते। अच्छा, क्षमा कीजिये, मुझीसे भूल हुई कि आपको सचेत न कर दिया। लेकिन आप जरा भी न सँभले, बस गिर ही पड़े।

चिम्मन—मेरीतो कमर टूट गई और तुम्हें मसखरी सूझ रही है।

सुमन—तो अब इसमे मेरा क्या वश है ? अगर आप हलके होते तो उठाकर बैठा देती। जरा खुद ही जोर लगाइये, अभी उठ बैठियेगा।

चिम्मन—अब मेरा घर पहुँचना मुश्किल है। हाय ! किस बुरी साइतसे चले थे, जीनेपरसे उतरनेमे पूरी साँसत हो जायगी। बाईजी, तुमने यह कबका बैर निकाला ?

सुमन—सेठजी, मै बहुत लज्जित हूँ।

चिम्मन—अजी रहने भी दो, झूठ मूठ बाते बनाती हो। तुमने मुझे जानकर गिराया।

सुमन—क्या आपसे मुझे कोई वैर था ? और आपसे वैर हो भी तो आपकी बेचारी कमरने मेरा क्या बिगाड़ा था ?

चिम्मन—अब यहाँ आनेवालेपर लानत है।

सुमन—सेठजी, आप इतनी जल्दी नाराज हो गये। मान लीजिये मैंने जानबूझकर ही आपको गिरा दिया, तो क्या हुआ ?

इतनेमें विट्ठलदास ऊपरसे उतर आये। उन्हें देखते ही सेठजी चौंक पड़े। घड़ों पानी पड़ गया।

विट्ठलदासने हँसीको रोककर पूछा, कहिये सेठजी, आप यहाँ कैसे आ फँसे ? मुझे आपको यहाँ देखकर बड़ा आश्चर्य होता है।

चिम्मन—इस घड़ी कुछ न पूछिये। फिर यहाँ आऊँ तो मुझपर लानत है। मुझे किसी तरह यहाँ से नीचे पहुँचाइये।

विट्ठलदासने एक हाथ थामा, साईस ने आकर कमर पकड़ी। इस तरह लोगोंने उन्हें किसी तरह जीनेसे उतारा और लाकर गाड़ीमें लिटा दिया।

ऊपर आकर विट्ठलदासने कहा, गाड़ीवाला अभी तक खड़ा है, दस बज गये। अब विलंब न करो।

सुमनने कहा अभी एक काम और करना है। पंडित दीनानाथ आते होंगे। बस उनसे निपट लूँ तो चलूँ। आप थोड़ासा और कष्ट कीजिये।

विट्ठलदास ऊपर जाकर बैठे ही थे कि पण्डित दीनानाथ आ पहुँचे। बनारसी साफा सिर पर था, बदनपर रेशमी अचकन शोभायमान थी। काले किनारे की महीन धोती और काली वार्निश के पम्प जूते उनके शरीर पर खूब फबते थे।

सुमनने कहा, आइये महाराज ! चरण छूती हूँ।

दीनानाथ—आशीर्वाद, जवानी बढ़े, आँगके अंधे गाँठके पूरे फँसे, सदा बढ़ती रहे।

सुमन—कल आप कैसे नहीं आये, समाजियों को लिये रातभर आपकी राह देखती रही।

दीनानाथ—कुछ न पूछो, कल एक रमझल्लेमें फँस गया। डाक्टर श्यामाचरण और प्रभाकर राव स्वराज्यकी सभामें घसीट ले गये। वहाँ बकबक झकझक होती रही। मुझसे सबने व्याख्यान देनेको कहा।

मैंने कहा, मुझे कोई उल्लू समझा है क्या ? पीछा छोडाकर भागा, इसीमें देरी हो गई ।

सुमन—कई दिन हुए मैंने आपसे कहा था कि किवाडोंमे वार्निश लगवा दीजिये । आपने कहा, वार्निश कही मिलती ही नहीं । यह देखिये, आजमैंने एक बोतल वार्निश मँगा रखी है । कल जरूर लगवा दीजिये ।

पडित दीनानाथ मसनद लगाये बैठे थे । उनके सिर ही पर वह ताक था, जिसपर वार्निश रक्खी हुई थी, । सुमनने बोतल उठाई, लेकिन मालूम नही कैसे बोतलकी पेंदी अलग हो गई और पडितजी वार्निशसे नहा उठे । ऐसा मालूम होता था, मानो शीरेकी नादमें फिसल पडे हो । वह चौककर उठ खड़े हुए और साफा उतारकर रूमालसे पोंछने लगे ।

सुमनने कहा—मालूम नही बोतल टूटी थी क्या सारी वार्निश खराब हो गई ।

दीनानाथ—तुम्हे अपनी वार्निशकी पड़ी है, यहाँ सारे कपड़े तर हो गये । अब घरतक पहुँचना मुश्किल है ।

सुमन—रातको कौन देखता है, चुपकेसे निकल जाइयेगा ।

दीना—अजी, रहने भी दो, सारे कपड़े सत्यानाश कर दिये, अब उपाय बता रही हो । अब यह धुल भी नही सकते ।

सुमन—तो क्या मैंने जान बूझकर गिरा दिया ?

दीना—तुम्हारे मनका हाल कौन जाने ?

सुमन—अच्छा जाइये, जानकर ही गिरा दिया ।

दीना—अरे तो मै कुछ कहता हूँ, जी चाहे और गिरा दो ।

सुमन—बहुत होगा अपने कपड़ोंकी कीमत ले लीजियेगा ।

दीना—क्यो खफा होती हो सरकार ? मै तो कह रहा हूँ, गिरा दिया अच्छा किया ।

सुमन—इस तरह कह रहे है, मानो मेरे साथ बडी रियायत कर रहे हैं ।

दीना—सुमन, क्यो लज्जित करती हो ?

सुमन—जरासे कपड़े खराब हो गये उसपर ऐसे जामेसे बाहर हो गए, यही आपकी मुहब्बत है जिसकी कथा सुनते-सुनते मेरे कान पक गये। आज उसकी कलई खुल गई। जादू सिरपर चढके बोला। आपने अच्छे समय पर मुझे सचेत कर दिया। अब कृपा करके घर जाइये यहाँ फिर न आइयेगा। मुझे आप जैसे मियाँ मिट्ठुओंकी जरूरत नही।

विट्ठलदास ऊपर बैठे हुए यह कौतुक देख रहे थे। समझ गये कि अब अभिनय समाप्त हो गया। नीचे उतर आये। दीनानाथने एक बार चौंक कर उन्हें देखा और छडी उठाकर शीघ्रतापूर्वक नीचे चले गए।

थोडी देर बाद सुमन ऊपरसे उतरी। वह केवल एक उजली साड़ी पहने थी, हाथमे चूडियाँ तक न थी। उसका मुख उदास था, लेकिन इसलिए नही कि यह भोग-विलास अब उससे छूट रहा है, वरन् इसलिए कि वह इस अग्निकुण्डमे गिरी क्यो थी। इस उदासीनतामें मलिनता न थी, वरन् एक प्रकारका सयम था, यह किसी मदिरा सेवीके मुखपर छानेवाली उदासी नही थी, वल्कि उसमें त्याग और विचार आभासित हो रहा था।

विट्ठलदासने मकानमें ताला डाल दिया और गाडीके कोच बक्सपर जा बैठे। गाड़ी चली।

बाजारोकी दूकाने बन्द थी, लेकिन रास्ता चल रहा था। सुमनने खिडकीसे झांककर देखा। उसे आगे लालटेनोंकी एक सुन्दर माला दिखाई दी, लेकिन ज्यो ज्यो गाडी बढती थी, त्यो-त्यो वह प्रकाशमाला भी आगे बढती जाती थी। थोड़ी दूर पर लालटेनें मिलती थी पर वह ज्योतिर्माला अभिलाषाओंके सदृश दूर भागती जाती थी।

गाडी वेगसे जा रही थी। सुमनका भावी जीवनयान भी विचार सागरमें वेगके साथ हिलता, डगमगाता, तारो के ज्योतिर्मालमें उलझता चला जाता था।

२३

मदन प्रातःकाल घर गया तो अपनी चाचीके हाथमें कंगन देखा।

लज्जासे उसकी आँखे जमीनमें गड़ गई। नाश्ता करके जल्दीसे बाहर निकल आया और सोचने लगा, यह कगन इन्हे कैसे मिल गया।

क्या यह सम्भव है कि सुमनने उसे यहाँ भेज दिया हो ? वह क्या जानती है कि कंगन किसका है ? मैंने तो उसे अपना पता भी नही बताया। यह हो सकता है कि यह उसी नमूनेका दूसरा कगन हो, लेकिन इतनी जल्द वह तैयार नही हो सकता। सुमनने अवश्य ही मेरा पता लगा लिया है और चाचीके पास यह कगन भेज दिया है।

सदनने बहुत विचार किया। किन्तु हर प्रकारसे वह इसी परिणाम पर पहुँचता था। उसने फिर सोचा, अच्छा मान लिया जाय कि उसे मेरा पता मालूम हो गया तो क्या उसे यह उचित था कि वह मेरी दी हुई चीजको यहाँ भेज देती ? यह तो एक प्रकारका विश्वासघात है।

अगर सुमनने मेरा पता लगा लिया है तब तो वह मुझे मनमे धूर्त्त, पाखडी, जालिया समझती होगी ! कंगनको चाचीके पास भेजकर उसने यह भी साबित कर दिया कि वह मुझे चोर भी समझती है।

आज सन्ध्या समय सदनको सुमनके पास जानेका साहस न हुआ। चोर दगाबाज बनकर उसके पास कैसे जाय ? उसका चित्त खिन्न था। घरपर बैठना बुरा मालूम होता था। उसने यह सब सहा, पर सुमनके पास न जा सका।

इसी भाँति एक सप्ताह बीत गया। सुमन से मिलनेकी उत्कठा नित्य प्रबल होती जाती थी और शंकाए इस उत्कठाके नीचे दबती जाती थी। सन्ध्या समय उसकी दशा उन्मत्तोंकीसी हो जाती। जैसे बीमारीके बाद मनुष्यका चित्त उदास रहता है, किसीसे बाते करनेको जी नही चाहता, उठना बैठना पहाड़ हो जाता है, जहाँ बैठता है वही का हो जाता है, वही दशा इस समय सदनकी थी।

अन्तको वह अधीर हो गया। आठवे दिन उसने घोडा कसाया और सुमनसे मिलने चला। उसने निश्चय कर लिया था कि आज चलकर उससे अपना सारा कच्चा चिट्ठा बयान कर दूंगा। जिससे प्रेम हो गया,

सुमन—जरासे कपड़े खराव हो गये उसपर ऐसे जामेसे वाहर हो गए, यही आपकी मुहब्बत है जिसकी कथा सुनते-सुनते मेरे कान पक गये। आज उसकी कलई खुल गई। जादू सिरपर चढके वोला। आपने अच्छे समय पर मुझे सचेत कर दिया। अव कृपा करके घर जाइये यहाँ फिर न आइयेगा। मुझे आप जैसे मियाँ मिट्ठुओकी जरूरत नही।

विट्ठलदास ऊपर वैठे हुए यह कौतुक देख रहे थे। समझ गये कि अव अभिनय समाप्त हो गया। नीचे उतर आये। दीनानाथने एक वार चौंक कर उन्हे देखा और छड़ी उठाकर शीघ्रतापूर्वक नीचे चले गए।

थोडी देर वाद सुमन ऊपरसे उतरी। वह केवल एक उजली साड़ी पहने थी, हाथमे चूडियाँ तक न थी। उसका मुख उदास था, लेकिन इसलिए नही कि यह भोग-विलास अव उससे छूट रहा है, वरन् इसलिए कि वह इस अग्निकुण्डमें गिरी क्यो थी। इस उदासीनतामे मलिनता न थी, वरन् एक प्रकारका सयम था, यह किसी मदिरा सेवीके मुखपर छानेवाली उदासी नही थी, वल्कि उसमें त्याग और विचार आभासित हो रहा था।

विट्ठलदासने मकानमें ताला डाल दिया और गाडीके कोच वक्सपर जा वैठे। गाड़ी चली।

वाजारोकी दूकानें वन्द थी, लेकिन रास्ता चल रहा था। सुमनने खिडकीसे झांककर देखा। उसे आगे लालटेनोंकी एक सुन्दर माला दिखाई दी, लेकिन ज्यो ज्यो गाडी वढती थी, त्यो-त्यों वह प्रकाशमाला भी आगे वढती जाती थी। थोडी दूर पर लालटेनें मिलती थी पर वह ज्योतिर्माला अभिलाषाओके सदृश दूर भागती जाती थी।

गाडी वेगसे जा रही थी। सुमनका भावी जीवनयान भी विचार सागरमें वेगके साथ हिलता, डगमगाता, तारों के ज्योतिर्मालमें उलझता चला जाता था।

२३

मदन प्रात.काल घर गया तो अपनी चाचीके हाथमें कगन देखा।

लज्जासे उसकी आँखें जमीनमे गड़ गई । नाश्ता करके जल्दीसे बाहर निकल आया और सोचने लगा, यह कंगन इन्हें कैसे मिल गया।

क्या यह सम्भव है कि सुमनने उसे यहाँ भेज दिया हो ? वह क्या जानती है कि कंगन किसका है ? मैंने तो उसे अपना पता भी नही बताया । यह हो सकता है कि यह उसी नमूनेका दूसरा कंगन हो, लेकिन इतनी जल्द वह तैयार नही हो सकता । सुमनने अवश्य ही मेरा पता लगा लिया है और चाचीके पास यह कंगन भेज दिया है ।

सदनने बहुत विचार किया । किन्तु हर प्रकारसे वह इसी परिणाम पर पहुँचता था । उसने फिर सोचा, अच्छा मान लिया जाय कि उसे मेरा पता मालूम हो गया तो क्या उसे यह उचित था कि वह मेरी दी हुई चीजको यहाँ भेज देती ? यह तो एक प्रकारका विश्वासघात है ।

अगर सुमनने मेरा पता लगा लिया है तब तो वह मुझे मनमें धूर्त्त, पाखंडी, जालिया समझती होगी ! कंगनको चाचीके पास भेजकर उसने यह भी साबित कर दिया कि वह मुझे चोर भी समझती है ।

आज सन्ध्या समय सदनको सुमनके पास जानेका साहस न हुआ । चोर दगाबाज बनकर उसके पास कैसे जाय ? उसका चित्त खिन्न था । घरपर बैठना बुरा मालूम होता था । उसने यह सब सहा, पर सुमनके पास न जा सका ।

इसी भाँति एक सप्ताह बीत गया । सुमन से मिलनेकी उत्कंठा नित्य प्रबल होती जाती थी और शकाएं इस उत्कंठाके नीचे दबती जाती थी । सन्ध्या समय उसकी दशा उन्मत्तोंकीसी हो जाती । जैसे बीमारीके बाद मनुष्यका चित्त उदास रहता है, किसीसे बातें करनेको जी नहीं चाहता, उठना बैठना पहाड़ हो जाता है, जहाँ बैठता है वही का हो जाता है, वही दशा इस समय सदनकी थी ।

अन्तको वह अधीर हो गया । आठवें दिन उसने घोड़ा कसाया और सुमनसे मिलने चला । उसने निश्चय कर लिया था कि आज चलकर उससे अपना सारा कच्चा चिट्ठा बयान कर दूंगा । जिससे प्रेम हो गया,

उससे अब छिपाना कैसा ! हाथ जोडकर कहूँगा, सरकार बुरा हूँ तो, भला हूँ तो अब आपका सेवक हूँ । चाहे जो दण्ड दो, सिर तुम्हारे सामने झुका हुआ है । चोरी की, चाहे दगा किया, सब तुम्हारे प्रेमके निमित्त किया अब क्षमा करो ।

विषयवासना नीति, ज्ञान और सकोच किसीके रोके नही रुकती । नशेमे हम सब बेसुध हो जाते है ।

वह व्याकुल होकर पाँच ही बजे निकल पड़ा और घूमता हुआ नदीके तटतर आ पहुँचा । शीतल, मन्द वायु उसके तपते हुए शरीरको अत्यन्त सुखद मालूम होती थी और जलकी निर्मल श्याम सुवर्ण धारामे रह-रहकर उछलती हुई मछलियाँ ऐसी मालूम होती थी, मानों किसी सुन्दरीके चञ्चल नयन महीन घूघटसे चमकते हों ।

सदन घोडेसे उतरकर करारपर बैठ गया और इस मनोहर दृश्यको देखनेमे मग्न हो गया । अकस्मात् उसने एक जटाधारी साधुको पेडोंकी आडसे अपनी तरफ आते देखा । उसके गलेमें रुद्राक्षकी माला थी और नेत्र लाल थे । ज्ञान और योगकी प्रतिभाकी जगह उसके मुखसे एक प्रकारकी सरलता और दया प्रकट होती थी । उसे अपने निकट देखकर सदनने उठकर उसका सत्कार किया ।

साधुने इस ढगसे उसका हाथ पकड लिया, मानो उससे परिचय है और बोला, सदन मैं कई दिनसे तुमसे मिलना चाहता था । तुम्हारे हितकी एक बात कहना चाहता हूँ । तुम सुमन बाईके पास जाना छोड दो, नही तो तुम्हारा सर्वनाश हो जायगा । तुम नही जानते वह कौन है ? प्रेमके नशेमें तुम्हे उसके दूषण नही दिखाई देते । तुम समझते हो कि वह तुमसे प्रेम करती है । किन्तु यह तुम्हारी भूल है । जिसने अपने पतिको त्याग दिया, वह दूसरोसे क्या प्रेम निभा सकती है ? तुम इस समय वही जा रहे हो । साधुका वचन मानो, घर लौट जाओ, इसीमें तुम्हारा कल्याण है ।

यह कहकर वह महात्मा जिधरसे आये थे उधर ही चल दिये और

इससे पूर्व कि सदन उनसे कुछ जिज्ञासा करनेके लिए सावधान हो सके वह आँखोसे ओझल हो गये ।

सदन सोचने लगा, यह महात्मा कौन है ? यह मुझे कैसे जानते है ? मेरे गुप्त रहस्योंका इन्हें कैसे ज्ञान हुआ ? कुछ उस स्थानकी नीरवता, कुछ अपने चित्तकी स्थिति, कुछ महात्माके आकस्मिक आगमन और उनकी अन्तर्दृष्टिने उनकी बातोंको आकाशवाणीके तुल्य बना दिया । सदनके मनमे किसी भावी अमगलकी आशका उत्पन्न हो गई । उसे सुमनके पास जानेका साहस न हुआ । वह घोड़ेपर बैठा और इस आश्चर्यजनक घटनाकी विवेचना करता घरकी तरफ चल दिया ।

जबसे सुभद्राने सदनपर अपने कंगनके विषयमे सन्देह किया था तबसे पद्मसिह उससे रुष्ट हो गये थे । इसलिए सुभद्राका यहाँ अब जी न लगता था । शर्माजी भी इसी फिक्रमे थे कि सदनको किसी तरह यहाँसे घर भेज दूं । अब सदनका चित्त भी यहाँसे उचाट हो रहा था । वह भी घर जाना चाहता था, लेकिन कोई इस विषयमे मुँह खोल न सकता था, पर दूसरे ही दिन पडित मदनसिंहके एक पत्रने उन सबकी इच्छाएँ पूरी कर दी । उसमें लिखा था, सदनके विवाहकी बातचीत हो रही है । सदनको बहूके साथ तुरन्त भेज दो ।

सुभद्रा यह सूचना पाकर बहुत प्रसन्न हुई । सोचने लगी, महीने दो महीने चहल-पहल रहेगी, गाना बाजाना होगा, चैनसे दिन कटेंगे । इस उल्लासको मनमे छिपा न सकी । शर्माजी उसकी निष्ठुरता देखकर और भी उदास हो गये । मनमे कहा, इसे अपने आनन्दके आगे मेरा कुछ भी ध्यान नही है, एक या दो महीनोमे फिर मिलाप होगा, लेकिन यह कैसी खुश है ?

सदनने भी चलनेकी तैयारी कर दी । शर्माजीने सोचा था कि वह अवश्य हीलाहवाला करेगा, लेकिन ऐसा नही हुआ ।

इस समय ८ बजे थे । २ बजे दिनकी गाड़ी जाती थी । इसलिए शर्माजी कचहरी न गये । कई बार प्रेमसे विवश होकर घरमें गये । लेकिन सुभद्राको

उनसे बातचीत करनेकी फुरसत कहाँ ? वह अपने गहने कपडे और माँग चोटीमे मग्न थी। कुछ गहने खटाईमें पडे थे, कुछ महरी साफ कर रही थी। पानदान माँजा जा रहा था। पडोसकी कई स्त्रियाँ बैठी हुई थी। सुभद्राने आज खुशीमे खाना भी नही खाया। पूडियाँ बनाकर शर्माजी और सदनके लिये बाहर ही भेज दी।

यहाँतक कि एक बज गया। जीतनने गाड़ी लाकर द्वारपर खडी कर दी। सदनने अपने ट्रंक और बिस्तर आदि रख दिए। उस समय सुभद्राको शर्माजीकी याद आई, महरीसे बोली, जरा देख तो कहाँ है, बुला ला। उसने आकर बाहर देखा। कमरेमें झाँका, नीचे जाकर देखा, शर्माजीका पता न था। सुभद्रा ताड गई। बोली, जबतक वह न आवेगे, मैं न जाऊँगी। शर्माजी कही बाहर न गये थे। ऊपर छतपर जाकर बैठे थे। जब एक बज गया और सुभद्रा न निकली तब वह झुझलाकर घरमें गये और सुभद्रासे बोले, अभीतक तुम यही हो ? एक बज गया !

सुभद्राकी आँखोमे आँसू भर आये। चलते-चलते शर्माजीकी यह रुखाई अखर गई। शर्माजी अपनी निष्ठुरता पर पछताये। सुभद्राके आँसू पोछे, गलेसे लगाया और लाकर गाडीमे बैठा दिया।

स्टेशनपर पहुँचे, गाडी छूटनेहीवाली थी, सदन दौड़कर गाडी में जा बैठा, सुभद्रा बैठने भी न पाई थी कि गाडी छूट गई। वह खिडकीपर खडी शर्माजीको ताकती रही और जबतक वह आँखोसे ओझल न हुए वह खिडकीपरसे न हटी।

सन्ध्या समय गाडी ठिकानेपर पहुँची। मदनसिंह पालकी और घोड़ा लिए स्टेशनपर मौजूद थे। सदनने दौडकर पिताके चरण स्पर्श किए।

ज्यो-ज्यों गाँव निकट आता था, सदनकी व्यग्रता बढती जाती थी; जब गाँव आध मील रह गया और धानके खेतकी मेड़ोपर घोडाको दौडना कठिन जान पडा तो वह उतर पडा और वेगके साथ गाँवकी तरफ चला। आज उसे अपना गाँव बहुत सुनसान मालूम होता था। सूर्यास्त हो गया था। किसान बैलोंको हाँकते, खेतोसे चले आते थे। सदन किसीसे कुछ न

बोला, सीधे अपने घरमे चला गया और माताके चरण छुए। माताने छातीसे लगाकर आशीर्वाद दिया।

भामा—वे कहाँ रह गईं ?

सदन—आती है, मैं सीधे खेतोमे से चला आया।

भामा—चाचा चाचीसे जी भर गया न ?

सदन—क्यों ?

भामा—वह तो चेहरा ही कहे देता है।

सदन—वाह, मैं मोटा हो गया हूँ।

भामा—चल झूठे, चाचीने दानो को तरसा दिया होगा।

सदन—चाची ऐसी नही है। यहाँसे मुझे बहुत आराम था वहाँ दूध अच्छा मिलता था।

भामा—तो रुपये क्यों माँगते थे ?

सदन—तुम्हारे प्रेमकी थाह ले रहा था। इतने दिनमें तुमसे २५) ही लिए न ? चाचासे सात सौ ले चुका। चार सौका तो एक घोड़ा ही लिया रेशमी कपड़े बनवाये, शहरमे रईस बना घूमता था। सबेरे चाची ताजा हलवा बना देती थी। उसपर सेर भर दूध, तीसरे पहर मेवे और मिठाइयाँ। मैंने वहाँ जो चैन किया वह कभी न भूलूँगा। मैंने भी सोचा कि अपनी कमाईमे तो चैन कर चुका, इस अवसरपर क्यों चूकूँ, सभी शौक पूरे कर लिए।

भामाको ऐसा अनुमान हुआकि सदनकी बातोंमें कुछ निरालापन आ गया है। उनमें कुछ शहरीपन आ गया है।

सदनने अपने नागरिक जीवनका उस उत्साहसे वर्णन किया जो युवाकालका गुण है।

सरला भामाका हृदय सुभद्राकी ओरसे निर्मल हो गया।

दूसरे दिन प्रातःकाल गाँवके मान्य पुरुष निमन्त्रित हुए और उनके सामने सदनका फलदान चढ गया।

सदनकी प्रेमलालसा इस समय ऐसी प्रबल हो रही थी कि विवाहकी कड़ी धर्मबेड़ीको सामने लखकर भी वह चिन्तित न हुआ। उसे सुमन

से जो प्रेम था, उसमें तृष्णाहीका आधिक्य था। सुमन उसके हृदयमे रहकर भी उसके जीवनका आधार न बन सकती थी। सदनके पास यदि कुबेरका धन होता तो वह सुमनको अर्पण कर देता। वह अपने जीवनके सम्पूर्ण सुख, उसकी भेंट कर सकता था, किन्तु अपने दुःखसे, विपत्तिसे, कठिनाइयोंसे, नैराश्यसे वह उसे दूर रखता था। उसके साथ वह सुखका आनन्द उठा सकता था, लेकिन दुःखका आनन्द नहीं उठा सकता था। सुमनपर उसे वह विश्वास कहाँ था जो प्रेमका प्राण है! अब वह कपटप्रेमके मायाजालसे मुक्त हो जायगा। अब उसे बहुरूप धरनेकी आवश्यकता नहीं। अब वह प्रेमको यथार्थरूपमें देखेगा और यथार्थ रूपमें दिखावेगा। यहाँ उसे वह अमूल्य वस्तु मिलेगी जो सुमनके यहाँ किसी प्रकार नहीं मिल सकती थी। इन विचारोंने सदनको इस नये प्रेमके लिए लालायितकर दिया। अब उसे केवल यही संशय था कि कहीं वधू रूपवती न हुई तो? रूप लावण्य प्राकृतिक गुण है, जिसमे कोई परिवर्तन नहीं होसकता। स्वभाव एक उपार्जित गुण है; उसमें शिक्षा और सत्संग से सुधार हो सकता है। सदनने इस विषयमें ससुरालके नाईसे पूछ ताछ करनेकी ठानी; उसे खूब भंग पिलाई, खूब मिठाइयाँ खिलाईं। अपनी एक धोती उसको भेंट की। नाईने नशेमें आकर वधूकी ऐसी लम्बी प्रशंसा की; उसके नखशिखका ऐसा चित्र खींचा कि सदनको इस विषयमें कोई सन्देह न रहा। यह नखशिख सुमनसे बहुत कुछ मिलता था। अतएव सदन नवेली दुलहिनका स्वागत करनेके लिए और भी उत्सुक हो गया।

२३

यह बात बिल्कुल तो सत्य नहीं है कि ईश्वर सबको किसी न किसी हीलेसे अन्न वस्त्र देता है। पण्डित उमानाथ बिना किसी हीलेहीके संसारका सुख भोग करते थे। उनकी आकाशी वृत्ति थी। उनके भैंस और गायें न थीं, लेकिन घरमें घी–दूधकी नदी बहती थी, वह खेती बारी न करते थे, लेकिन घरमें अनाजकी खत्तियाँ भरी रहती थी। गाँवमें कहीं मछली मरे, कहीं

बकरा कटे, कही आम टूटे, कही भोज हो, उमानाथका हिस्सा बिना माँगे आपही आप पहुँच जाता। अमोल बड़ा गाँव था। ढाई तीन हजार जन-सख्या थी। लेकिन समस्त गाँवमे उनकी सम्मति के बिना कोई काम न होता था। स्त्रियोंको यदि गहने बनवाने होते तो वह उमानाथसे कहती। लड़के-लडकियों के विवाह उमानाथकी मार्फत तै होते। रेहननामे, बैनामे, दस्तावेज उमानाथ हीके परामर्शसे लिखे जाते। मुआमिले मुकद्दमे उन्हीके द्वारा दायर होते ओर मजा यह था कि उनका यह दबाव और सम्मान उनकी सज्जनताके कारण नहीं था। गाँववालोके साथ उनका व्यवहार शुष्क ओर रूखा होता था। वह बेलाग बात करते थे, लल्लोचप्पो करना न जानते थे, लेकिन उनके कटु वाक्योंको लोग दूधके समान पीते थे। मालूम नही, उनके स्वभावमे क्या जादू था। कोई कहता था यह उनका एकबाल है, कोई कहता था इन्हे महावीरका इष्ट है। लेकिन हमारे विचारमे यह उनके मानवस्वभावके ज्ञानका फल था। वह जानते थे कि कहाँ झुकना ओर कहाँ तनना चाहिए। गाँववालोसे तननेमे अपना काम सिद्ध होता था, अधिकारियोंसे झुकनेमे ही। थाने और तहसीलके अमले, चपरासीसे लेकर तहसीलदार तक, सभी उनपर कृपादृष्टि रखते थे। तहसीलदार साहबके लिए वह वर्षफल बनाते, डिप्टी साहबको भावी उन्नतिकी सूचना देते। कानूनगो और कुर्कअमीन उनके द्वारपर बिना बुलाये मेहमान बने रहते। किसीको यन्त्र देते, किसीको भगवद्गीता सुनाते और जिन लोगोंकी श्रद्धा इन बातोपर न थी, उन्हें मीठे अचार और नवरत्नकी चटनी खिला कर प्रसन्न रखते। थानेदार साहब उन्हे अपना दाहिना हाथ समझते थे। जहाँ ऐसे उनकी दाल न गलती वहाँ पण्डितजीकी बदौलत पाँचों उँगली घीमे हो जाती। भला ऐसे पुरुषकी गाँववाले क्यो न पूजा करते ?

उमानाथको अपनी बहन गगाजलीसे बहुत प्रेम था लेकिन गगाजलीको मैके आनेके थोड़े ही दिनो पीछे ज्ञात हुआ कि भाईका प्रेम भावजकी अवज्ञाके सामने नही ठहर सकता। उमानाथ बहिनको अपने घर लानेपर मनमे बहुत पछताते। वे अपनी स्त्रीको प्रसन्न रखने के लिए ऊपरी मनसे

से जो प्रेम था, उसमें तृष्णाहीका आधिक्य था। सुमन उसके हृदयमें रहकर भी उसके जीवनका आधार न बन सकती थी। सदनके पास यदि कुबेरका धन होता तो वह सुमनको अर्पण कर देता। वह अपने जीवनके सम्पूर्ण सुख, उसकी भेंट कर सकता था, किन्तु अपने दुःखसे, विपत्तिसे, कठिनाइयोसे, नैराश्यसे वह उसे दूर रखता था। उसके साथ वह सुखका आनन्द उठा सकता था, लेकिन दुःखका आनन्द नही उठा सकता था। सुमनपर उसे वह विश्वास कहाँ था जो प्रेमका प्राण है! अब वह कपटप्रेमके मायाजालसे मुक्त हो जायगा। अब उसे बहुरूप धरनेकी आवश्यकता नही। अब वह प्रेमको यथार्थरूपमे देखेगा और यथार्थ रूपमें दिखावेगा। यहाँ उसे वह अमूल्य वस्तु मिलेगी जो सुमनके यहाँ किसी प्रकार नही मिल सकती थी। इन विचारोने सदनको इस नये प्रेमके लिए लालायितकर दिया। अब उसे केवल यही सशय था कि कही वधू रूपवती न हुई तो? रूप लावण्य प्राकृतिक गुण है, जिसमे कोई परिवर्तन नही होसकता। स्वभाव एक उपार्जित गुण है; उसमें शिक्षा और सत्संग से सुधार हो सकता है। सदनने इस विषयमें ससुरालके नाईसे पूछ ताछ करनेकी ठानी; उसे खूब भग पिलाई, खूब मिठाइयाँ खिलाई। अपनी एक धोती उसको भेंट की। नाईने नशेमें आकर वधूकी ऐसी लम्बी प्रशंसा की, उसके नखशिखका ऐसा चित्र खीचा कि सदनको इस विषयमे कोई सन्देह न रहा। यह नखशिख सुमनसे बहुत कुछ मिलता था। अतएव सदन नवेली दुलहिनका स्वागत करनेके लिए और भी उत्सुक हो गया।

२३

यह बात बिल्कुल तो सत्य नही है कि ईश्वर सबको किसी न किसी हीलेसे अन्न वस्त्र देता है। पण्डित उमानाथ बिना किसी हीलेहीके संसारका सुख भोग करते थे। उनकी आकाशी वृत्ति थी। उनके भैस और गायें न थीं, लेकिन घरमें घी-दूधकी नदी बहती थी, वह खेती बारी न करते थे, लेकिन घरमें अनाजकी खत्तियाँ भरी रहती थी। गांवमें कहीं मछली मरे, कहीं

बकरा कटे, कही आम टूटे, कही भोज हो, उमानाथका हिस्सा विना माँगे आपही आप पहुँच जाता। अमोल बड़ा गाँव था। ढाई तीन हजार जन-सख्या थी। लेकिन समस्त गाँवमें उनकी सम्मति के विना कोई काम न होता था। स्त्रियोंको यदि गहने वनवाने होते तो वह उमानाथसे कहती। लडके-लडकियों के विवाह उमानाथकी मार्फत तै होते। रेहननामे, वैनामे, दस्तावेज उमानाथ हीके परामर्शसे लिखे जाते। मुआमिले मुकद्दमे उन्हीके द्वारा दायर होते ओर मजा यह था कि उनका यह दवाव और सम्मान उनकी सज्जनताके कारण नही था। गाँववालोके साथ उनका व्यवहार शुष्क और रूखा होता था। वह वेलाग बात करते थे, लल्लोचप्पो करना न जानते थे, लेकिन उनके कटु वाक्योंको लोग दूधके समान पीते थे। मालूम नही, उनके स्वभावमे क्या जादू था। कोई कहता था यह उनका एकबाल है, कोई कहता था इन्हे महावीरका इष्ट है। लेकिन हमारे विचारमे यह उनके मानवस्वभावके ज्ञानका फल था। वह जानते थे कि कहाँ झुकना और कहाँ तनना चाहिए। गाँववालोसे तननेमे अपना काम सिद्ध होता था, अधिकारियोसे झुकनेमे ही। थाने ओर तहसीलके अमले, चपरासीसे लेकर तहसीलदार तक, सभी उनपर कृपादृष्टि रखते थे। तहसीलदार साहबके लिए वह वर्षफल वनाते, डिप्टी साहबको भावी उन्नतिकी सूचना देते। कानूनगो और कुर्कअमीन उनके द्वारपर विना बुलाये मेहमान बने रहते। किसीको यन्त्र देते, किसीको भगवद्गीता सुनाते और जिन लोगोंकी श्रद्धा इन वातोंपर न थी, उन्हे मीठे अचार ओर नवरत्नकी चटनी खिला कर प्रसन्न रखते। थानेदार साहब उन्हे अपना दाहिना हाथ समझते थे। जहाँ ऐसे उनकी दाल न गलती वहाँ पण्डितजीकी वदौलत पाँचो उँगली घीमे हो जाती। भला ऐसे पुरुषकी गाँववाले क्यों न पूजा करते?

उमानाथको अपनी वहन गगाजलीसे वहुत प्रेम था लेकिन गगाजलीको मैके आनेके थोड़े ही दिनो पीछे ज्ञात हुआ कि भाईका प्रेम भावजकी अवज्ञाके सामने नही ठहर सकता। उमानाथ वहिनको अपने घर लानेपर मनमे वहुत पछताते। वे अपनी स्त्रीको प्रसन्न रखने के लिए ऊपरी मनसे

उसकी हाँ में हाँ मिला दिया करते। गंगाजलीको साफ कपडे पहननेका क्या अधिकार है? शान्ताका पालन पहले चाहे कितने ही लाड प्यारसे हुआ हो, अब उसे उमानाथकी लडकियोंसे बराबरी करनेका क्या अधिकार है? उमानाथ, स्त्रीकी इन द्वेषपूर्ण बातोंको सुनते और उनका अनुमोदन करते। गंगाजलीको जब क्रोध आता तो वह उसे अपने भाईहीपर उतारती। वह समझती थी कि वे अपनी स्त्रीको बढावा देकर मेरी दुर्गति करा रहे हैं। वे अगर उसे डाँट देते तो मजाल थी कि वह यों मेरे पीछे पड़ जाती? उमानाथको जब अवसर मिलता तो वह गंगाजलीको एकान्तमें समझा दिया करते। किन्तु एक तो जान्हवी उन्हे ऐसे अवसर मिलने ही न देती, दूसरे गंगाजलीको भी उनकी सहानुभूतिपर विश्वास न आता।

इस प्रकार एक वर्ष बीत गया। गगाजली चिन्ता, शोक और निराशासे बीमार पड गई। उसे बुखार आने लगा। उमानाथने पहले तो साधारण औषधियाँ सेवन कराई, लेकिन जब कुछ लाभ न हुआ तो उन्हें चिन्ता हुई। एक रोज उनकी स्त्री किसी पडोसीके घर गई हुई थी। उमानाथ बहनके कमरेमें गये। वह बेसुध पड़ी हुई थी, बिछावन चिथडा हो रहा था साड़ी फटकर तार-तार हो गई थी, शान्ता उसके पास बैठी हुई पंखा झल रही थी। यह करुणाजनक दृश्य देखकर उमानाथ रो पडे। यही बहन है जिसकी सेवाके लिए दो दासियाँ लगी हुई थीं, आज उसकी यह दशा हो रही है! उन्हें अपनी दुर्बलतापर अत्यन्त ग्लानि उत्पन्न हुई। गगाजलीके सिरहाने बैठकर रोते हुए बोले, बहन, यहाँ लाकर मैंने तुम्हे बड़ा कष्ट दिया है। नहीं जानता था कि उसका यह परिणाम होगा। मैं आज किसी वैद्यको ले आता हूँ। ईश्वर चाहेगे तो तुम शीघ्र ही अच्छी हो जाओगी।

इतनेमें जान्हवी भी आ गई, ये बातें उनके कानमें पड़ी। बोली, हाँहाँ दौडो, वैद्यको बुलाओ, नही तो अनर्थ हो जायगा। अभी पिछले दिनों मुझे महीनों ज्वर आता रहा, तब वैद्यके पास न दौड़े। मैं भी ओढकर पड़ रहती तो तुम्हें मालूम होता कि इसे कुछ हुआ है, लेकिन मैं कैसे पड़ रहती? घरकी चक्की कौन पीसता? मेरे कर्ममें क्या सुख भोगना बदा है?

उमानाथका उत्साह शान्त हो गया। वैद्यको बुलानेकी हिम्मत न पड़ी। वे जानते थे कि वैद्यको बुलाया तो गंगाजलीको जो दो-चार महीने जीने हैं, वह भी न जी सकेगी।

गंगाजलीकी अवस्था दिनों दिन बिगड़ने लगी। यहाँतक कि उसे ज्वरातिसार हो गया। जीनेकी आशा न रही। जिस उदरमें सागूके पचानेकी भी शक्ति न थी, वह जोकी रोटियाँ कैसे पचाता? निदान उसका जर्जर शरीर इन कष्टोंको और अधिक न सह सका। छः मास बीमार रहकर वह दुखिया अकाल मृत्युका ग्रास बन गई।

शान्ताका अब संसारमें कोई न था। सुमनके पास उसने दो पत्र लिखे; लेकिन वहाँसे कोई जवाब न गया। शान्ताने समझा; बहनने भी नाता तोड दिया। विपत्तिमें कौन साथी होता है? जबतक गंगाजली जीती थी; शान्ता उसके अञ्चलमें मुँह छिपाकर रो लिया करती थी। अब यह अवलम्बन भी न रहा। अन्धेके हाथसे लकडी जाती रही। शान्ता जबतब अपनी कोठरीके कोनेमें मुँह छिपाकर रोती; लेकिन घरके कोने और माताके अञ्चलमें बड़ा अन्तर है। एक शीतल जलका सागर है, दूसरा मरुभूमि।

शान्ताको अब शान्ति नहीं मिलती। उसका हृदय अग्निके सदृश दहकता रहता है, वह अपनी मामी और मामाको अपनी माताका घातक समझती है। जब गंगाजली जीती थी, तब शान्ता उसे कटु वाक्योंसे बचानेके लिए यत्न करती रहती थी, वह अपनी मामीके इशारोंपर दौड़ती थी, जिसमें वह माताको कुछ कह न बैठे। एक बार गंगाजलीके हाथसे घीकी हाँड़ी गिर पड़ी थी। शान्ताने मामीसे कहा था, यह मेरे हाथसे छूट पड़ी। इसपर उसने खूब गालियाँ खाई। वह जानती थी कि माताका हृदय व्यंगकी चोटें नही सह सकता।

लेकिन अब शान्ताको इसका भय नहीं है। वह निराधार होकर बलवती हो गई है। अब वह उतनी सहनशील नही है; उसे जल्द क्रोध आ जाता है। वह जली कटी बातोंका बहुधा उत्तर भी दे देती है। उसने अपने हृदयको कड़ीसे कड़ी यन्त्रणके लिए तैयार कर लिया है। मामासे

वह दबती है, लेकिन मामीसे नही दबती और ममेरी बहिनोंको तो वह तुरकी बतुरकी जवाब देती है। अब शान्ता वह गाय है जो हत्याभयके बलपर दूसरेका खेत चरती है।

इस तरह एक वर्ष और बीत गया। उमानाथने बहुत दौड-धूप की कि उसका विवाह कर दूँ, लेकिन जैसा सस्ता सौदा वह करना चाहते थे, वह कही ठीक न हुआ। उन्होंने थाने, तहसीलमें जोड़तोड़ लगाकर २००, का चन्दा करा लिया था। मगर इतने सस्ते वर कहाँ? जान्हवीका वश चलता तो वह शान्ताको किसी भिखारीके गले बाँधकर अपना पिण्ड छुड़ालेती, लेकिन उमानाथने अबकी पहली बार उसका विरोध किया और सुयोग्य वर ढूढते रहे। गंगाजलीके बलिदानने उनकी आत्माको बलवान बना दिया।

२४

सार्वजनिक संस्थाएँ भी प्रतिभाशाली मनुष्योंकी मुहताज होती हैं। यद्यपि विट्ठलदासके अनुयायियोंकी कमी न थी, लेकिन उनमें प्राय. सामान्य अवस्थाके लोग थे। ऊँची श्रेणीके लोग उनसे दूर भागते थे। पद्मसिंह के सम्मिलित होते ही इस सस्थामे जान पड गई। नदीकी पतली धार उमड़ पडी। बडे आदमियोंमे उनकी चर्चा होने लगी। लोग उनपर कुछ-कुछ विश्वास करने लगे?

पद्मसिंह अकेले न आये। बहुधा किसी कामको अच्छा समझकर भी हम उसमें हाथ लगाते हुए डरते हैं, नक्कू बन जानेका भय लगा रहता है। हम बड़े आदमियोंके आ मिलनेकी राह देखा करते हैं। ज्योही किसीने रास्ता खोला, हमारी हिम्मत बँध जाती है, हमको हँसीका डर नही रहता। अकेले हम अपने घरमें भी डरते हैं, दो होकर जगलोंमें भी निर्भय रहते हैं। प्रोफेसर रमेशदत्त, लाला भगतराम और मिस्टर रुस्तम भाई गुप्तरूपमे विट्ठलदासकी सहायता करते रहते थे। अब वह खुल पड़े। सहायकोंकी संख्या दिनोंदिन बढने लगी।

विट्ठलदास सुधारके विषयमें मृदुभाषी बनना अनुचित समझते थे, इसलिए उनकी बातें रुचिकर न होती थीं, मीठी नींद सोनेवालों

को उनका कठोर नाद अप्रिय लगता था। विट्ठलदासको इसकी चिन्ता न थी।

पद्मसिंह धनी मनुष्य थे। उन्होंने बडे उत्साहसे वेश्याओंको शहरके मुख्य स्थानोसे निकालनेके लिए आन्दोलन करना शुरू किया। म्युनिसिपैलिटीके अधिकारियोंमें दो चार सज्जन बिट्ठलदासके भक्त भी थे। किन्तु वे इस प्रस्तावको कार्य रूपमे लानेके लिए यथेष्ट साहस न रखते थे। समस्या इतनी जटिल थी कि उसकी कल्पना ही लोगोंको भयभीत कर देती थी। वे सोचते थे कि इस प्रस्तावको उठानेसे न मालूम शहरमे क्या हलचल मचे, शहरके कितने ही रईस, कितने ही राज्यपदाधिकारी, कितने ही सौदागर इस प्रेममण्डीसे सम्बन्ध रखते थे। कोई ग्राहक था, कोई पारखी, उन सबसे वैर मोल लेनेका कौन साहस करता ? म्युनिसिपैलिटीके अधिकारी उनके हाथोंमे कठपुतलीके समान थे।

पद्मसिंहने मेम्बरोसे मिलमिलाकर उनका ध्यान इस प्रस्तावकी ओर आकर्षित किया। प्रभाकररावकी तीव्र लेखनीने उनकी बडी सहायता की। पैम्फलेट निकाले गये और जनताको जागृत करनेके लिए व्याख्यानोका क्रम बाँधागया। रमेशदत्त और पद्मसिंह इस विषयमें निपुण थे। इसका भार उन्होंने अपने सिर ले लिया। अब आन्दोलनने एक नियमित रूप धारण किया।

पद्मसिंहने यह प्रस्ताव उठा तो दिया, लेकिन वह इसपर जितना ही विचार करते थे, उतने ही अन्धकारमे पड़ जाते थे। उन्हे यह विश्वास न होता था कि वेश्याओंके निर्वासनसे आशातीत उपकार हो सकेगा। संभव है, उपकारके बदले अपकार हो। बुराइयोका मुख्य उपचार मनुष्यका सद्ज्ञान है। इसके बिना कोई उपाय सफल नही हो सकता। कभी-कभी वह सोचते-सोचते हताश हो जाते। लेकिन इस पक्षके एक सभ्य बनकर वे आप सन्देह रखते हुए भी दूसरोपर इसे प्रकट न करते थे। जनताके सामने तो उन्हे सुधारक बनते हुए सकोच न होता था, लेकिन अपने मित्रो और सज्जनोंके सामने वह दृढ न रह सकते। उनके सामने आना शर्माजीके लिए

बड़ी कठिन परीक्षा थी। कोई कहता, किस फेरमें पड़े हो, विट्ठलदासके चक्करमें तुम भी आ गये ? चैनसे जीवन व्यतीत करो। इन सब झमेलोंमें क्यों व्यर्थ पड़ते हो ? कोई कहता, यार मालूम होता है, तुम्हें किसी औरतने चरका दिया है, तभी तुम वेश्याओंके पीछे इस तरह पड़े हो ? ऐसे मित्रोंके सामने आदर्श और उपकारकी बातचीत करना अपनेको बेवकूफ बनाना था।

व्याख्यान देते हुए भी जब शर्माजी कोई भावपूर्ण बात कहते, करुणात्मक दृश्य दिखानेकी चेष्टा करते तो उन्हें शब्द नहीं मिलते थे, और शब्द मिलते तो उन्हें निकालते हुए शर्माजीको बड़ी लज्जा आती थी। यथार्थमें वह इस रसमें पगे नहीं थे। वह जब अपने भावशैथिल्यकी विवेचना करते तो उन्हें ज्ञात होता था कि मेरा हृदय प्रेम और अनुरागसे खाली है।

कोई व्याख्यान समाप्त कर चुकनेपर शर्माजीको यह जाननेकी उतनी इच्छा नहीं होती थी कि श्रोताओंपर इसका क्या प्रभाव पड़ा, जितनी इसकी कि व्याख्यान सुन्दर, सप्रमाण और ओजपूर्ण था या नहीं।

लेकिन इन समस्याओंके होते हुए भी यह आन्दोलन दिनों-दिन बढ़ता जाता था। यह सफलता शर्माजीके अनुराग और विश्वासने कुछ कम उत्साहवर्धक न थी।

सदनसिंहके विवाहको अभी दो मास थे। घरकी चिन्ताओंसे मुक्त होकर शर्माजी अपनी पूरी शक्तिसे इस आन्दोलनमें प्रवृत्त हो गये। कच-हरीके काममें उनका जी न लगता। वहाँ भी वे प्रायः इन्हीं चर्चाओंमें पड़े रहते। एक ही विषयपर लगातार सोचते-विचारते रहनेसे उस विषयसे प्रेम हो जाया करता है। धीरे-धीरे शर्माजीके हृदयमें प्रेमका उदय होने लगा।

लेकिन जब यह विवाह निकट आ गया तो शर्माजीका उत्साह कुछ क्षीण होने लगा। मनमें यह समस्या उठी कि भैया यहाँ वेश्याओंके लिये अवश्य ही मुझे लिखेंगे, उस समय मैं क्या करूँगा ? नाचके बिना सभा सूनी रहेगी, दूर दूरके गाँवोंसे लोग नाच देखने आवेंगे, नाच न देखकर उन्हें निराशा होगी, भाई साहब बुरा मानेंगे, ऐसी अवस्थामें मेरा क्या कर्त्तव्य है ? भाईसाहबको इस कुप्रथासे रोकना चाहिए। लेकिन क्या मैं

इस दुष्कर कार्यमे सफल हो सकूँगा ? बड़ोके सामने न्याय और सिद्धान्तकी बातचीत असंगत-सी जान पडती है। भाई साहबके मनमे बडे-बड़े हौसले हैं, इन हौसलोके पूरे होनेमे कुछ भी कसर रही तो उन्हे दुःख होगा। लेकिन कुछ भी हो, मेरा कर्त्तव्य यही है कि अपने सिद्धान्तका पालन करूँ।

यद्यपि उनके इस सिद्धान्त पालनसे प्रसन्न होनेवालोंकी संख्या बहुत कम थी और अप्रसन्न होनेवाले बहुत थे, तथापि शर्माजीने इन्ही गिने-गिनाये मनुष्योको प्रसन्न रखना उत्तम समझा। उन्होने निश्चय कर लिया कि नाच न ठीक करूँगा। अपने घरमे ही सुधार न कर सका तो दूसरोंको सुधारनेकी चेष्टा करना बड़ी भारी धूर्त्तता है।

यह निश्चय करके शर्माजी बारातकी सजावटके सामान जुटाने लगे। वह ऐसे आनन्दोत्सवोमे किफायत करना अनुचित समझते थे। इसके साथ ही वह अन्य सामग्रियोके बाहुल्यसे नाचकी कसर पूरी करना चाहते थे, जिसमे उनपर किफायतका अपराध न लगे।

एक दिन विट्ठलदासने कहा, इन तैयारियोमें आपने कितना खर्च किया ?

शर्मा—इसका हिसाब लौटनेपर होगा।

विट्ठलदास—तब भी दो हजारसे कम तो न होगा।

शर्मा—हाँ, शायद कुछ इससे अधिक हो।

मदन—अच्छा, यह बात है। भला किसी तरह लोगोंकी आँखें तो खुली। मै भी इस प्रथाको निन्द्य समझता हूँ, लेकिन नक्कू नही बनना चाहता। जब सब लोग छोड देंगे तो मै भी छोड दूगा, मुझको ऐसी क्या पड़ी है कि सबके आगे आगे चलू। मेरे एक ही लड़का है, उसके विवाहमें मनके सब हौसले पूरे करना चाहता हूँ। विवाहके बाद मै भी तुम्हारा मत स्वीकार कर लूगा। इस समय मुझे अपने पुराने ढगपर चलने दो, और यदि बहुत कष्ट न हो तो सबेरे की गाडीसे चले जाओ और बीडा देकर उधरसे ही अमोला चले जाना। तुमसे इसलिए कहता हूँ कि तुम्हें वहाँ लोग जानते हैं। दूसरे जायँगे तो लुट जायँगे।

पद्मसिहने सिर झुका लिया और सोचने लगे। उन्हे चुप देखकर मदनसिहने तेवर बदलकर कहा, चुप क्यों हो, क्या जाना नही चाहते?

पद्मसिहने अत्यन्त दीन भावसे कहा—भैया, आप यदि मुझे क्षमा करें तो .. ..

मदन—नही नही, मै तुम्हें मजबूर नही करता, नही जाना चाहते तो मत जाओ। मुन्शी बैजनाथ, आपको कष्ट तो होगा, पर मेरी खातिर से आप ही जाइय।

बैजनाथ—मुझे कोई उज्र नही है।

मदन—उधरसे ही अमोला चले जाइयेगा। आपका अनुग्रह होगा।

बैजनाथ—आप इतमीनान रखें, मैं चला जाऊँगा।

कुछ देर तीनो आदमी चुप बैठे रहे। मदनसिंह अपने भाईको कृतघ्न समझ रहे थे। बैजनाथको चिन्ता हो रही थी कि मदनसिहका पक्ष ग्रहण करनेसे पद्मसिह बुरा तो न मान जायँगे और पद्मसिह अपने बडे भाईकी अप्रसन्नताके भयसे दबे हुए थे। सिर उठानेका साहस नही होता था। एक ओर भाईकी अप्रसन्नता थी दूसरी ओर अपने सिद्धान्त और न्यायका बलिदान। एक ओर अन्धेरी घाटी थी, दूसरी ओर सीधी चट्टान, निकलनेका कोई मार्ग न था। अन्तमें उन्होंने डरते-डरते कहा, भाई साहब, आपने मेरी भूलें कितनी ही बार क्षमा की है, मेरी एक ढिठाई और क्षमा कीजिये।

आप जब नाचके रिवाजको दूषित समझते है तो उसपर इतना जोर क्यो देते है ?

मदनसिंह झुँझलाकर बोले, तुम तो ऐसी बाते करते हो मानो इस देशमे पैदा ही नही हुए, जैसे किसी अन्य देशसे आये हो ! एक यही क्या, कितनी कुप्रथाएँ है, जिन्हे दूषित समझते हुए भी उनका पालन करना पड़ता है। गाली गाना कौन सी अच्छी बात है ? दहेज लेना कौनसी अच्छीबात है ? पर लोकरीतिपर न चले तो लोग उँगलियाँ उठाते है। नाच न ले जाऊँ तो लोग यही कहेंगे कि कँजूसीके मारे नही लाये। मर्य्यादामें बट्टा लगेगा। मेरे सिद्धान्तको कौन देखता है ?

पद्मसिंह बोले, अच्छा, अगर इसी रुपयेको किसी दूसरी उचित रीतिसे खर्च कर दीजिये तब तो किसीको कजूसीकी शिकायत न रहेगी ! आप दो डेरे ले जाना चाहते है। आजकल लग्न तेज है, तीन सौसे कम खर्च न पड़ेगा आप तीन सौ की जगह पाँच सौ रुपयेके कम्बल लेकर अमोलाके दीन दरिद्रोमे बाँट दीजिये तो कैसा हो ? कमसे कम दो सौ मनुष्य आपको आशीर्वाद देंगे और जबतक कम्बलका एक धागा भी रहेगा आपका यश गाते रहेंगे। यदि यह स्वीकार न हो तो अमोलामें २००) की लागतसे एक पक्का कुआँ बनवा दीजिये। इसीसे चिरकालतक आपकी कीर्ति बनी रहेगी। रुपयोका प्रबन्ध मै कर दूगा।

मदनसिंहने बदनामीका जो सहारा लिया था वह इन प्रस्तावोके सामने न ठहर सका। वह कोई उत्तर सोच रहे थे कि इतनेमे बैजनाथ—यद्यपि उन्हे पद्मसिंहके बिगड जानेका भय था तथापि इस बातमें अपनी बुद्धिकी प्रकांडता दिखानेकी इच्छा उस भयसे अधिक बलवती थी—इसलिए बोले, भैया, हर कामके लिए एक अवसर होता है, दानके अवसरपर दान होना चाहिए, नाचके अवसरपर नाच। बेजोड़ बात कभी भली नही लगती। और फिर शहरके जानकार आदमी हों तो एक बात भी है। देहातके उजड्ड जमींदारोके सामने आप कम्बल बाँटने लगेंगे तो वह आपका मुँह देखेंगे और हँसेंगे।

मदनसिंह निरुत्तरसे हो गये थे। मुन्शी बैजनाथके इस कथनसे खिल उठे। उनकी ओर कृतज्ञतासे देखकर बोले, हाँ और क्या होगा? वसन्तमें मलार गानेवालेको कौन अच्छा कहेगा? कुसमयकी कोई बात अच्छी नहीं होती। इसीसे तो मैं कहता हूँ कि आप सवेरे चले जाइये और दोनों डेरे ठीक कर आइये।

पद्मसिंहने सोचा, यह लोग तो अपने मनकी करेंगे ही, पर देखूं किन युक्तियोंसे अपना पक्ष सिद्ध करते हैं। भैयाको मुन्शी बैजनाथपर अधिक विश्वास है, इस बातसे भी उन्हें बहुत दुःख हुआ। अतएव वह निःसंकोच होकर बोले, तो यह कैसे मान लिया जाय कि विवाह आनन्दोत्सव ही का समय है? मैं तो समझता हूँ, दान और उपकारके लिए इससे उत्तम और कोई अवसर न होगा। विवाह एक धार्मिक व्रत है, एक आत्मिक प्रतिज्ञा है, जब हम गृहस्थाश्रममें प्रवेश करते हैं, जब हमारे पैरोंमें धर्मकी बेड़ी पड़ती है, जब हम सांसारिक कर्तव्यके सामने अपने सिरको झुका देते हैं, जब जीवनका भार और उसकी चिन्ताएँ हमारे सिरपर पड़ती हैं, तो ऐसे पवित्र संस्कारके अवसरपर हमको गाम्भीर्यसे काम लेना चाहिए। यह कितनी निर्दयता है कि जिस समय हमारा आत्मीय युवक ऐसा कठिन व्रत धारण कर रहा हो उस समय हम आनन्दोत्सव मनाने बैठें। वह इस गुरुतर भारसे दबा जाता हो और हम नाच-रंगमें मस्त हों। अगर दुर्भाग्यसे आज-कल यह उल्टी प्रथा चल पड़ी है तो क्या यह आवश्यक है कि हम भी उसी लकीरपर चलें? शिक्षाका कमसे कम इतना प्रभाव तो होना चाहिए कि धार्मिक विषयोंमें हम मूर्खोंकी प्रसन्नताको प्रधान न समझें।

मदनसिंह फिर चिन्तासागरमें डूबे। पद्मसिंहका कथन उन्हें सर्वथा सत्य प्रतीत होता था, पर रिवाजके सामने न्याय, सत्य और सिद्धान्त सभीको सिर झुकाना पड़ता है। उन्हें संशय था कि मुन्शी बैजनाथ अब कुछ उत्तर न दे सकेंगे। लेकिन मुन्शीजी अभी हार नहीं मानना चाहते थे। वह बोले, भैया, तुम वकील हो, तुमसे बहस करनेकी लियाकत हममें कहाँ है? लेकिन जो बात सनातनसे होती चली आई है, चाहे वह उचित हो

या अनुचित उसके मिटानेसे वदनामी अवश्य होती है । आखिर हमारे पूर्वज निरे जाहिल-जपाट तो थे नहीं, उन्होंने कुछ समझकर ही तो इस रस्मका प्रचार किया होगा ।

मदनसिंहको यह युक्ति न सूझी थी । बहुत प्रसन्न हुए । बैजनाथ की ओर सम्मानपूर्ण भावसे देख कर बोले, अवश्य । उन्होने जो प्रथाएँ चलाई है, उन सबमें कोई न कोई बात छिपी रहती है, चाहे वह आजकल हमारी समझमे न आवे । आजकलके नये विचारवाले लोग उन प्रथाओके मिटानेमें ही अपना गौरव समझते हैं । अपने सामने उन्हें कुछ समझते ही नही । वह यह नही देखते कि हमारे पास जो विद्या, ज्ञान, विचार और आचरण है, वह सब उन्ही पूर्वजोकी कमाई है । कोई कहता है, यज्ञोपवीतसे क्या लाभ ? कोई शिखाकी जड काटनेपर तुला हुआ है, कोई इसी धुनमें है कि शूद्र और चाण्डाल सब क्षत्रिय हो जायँ, कोई विधवाओके विवाहका राग अलापता फिरता है । और तो और, कुछ ऐसे महाशय भी हैं जो जाति और वर्णको भी मिटा देना चाहते हैं । तो भाई, यह सब बातें हमारे मान की नही है । जो जिन्दा रहा तो देखूगा कि यूरोपका पौधा यहाँ कैसे कैसे फल लाता है ? हमारे पूर्वजोंने खेती को सबसे उत्तम कहा है, लेकिन आजकल यूरोपकी देखादेखी लोग मिल और मशीनोके पीछे पड़े हुए हैं । मगर देख लेना, ऐसा कोई समय आवेगा कि यूरोपवाले स्वयं चेतेंगे और मिलोको खोद-खोदकर खेत वनावेंगे । स्वाधीन कृषकके सामने मिलके मजदूरोंकी क्या हस्ती । वह भी कोई देश है, जहाँ वाहरसे खानेकी वस्तुएँ न आवे तो लोग भूखों मरे । जिन देशोमें जीवन ऐसे उलटे नियमोपर चलाया जाता है, वह हमारे लिए आदर्श नही बन सकते । शिल्प और कला-कौशलका यह महल उसी समय तक है जब तक संसारमें निर्बल असमर्थ जातियाँ वर्त्तमान हैं । उनके गले सस्ता माल मढकर यूरोपवाले चैन करते है । पर ज्योंही ये जातियाँ चौकेंगी, यूरोपकी प्रभुता नष्ट हो जायगी । हम यह नही कहते कि यूरोपवालोसे कुछ मत सीखो । नहीं, वह आज संसारके स्वामी हैं और

उनमें बहुतसे दिव्य गुण है। उनके गुणोको ले लो, दुर्गुणोको छोड़ दो। हमारे अपने रीतिरिवाज हमारी अवस्थाके अनुकूल है। उनमे काट-छाँट करनेकी जरूरत नही।

मदनसिहने ये बातें कुछ गर्वसे की, मानो कोई विद्वान पुरुष अपने निजके अनुभव प्रकट कर रहा है, पर यथार्थमें ये सुनी सुनाई बातें थी जिनका मर्म वह खुद भी न समझते थे। पद्मसिहने इन बातोंको बड़ी धीरताके साथ सुना, पर उनका कुछ उत्तर न दिया। उत्तर देनेसे बात बढ जानेका भय था। कोई वाद जब विवादका रूप धारण कर लेता है तो वह अपने लक्ष्यसे दूर हो जाता है। वादमें नम्रता और विनय प्रबल युक्तियोसे भी अधिक प्रभाव डालती है। अतएव वह बोले, तो मै ही चला जाऊँगा, मुन्शी बैजनाथको क्यों कष्ट दीजियेगा। यह चले जायँगे तो यहाँ बहुत-सा काम पड़ा रह जायगा। आइये, मुन्शीजी हम दोनो आदमी बाहर चले, मुझे आपसे अभी कुछ बाते करनी है।

मदनसिह—तो यही क्यों नही करते? कहो तो मैं ही हट जाऊँ।

पद्म—जी नही कोई ऐसी बात नही है पर ये बातें मैं मुन्शीजीसे अपनी शंका-समाधानकरनेके लिए कर रहा हूँ। हाँ, भाई साहब बतलाइये अमीलामे दर्शकोंकी संख्या कितनी होगी? कोई एक हजार। अच्छा आपके विचारमें कितने इनमें दरिद्र किसान होंगे, कितने जमींदार?

बैजनाथ—ज्यादा किसान ही होंगे, लेकिन जमीदार भी दो-तीन सौ से कम न होंगे।

पद्म—अच्छा, आप यह मानते है कि दीन किसान नाच देखकर उतने प्रसन्न न होंगे जितने धोती या कम्बल पाकर?

बैजनाथ भी सशस्त्र थे। बोले, नहीं मैं यह नही मानता। अधिकतर ऐसे किसान होते है जो दान लेना कभी स्वीकार न करेंगे, वह जलसा देखने आवेंगे और जलसा अच्छा न होगा तो निराश होकर लौट जायँगे।

पद्मसिंह चकराये। मुकरानी प्रश्नोंका जो क्रम उन्होंने मनमें बाँध रक्खा था वह बिगड़ गया। समझ गये कि मुन्शीजी सावधान है। अब

कोई दूसरा दाव निकालना चाहिए। बोले, आप यह मानते है कि वाराजमें वही वस्तु दिखाई देती है जिसके ग्राहक होते है और ग्राहकोंके न्यूनाधिक होनेपर वस्तुका न्यूनाधिक होना निर्भर है।

बैजनाथ—जी हॉ, इसमे कोई सन्देह नही।

पद्मसिंह—इस विचारसे किसी वस्तुके ग्राहक ही मानों उसके वाजारमे आनेके कारण होते है। यदि कोई मॉस न खाय तो वकरेकी गर्दनपर छुरी क्यों चले?

वैजनाथ समझ रहे थे कि यह मुझे किसी दूसरे पेचमे ला रहे हैं, लेकिन उन्होने अभीतक उसका मर्म न समझा था। डरते हुए बोले, हाँ, बात तो यही है।

पद्म—जब आप यह मानते है तो आपको यह भी मानना पड़ेगा कि जो लोग वेश्याओंको बुलाते है, उन्हे धन देकर उनके लिए सुख-विलास की सामग्री जुटाते और उन्हे ठाट-बाटसे जीवन व्यतीत करनेके योग्य बनाते है, वे उस अधिकारसे कम पापके भागी नही है जो वकरेकी गर्दनपर छुरी चलाता है। यदि मैं वकीलोंको ठाटके साथ टमटम दौड़ाते हुए न देखता तो क्या आज मै वकील होता?

वैजनाथने हँसकर कहा, भैया, तुम घुमा-फिराकर अपनी बात मनवा लेते हो, लेकिन वात जो कहते हो वह सच्ची है।

पद्म—ऐसी अवस्थामे क्या यह समझना कठिन है कि सैकड़ों स्त्रियाँ जो हर रोज वाजारमे झरोखोमे वैठी दिखाई देती है, जिन्होने अपनी लज्जा और सतीत्वको भ्रष्ट कर दिया है, उनके जीवनका सर्वनाश करनेवाले हमी लोग है। वह हजारों परिवार जो आये दिन इस कुवासनाकी भँवरमे पडकर विलुप्त हो जाते है, ईश्वरके दरवारमे हमारा ही दामन पकड़ेगे। जिस प्रथासे इतनी वुराइयॉ उत्पन्न हो उसका त्याग करना क्या अनुचित है?

मदनसिंह बड़े ध्यानसे यह वाते सुन रहे थे। उन्होंने इतनी उच्च शिक्षा नहीं पाई थी जिससे मनुष्य विचार स्वातन्त्र्यकी धुनमे सामाजिक वन्धनों

और नतिक सिद्धान्तोका शत्रु हो जाता है। नही, वह साधारण बुद्धिके मनुष्य थे। कायल होकर बतबढाव करते रहना उनकी सामर्थ्यसे बाहर था। मुस्कुराकर मुन्शी बैजनाथसे बोले, कहिये मुन्शीजी, अब क्या कहते हैं ? है कोई निकलनेका उपाय ?

बैजनाथने हँसकर कहा, मुझे तो रास्ता नही सूझता।

मदन—अजी कुछ कठहुज्जतीही करो।

बैजनाथ—कुछ दिनों वकालत पढ ली होती तो यह भी करता। यहाँ अब कोई जवाब ही नहीं सूझता। क्यो भैया पद्मसिंह, मान लो तुम मेरी जगह होते तो इस समय क्या जवाब देते ?

पद्मसिंह—(हँसकर) जवाब तो कुछ न कुछ जरूर ही देता, चाहे तुक मिलती या न मिलती।

मदन—इतना तो मै भी कहूँगा कि ऐसे जलसोसे मन अवश्य चचल हो जाता है। जवानीमें जब मै किसी जलसोसे लौटता तो महीनो तक उसी वेश्या के रग-रूप हाव-भावकी चर्चा किया करता।

बैजनाथ—भैया, पद्मसिंहके ही मनकी होने दीजिये, लेकिन कम्बल अवश्य बँटवाइये।

मदन—एक कुआँ बनवा दिया जाय तो सदाके लिए नाम हो जायगा। इधर भाँवर पड़ी उधर मैने कुएँकी नीव डाली।

२५

बरसातके दिन थे, घटा छाई हुई थी। पण्डित उमानाथ चुनारगढके निकट गगा के तटपर खडे नावकी बाट जोह रहे थे। वह कई गाँवोका चक्कर लगाते हुए आ रहे थे और सन्ध्या होनेसे पहले चुनारके पास एक गाँवमे जाना चाहते थे। उन्हें पता मिला था कि उस गाँवमें एक सुयोग्य वर है। उमानाथ आज ही अमोला लौट जाना चाहते थे, क्योंकि उनके गाँवमें एक छोटीसी फौजदारी हो गई थी और थानेदार साहब कल तहकीकात करने आनेवाले थे। मगर अभीतक नाव उसी पार खड़ी थी। उमानाथ

को मल्लाहोंपर क्रोध आ रहा था। इससे अधिक क्रोध उन मुसाफिरोंपर आ रहा था जो उस पार धीरे-धीरे नावपर बैठने आ रहे थे। उन्हे दौड़ते हुए आना चाहिए था, जिसमें उमानाथको जल्द नाव मिल जाय। जब खड़े-खड़े बहुत देर हो गई तो उमानाथने जोरसे चिल्लाकर मल्लाहोंको पुकारा। लेकिन उनकी कण्ठ-ध्वनिको मल्लाहोके कानमे पहुँचनेकी प्रबल आकांक्षा न थी। वह लहरोंसे खेलती हुई उन्हीमें समा गई।

इतनेमें उमानाथने एक साधुको अपनी ओर आते देखा। सिरपर जटा, गलेमे रुद्राक्षकी माला, एक हाथमे सुलफेकी लम्बी चिलम, दूसरे हाथमें लोहेकी छड़ी, पीठपर एक मृगछाला लपेटे हुए आकर नदीके तटपर खड़ा हो गया। वह भी उस पार जाना चाहता था।

उमानाथको ऐसी भावना हुई कि मैंने इस साधुको कही देखा है, पर याद नही पडता कि कहाँ। स्मृतिपर एक परदा-सा पडा हुआ था।

अकस्मात् साधुने उमानाथकी ओर ताका और तुरन्त उन्हे प्रणाम करके बोला, महाराज घरपर तो सब कुशल है, यहाँ कैसे आना हुआ।

उमानाथकें नेत्रपरसे परदा हट गया। स्मृति जागृत हो गई। हम रूप बदल सकते है, शब्दको नही बदल सकते। यह गजाधर पांडे थे।

जबसे सुमनका विवाह हुआ था, उमानाथ कभी उसके पास नही गये थे। उसे मुँह दिखानेका साहस नही होता था। इस समय गजाधरको इस भेषमे देखकर उमानाथको आश्चर्य हुआ। उन्होने समझा, कही मुझे फिर धोखा न हुआ हो। डरते हुए पूछा, शुभ नाम ?

साधु—पहले तो गजाधर पांडे था, अब गजानन्द हूँ।

उमानाथ—ओहो! तभी तो मै पहचान न पाता था। मुझे स्मरण होता था कि मैंने कही आपको देखा है, पर आपको इस भेषमे देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है। बाल बच्चे कहाँ है।

गजानन्द—अब उस मायाजालसे मुक्त हो गया।

उमानाथ—सुमन कहाँ है ?

गजानन्द—दालमण्डीके एक कोठेपर।

उमानाथने विस्मित होकर गजानन्दकी ओर देखा तब लज्जासे उनका सिर झुक गया। एक क्षणके बाद उन्होंने फिर पूछा, यह कैसे हुआ, कुछ बात समझमें नही आती ?

गजानन्द—उसी प्रकार जैसे ससारमें प्राय. हुआ करता है। मेरी असज्जनता और निर्दयता, सुमनकी चञ्चलता और विलासलालसा दोनोंने मिलकर हम दोनोका सर्वनाश कर दिया। मै अब उस समयकी बातोंको सोचता हूँ तो ऐसा मालूम होता है कि एक बड़े घरकी बेटीसे ब्याह करनेमें मैने बडी भूल की और इससे बडी भूल यह थी कि ब्याह हो जानेपर उसका उचित आदर सम्मान नही किया। निर्धन था, इसलिए आवश्यक था कि मै धनके अभावको अपने प्रेम और भक्तिसे पूरा करता। मैने इसके विपरीत उससे निर्दयताका व्यवहार किया। उसे वस्त्र और भोजनका कष्ट दिया। वह चौका बरतन, चक्की चूल्हेमें निपुण नही थी और न हो सकती थी, पर उससे यह सब काम लेता था और जरा भी देर हो जाती तो बिगड़ता था। अब मुझे मालूम होता है कि मै ही उसके घरसे निकलनेका कारण हुआ, मै उसकी सुन्दरताका मान न कर सका, इसलिए सुमनका भी मुझसे प्रेम नही हो सका। लेकिन वह मुझपर भक्ति अवश्य करती थी। पर उस समय मै अन्धा हो रहा था। कंगाल मनुष्य धन पाकर जिस प्रकार फूल उठता है उसी तरह सुन्दर स्त्री पाकर वह संशय और भ्रममें आसक्त हो जाता है। मेरा भी यही हाल था। मुझे सुमनपर अविश्वास रहा करता था और प्रत्यक्ष इस बातको न कहकर मै अपने कठोर व्यवहारसे उसके चित्तको दुखी किया करता था। महाशय, मैने उसके साथ जो-जो अत्याचार किये उन्हें स्मरण करके आज मुझे अपनी क्रूरतापर इतना दु.ख होता है कि जी चाहता है कि विष खा लूं। उसी अत्याचारका अब प्रायश्चित कर रहा हूं। उसके चले जानेके बाद दो-चार दिनतक तो मुझपर नशा रहा, पर जब नशा ठंडा हुआ तो मुझे वह घर काटने लगा। मै फिर उस घरमें न गया। एक मन्दिरमे पुजारी बन गया। अपने हाथसे भोजन बनानेके कष्टसे बचा मन्दिरमे दो चार सज्जन नित्य ही आ जाते थे। उनके साथ रामायण आदि

कथाएँ पढ़ा करता था। कभी कभी साधु महात्मा भी आ जाते। उनके पास सत्संगका सुअवसर मिल जाता। उनकी ज्ञान मर्मकी बातें सुनकर मेरा अज्ञान कुछ कुछ मिटने लगा। मैं आपसे सत्य ही कहता हूँ पुजारी बनते समय मेरे मनमें भक्तिका भाव नाममात्रको भी न था। मैंने केवल निरुद्यमताका सुख और उत्तम भोजनका स्वाद लूटनेके लिए पूजा-वृत्ति ग्रहण की थी, पर धर्म कथाओंके पढने और सुननेसे मनमे भक्ति और प्रेमका उदय हुआ और ज्ञानियोके सत्संगसे भक्तिने वैराग्यका रूप धारण कर लिया। अब गाँव-गाँव घूमता हूँ और अपनेसे जहाँतक हो सकता है दूसरोंका कल्याण करता हूँ। आप क्या काशीसे आ रहे है ?

उमानाथ—नहीं, मैं भी एक गाँवसे आ रहा हूँ। सुमनकी एक छोटी बहन है, उसीके लिए वर खोज रहा हूँ।

गजानन्द—लेकिन अबकी सुयोग वर खोजियेगा।

उमानाथ—सुयोग्य वरोकी तो कमी नही है, पर उसके लिए मुझमे सामर्थ्य भी तो हो ? सुमनके लिए क्या मैंने कुछ कम दौड़-धूप की थी ?

गजानन्द—सुयोग्य वर मिलनेके लिए आपको कितने रुपयोकी आवश्यकता है ?

उमानाथ—एक हजार तो दहेज ही माँगते है और सब खर्च अलग रहा।

गजा०—आप विवाह तै कर लीजिये। एक हजार रुपयेका प्रबन्ध ईश्वर चाहेगे तो मै कर दूगा। यह भेष धारण करके अब मुझे ज्ञात हो रहा है कि मै प्राणियोका बहुत उपकार कर सकता हूँ।

उमानाथ—दो चार दिनमें आपके ही घरपर आपसे मिलूगा।

नाव आ गई। दोनों नावपर बैठे। गजानन्द तो मल्लाहोसे बात करने लगे, लेकिन उमानाथ चिन्तासागरमें डूबे हुए थे। उनका मन कह रहा था कि सुमनका सर्वनाश मेरे ही कारण हुआ।

२६

पण्डित उमानाथ सदनसिंहका फलदान चढ़ा आये हैं। उन्होंने जान्हवीसे गजानन्दकी सहायताकी चर्चा नहीं की थी। डरते थे कि कहीं वह इन रुपयोंको अपनी लडकियोंके विवाहके लिए रख छोड़नेपर जिद्द न करने लगे। जान्हवीपर उनके उपदेशका कुछ असर न होता था, उसके सामने वह उसकी हाँ-में-हाँ मिलानेपर मजबूर हो जाते थे।

उन्होंने एक हजार रुपयेके दहेजपर विवाह ठीक किया था। पर अब इस चिन्तामें पडे हुए थे कि वरातके लिए खर्चका क्या प्रबन्ध होगा। कमसे-कम एक हजार रुपयेकी और जरूरत थी। इसके मिलनेका उन्हें कोई उपाय न सूझता था। हाँ, उन्हें इस विचारसे हर्ष होता था कि शान्ताका विवाह अच्छे घरमें होगा, वह सुखसे रहेगी और गगाजलीकी आत्मा मेरे इस कामसे प्रसन्न होगी।

अन्तमें उन्होंने सोचा, अभी विवाहको तीन महीने हैं। अगर उस समयतक रुपयोंका प्रबन्ध हो गया तो भला ही है। नही तो वरातका झगडा ही तोड़ दूंगा। किसी न किसी बातपर बिगड़ जाऊँगा, बारातवाले आपही नाराज होकर लौट जायँगे। यही न होगा कि मेरी थोडीसी बदनामी होगी, पर विवाह तो हो जायगा, लडकी तो आरामसे रहेगी। मैं यह झगडा ऐसी कुशलतासे करूँगा कि सारा दोष बारातियोंपर आवे।

पण्डित कृष्णचन्द्र को जेलखानेसे छूटकर आये हुए एक सप्ताह बीत गया था; लेकिन अतीतके विवाहके सम्बन्धमें उमानाथको बातचीत करनेका अवसर ही न मिला था। वह कृष्णचन्द्रके सम्मुख जाते हुए लजाते थे। कृष्णचन्द्रके स्वभावमें अब एक बड़ा अन्तर दिखाई देता था। उनमें गम्भीरताकी जगह एक उद्दण्डता आ गई थी और सकोच नामको भी न रहा था। उनका शरीर क्षीण हो गया, पर उसमें एक अद्भुत शक्ति भरी हुई मालूम होती थी, वे रातको बार-बार दीर्घ नि:श्वास लेकर 'हाय! हाय!' कहते सुनाई देते थे। आधी रातको चारों ओर नीरवता छाई हुई

रहती थी, वे अपनी चारपाईपर करवटें बदल-बदलकर यह गीत गाया करते —

अगिया लागी सुन्दर वन जरि गयो ।

कभी-कभी यह गीत गाते—

लकडी जल कोयला भई और कोयला जल भई राख ।
मैं पापिन ऐसी जली कि कोयला भई न राख !

उनके नेत्रोंमें एक प्रकारकी चञ्चलता दीख पड़ती थी । जान्हवी उनके सामने खड़ी न हो सकती, उसे उनसे भय लगता था ।

जाड़ेके दिनमे कृषकोंकी स्त्रियाँ हाटमे काम करने जाया करती थी । कृष्णचन्द्र भी हाटकी ओर निकल जाते और वहाँ स्त्रियोसे दिल्लगी किया करते । ससुरालके नाते उन्हे स्त्रियोंसे हँसने बोलनेका पद था, पर कृष्ण-चन्द्रकी वाते ऐसी हास्यपूर्ण और उनकी चितवनें ऐसी कुचेष्टापूर्ण होती थी कि स्त्रियाँ लज्जासे मुह छिपा लेती और आकर जान्हवीसे उलाहने देती । वास्तवमें कृष्णचन्द्र कामसन्तापसे जले जाते थे ।

अमोलामे कितने ही सुशिक्षित सज्जन थे । कृष्णचन्द्र उनके समाजमें न वैठते । वे नित्य सन्ध्या समय नीच जातिके आदमियोके साथ चरसकी दम लगाते दिखाई देते थे । उस समय मण्डलीमे वैठे हुए वे अपने जेलके अनुभव वर्णन किया करते । वहाँ उनके कंठसे अश्लील वातोंकी धारा वहने लगती थी ।

उमानाथ अपने गाँवमे सर्वमान्य थे, वे वहनोईके इन दुष्कृत्योको देख-देखकर कट जाते और ईश्वरसे मनाते कि किसी प्रकार ये यहाँसे चले जायँ ।

और तो और, शान्ताको भी अब अपने पिताके सामने आते हुए भय और सकोच होता था । गाँवकी स्त्रियाँ जब जान्हवीसे कृष्णचन्द्रकी करतूतोंकी निन्दा करने लगतीं तो शान्ताको अत्यन्त दुःख होता था । उसकी समझमें न आता था कि पिताजीको क्या हो गया है । यह कैसे गम्भीर, कैसे

२६

पण्डित उमानाथ सदनसिंहका फलदान चढ़ा आये हैं। उन्होंने जान्हवीसे गजानन्दकी सहायताकी चर्चा नहीं की थी। डरते थे कि कहीं वह इन रुपयोंको अपनी लडकियोंके विवाहके लिए रख छोडनेपर जिद्द न करने लगे। जान्हवीपर उनके उपदेशका कुछ असर न होता था, उसके सामने वह उसकी हाँ-में-हाँ मिलानेपर मजबूर हो जाते थे।

उन्होंने एक हजार रुपयेके दहेजपर विवाह ठीक किया था। पर अब इस चिन्तामे पड़े हुए थे कि बरातके लिए खर्चका क्या प्रबन्ध होगा। कमसे-कम एक हजार रुपयेकी और जरूरत थी। इसके मिलनेका उन्हें कोई उपाय न सूझता था। हाँ, उन्हें इस विचारसे हर्ष होता था कि शान्ताका विवाह अच्छे घरमें होगा, वह सुखसे रहेगी और गंगाजलीकी आत्मा मेरे इस कामसे प्रसन्न होगी।

अन्तमें उन्होंने सोचा, अभी विवाहको तीन महीने हैं। अगर उस समयतक रुपयोंका प्रबन्ध हो गया तो भला ही है। नहीं तो बरातका झगड़ा ही तोड दूगा। किसी न किसी बातपर बिगड़ जाऊँगा, बारातवाले आपही नाराज होकर लौट जायँगे। यही न होगा कि मेरी थोडीसी बदनामी होगी, पर विवाह तो हो जायगा, लडकी तो आरामसे रहेगी। मैं यह झगड़ा ऐसी कुशलतासे करूँगा कि सारा दोष बारातियोंपर आवे।

पण्डित कृष्णचन्द्र को जेलखानेसे छूटकर आये हुए एक सप्ताह बीत गया था; लेकिन अतीतक विवाहके सम्बन्धमें उमानाथको बातचीत करने का अवसर ही न मिला था। वह कृष्णचन्द्रके सम्मुख जाते हुए लजाते थे। कृष्णचन्द्रके स्वभावमें अब एक बड़ा अन्तर दिखाई देता था। उनमें गम्भीरताकी जगह एक उद्दण्डता आ गई थी और सकोच नामको भी न रहा था। उनका शरीर क्षीण हो गया, पर उसमें एक अद्भुत शक्ति भरी हुई मालूम होती थी, वे रातको बार-बार दीर्घ निःश्वास लेकर 'हाय! हाय!' कहते सुनाई देते थे। आधी रातको चारो ओर नीरवता छाई हुई

रहती थी, वे अपनी चारपाईपर करवटे बदल-बदलकर यह गीत गाया करते —

अगिया लागी सुन्दर बन जरि गयो ।

कभी-कभी यह गीत गाते—

लकड़ी जल कोयला भई और कोयला जल भई राख ।
मै पापिन ऐसी जली कि कोयला भई न राख ।

उनके नेत्रोंमे एक प्रकारकी चञ्चलता दीख पड़ती थी । जान्हवी उनके सामने खड़ी न हो सकती, उसे उनसे भय लगता था ।

जाड़ेके दिनमे कृषकोकी स्त्रियाँ हाटमे काम करने जाया करती थी । कृष्णचन्द्र भी हाटकी ओर निकल जाते और वहाँ स्त्रियोसे दिल्लगी किया करते । ससुरालके नाते उन्हे स्त्रियोसे हँसने बोलनेका पद था, पर कृष्णचन्द्रकी बाते ऐसी हास्यपूर्ण और उनकी चितवने ऐसी कुचेष्टापूर्ण होती थी कि स्त्रियाँ लज्जासे मुह छिपा लेती और आकर जान्हवीसे उलाहने देती । वास्तवमे कृष्णचन्द्र कामसन्तापसे जले जाते थे ।

अमोलामे कितने ही सुशिक्षित सज्जन थे । कृष्णचन्द्र उनके समाजमें न बैठते । वे नित्य सन्ध्या समय नीच जातिके आदमियोके साथ चरसकी दम लगाते दिखाई देते थे । उस समय मण्डलीमे बैठे हुए वे अपने जेलके अनुभव वर्णन किया करते । वहाँ उनके कंठसे अश्लील बातोकी धारा बहने लगती थी ।

उमानाथ अपने गाँवमे सर्वमान्य थे, वे बहनोईके इन दुष्कृत्योको देख-देखकर कट जाते और ईश्वरसे मनाते कि किसी प्रकार ये यहाँसे चले जायँ ।

और तो और, शान्ताको भी अब अपने पिताके सामने आते हुए भय और संकोच होता था । गाँवकी स्त्रियाँ जब जान्हवीसे कृष्णचन्द्रकी करतूतोंकी निन्दा करनें लगती तो शान्ताको अत्यन्त दु.ख होता था । उसकी समझमे न आता था कि पिताजीको क्या हो गया है । यह कैसे गम्भीर, कैसे

विचारशील, कैसे दयाशील, कैसे सच्चरित्र मनुष्य थे। यह काया-पलट कैसे हो गयी? शरीर तो वही है पर वह आत्मा कहाँ गई?

इस तरह एक मास बीत गया। उमानाथ मनमें झुंझलाते कि इन्हीकी लडकीका विवाह होनेवाला है और ये ऐसे निश्चिन्त बैठे है तो मुझीको क्या पडी है कि व्यर्थ हैरानीमें पड़ूं। यह तो नही होता कि जाकर कही चार पैसे कमाने का उपाय करें, उलटे अपने साथ-साथ मुझे भी खराब कर रहे है।

२७

एक रोज उमानाथने कृष्णचन्द्रके सहचरोको धमकाकर कहा, अब तुम लोगोंको उनके साथ बैठेकर चरस पीते देखा तो तुम्हारी कुशल नही। एक-एककी बुरी तरह खबर लूगा। उमानाथका रोब सारे गाँवपर छाया हुआ था। वे सबके सब डर गये। दूसरे दिन जब कृष्णचन्द्र उनके पास गए तो उन्होंने कहा, महाराज, आप यहाँ न आया कीजिये। हमें पण्डित उमानाथके कोपमें न डालिये। कही कोई मामला खडा कर दें तो हम बिना मारे ही मर जायँ।

कृष्णचन्द्र क्रोधमें भरे हुए उमानाथके पास आये और बोले, मालूम होता है, तुम्हें मेरा यहाँ रहना अखरने लगा।

उमानाथ—आपका घर है, आप जबतक चाहें रहें, पर मैं यह चाहता हूँ कि नीच आदमियोके साथ बैठकर आप मेरी और अपनी मर्यादाको भंग न करें।

कृष्णचन्द्र—तो किसके साथ बैठूं? यहाँ जितने भले आदमी हैं, उनमे कौन मेरे साथ बैठना चाहता है? सबके सब मुझे तुच्छ दृष्टिसे देखते है। यह मेरे लिए असहय है। तुम इनमेंसे किसीको बता सकते हो जो पूर्ण धर्मका अवतार हो। सबके सब दगाबाज, दीन किसानोका रक्त चूसनेवाले, व्यभिचारी है। मैं अपनेको उनसे नीच नही समझता। मै अपने कियेका फल भोग आया हूँ, वे अभीतक बचे हुए है। मुझमें और उनमें केवल इतना ही फर्क है। वह एक पापको छिपानेके लिए और भी कितने पाप किया करते

है। इस विचारसे वह मुझसे वडे पातकी है। ऐसे वगुलाभक्तोके सामने मै दीन वनकर नही जा सकता। मै उनके साथ वैठता हूँ जो इस अवस्थामें भी मेरा आदर करते है, जो अपनेको मुझसे श्रेष्ठ नही समझते, जो कौए होकर हंस वननेकी चेष्टा नही करते! अगर मेरे इस व्यवहारसे तुम्हारी इज्जतमे वट्टा लगता है तो मै जवरदस्ती तुम्हारे घर नही रहना चाहता।

उमानाथ—मेरा ईश्वर साक्षी है, मैने इस नीयतसे उन आदमियोंको आपके साथ वैठनेसे नही मना किया था। आप जानते है कि मेरा सरकारी अधिकारियोसे प्रायः संसर्ग रहता है, आपके इस व्यवहारसे मुझे उनके सामने आँखे नीची करनी पडती है।

कृष्ण—तो तुम उन अधिकारियोसे कह दो कि कृष्णचन्द्र कितना ही गया गुजरा है तो भी उनसे अच्छा है। मै भी कभी अधिकारी रहा हूँ और अधिकारियोके आचार व्यवहारका कुछ ज्ञान रखता हूँ। वे सव चोर है। कमीने, चोर, पापी और अधर्मियोका उपदेश कृष्णचन्द्र नहीं लेना चाहता।

उमानाथ—आपको अधिकारियोंकी कोई परवाह न हो, लेकिन मेरी तो जीविका उन्हीकी कृपादृष्टिपर निर्भर है। मै उनकी कैसे उपेक्षा कर सकता हूँ? आपने तो थानेदारी की है। क्या आप नही जानते कि यहाँका थानेदार आपकी निगरानी करता है? वह आपको दुर्जनोके संग देखेगा तो अवश्य इसकी रिपोर्ट करेगा और आपके साथ मेरा भी सर्वनाश हो जायगा। ये लोग किसके मित्र होते है?

कृष्ण—यहाँका थानेदार कौन है?

उमानाथ—सैयद मसऊद आलम।

कृष्ण—अच्छा, वही धूर्त्त, सारे जमानेका वेईमान, छटा हुआ वदमाश वह मेरे सामने हेड कान्स्टेविल रह चुका है और एक वार मैने ही उसे जेलसे वचाया था। अवकी उसे यहाँ आने दो, ऐसी खवर लूं कि वह भी याद करे।

उमानाथ—अगर आपको यह उपद्रव करना है तो कृपा करके मुझे अपने साथ न समेटिये। आपका तो कुछ न विगडेगा, मै पिस जाऊँगा।

कृष्ण—इसीलिए कि तुम इज्जतवाले हो और मेरा कोई ठिकाना नही। मित्र, क्यों मुह खुलवाते हो? धर्मका स्वांग भरकर क्यों डीग मारते हो? थानेदारोंकी दलाली करके भी तुम्हें इज्जतका घमण्ड है?

उमानाथ—मैं अधम पापी सही, पर आपके साथ मैंने जो सलूक किये उन्हें देखते हुए आपके मुहमे ये बातें न निकलनी चाहिए।

कृष्ण—तुमने मेरे साथ वह सलूक किया कि मेरा घर चौपट कर दिया। सलूकका नाम लेते हुए तुम्हें लज्जा नही आती? तुम्हारे सलूकका बखान यहाँ अच्छी तरह सुन चुका। तुमने मेरी स्त्रीको मारा, मेरी एक लड़कीको न जाने किस लम्पटके गले बाँध दिया और दूसरी लड़कीसे मजदूरिनकी तरह काम ले रहे हो। मूर्ख स्त्रीको झाँसा देकर मुकदमा लड़नेके बहानेसे सब रुपये उड़ा लिये और तब अपने घर लाकर उसकी दुर्गति की। आज अपने सलूककी शेखी बघारते हो!

अभिमानी मनुष्यको कृतघ्नतासे जितना दु.ख होता है उतना और किसी बातसे नही होता। वह चाहे अपने उपकारोके लिए कृतज्ञताका भूखा न हो, चाहे उसने नेकी करके दरिया होमें डाल दी हो, पर उपकारका विचार करके उसको अत्यन्त गौरवका आनन्द प्राप्त होता है। उमानाथने सोचा, ससार कितना कुटिल है। मै इनके लिए महीनो कचहरी दरबारके चक्कर लगाता रहा, वकीलोंकी कैसी-कैसी खुशामदें की, कर्मचारियोंके कैसे-कैसे नखरे सहे, निजका सैकड़ों रुपया फूक दिया, उसका यह यश मिल रहा है! तीन-तीन प्राणियोंका बरसो पालन-पोषण किया, सुमनके विवाहके लिए महीनो खाक छानी और शान्ताके विवाहके लिए महीनोसे घर घाट एक किये हूँ, दौड़ते-दौड़ते पैरोंमें छाले पड़ गये, रुपये-पैसेकी चिन्तामे शरीर घुल गया और इसका यह फल! हा! कुटिल ससार! यहाँ भलाई करनेमें भी धब्बा लग जाता है। यह सोचकर उनकी आँखें डबडबा आई। बोले, भाई साहब, मैंने जो कुछ किया, वह भला ही समझकर किया, पर मेरे हाथोमें यश नही है। ईश्वरकी यही इच्छा है कि मेरा किया-कराया मारा

मिट्टीमे मिल जाय तो यही सही। मैंने आपका सर्वस्व लूट लिया, खा-पी डाला अब जो सजा चाहे दीजिये, और क्या कहूँ ?

उमानाथ यह कहना चाहते थे कि अब तो जो कुछ हो गया वह हो गया; अब मेरा पिण्ड छोड़ो। शान्ताके विवाहका प्रबन्ध करो, पर डरे कि इस समय क्रोधमें कही यह सचमुच शान्ताको लेकर चले न जायँ। इसलिए गम खा जाना ही उचित समझा। निर्बल क्रोध उदार हृदयमे करुणाका भाव उत्पन्न कर देता है। किसी भिक्षुकके मुंहसे गाली खाकर सज्जन मनुष्य चुप रहनेके सिवा और क्या कर सकता है ?

उमानाथकी सहिष्णुताने कृष्णचन्द्रको भी शान्त किया, पर दोनोमे बातचीत न हो सकी। दोनो अपनी अपनी जगहपर विचारमे डूबे-बैठे थे, जैसे दो कुत्ते लड़नेके बाद आमने-सामने बैठे रहते है। उमानाथ सोचते थे कि बहुत अच्छा हुआ, जो मै चुप साध गया, नही तो संसार मुझीको बदनाम करता। कृष्णचन्द्र सोचते थे कि मैंने बुरा किया, जो ये गडे मुरदे उखाडे। अनुचित क्रोधमें सोई हुई आत्माको जगानेका विशेष अनुराग होता है। कृष्णचन्द्रको अपना कर्त्तव्य दिखाई देने लगा। अनुचित क्रोधने अकर्मण्यता की निद्रा भग कर दी। सन्ध्या समय कृष्णचन्द्रने उमानाथसे पूछा, शान्ताका विवाह तो तुमने ठीक किया है न?

उमानाथ—हाँ, चुनारमें, पण्डित मदनसिहके लडकेसे।

कृष्ण—वह तो कोई बड़े आदमी मालूम होते है। कितना दहेज ठहरा है।

उमानाथ—एक हजार।

कृष्ण—इतना ही और ऊपरसे लगेगा ?

उमा—हाँ और क्या ?

कृष्णचन्द्र स्तब्ध हो गये। पूछा, रुपयोंका प्रबन्ध कैसे होगा ?

उमा—ईश्वर किसी तरह पार लगावेगे ही। एक हजार मेरे पास है, केवल एक हजारकी और चिन्ता है।

कृष्णचन्द्रने अत्यन्त ग्लानिपूर्वक कहा, मेरी दशा तो तुम देख ही रहे हो । इतना कहते-कहते उनकी आँखोसे आँसू टपक पडे ।

उमा—आप निश्चिन्त रहिये मै सब कुछ कर लूगा ।

कृष्ण—परमात्मा तुम्हे इसका शुभ फल देंगे । भैया, मुझसे जो अविनय हुई है उसका तुम बुरा न मानना । अभी मै आपेमे नही हूँ, इस कठिन यन्त्रणाने मुझे पागल कर दिया है । उसने मेरी आत्माको पीस डाला है । मै आत्माहीन मनुष्य हूँ । उस नरकमे पड़कर यदि देवता भी राक्षस हो जायँ तो आश्चर्य नही । मुझमे इतनी सामर्थ्य कहाँ थी कि मै इतने भारी बोझको सम्हालता । तुमने मुझे उबार दिया, मेरी नाव पार लगा दी, यह शोभा नही देता कि तुम्हारे ऊपर इतने बडे कार्यका भार रखकर मै आलसी बना बैठा रहूँ । मुझे भी आज्ञा दो कि कही चलकर चार पैसे कमानेका उपाय करूँ । मै कल बनारस जाऊँगा । यो मेरे पहलेके जान-पहचानके तो कई आदमी है, पर उनके यहाँ नही ठहरना चाहता । सुमनका घर किस मुहल्लेमें है ।

उमानाथ का मुख पीला पड़ गया । बोले, विवाहतक तो आप यही रहिये । फिर जहाँ इच्छा हो चले जाइयेगा ।

कृष्णचन्द्र—नही कल मुझे जाने दो, विवाहसे एक सप्ताह पहिले आ जाऊँगा । दो चार दिन सुमनके यहाँ ठहरकर कोई नौकरी ढूढ लूगा । किस मुहल्लमें रहती है ?

उमा—मुझे ठीक याद नही है, इधर बहुत दिनोसे मै उधर नही गया । शहरवालोका क्या ठिकाना ? रोज घर बदला करते है । मालूम नही अब किस मुहल्लेमे हो ।

रातको भोजनके समय कृष्णचन्द्रने शान्तासे सुमनका पता पूछा । शान्ता उमानाथके सकेतको न देख सकी, उसने पूरा पता बता दिया ।

२८

शहरकी म्युनिसिपैलिटीमें कुल १८ सभासद थे । उनमें ८ मुसलमान

थे और १० हिन्दू। सुशिक्षित मेम्बरोंकी संख्या अधिक थी, इसलिए शर्माजी को विश्वास था कि म्युनिसिपैलिटीमे वेश्याओको नगरसे बाहर निकाल देनेका प्रस्ताव स्वीकार हो जायगा। वे सब सभासदोसे मिल चुके थे और इस विषयमे उनकी शकाओंका समाधान कर चुके थे, लकिन मेम्बरोमे कुछ ऐस सज्जन भी थे जिनकी ओरसे घोर विरोध होनेका भय था। ये लोग वडे व्यापारी, धनवान् और प्रभावशाली मनुष्य थे। इसलिए शर्माजीको यह भय भी थी कि कही शेष मेम्बर उनके दबावमे न आ जायँ। हिन्दुओमे विरोधीदलके नेता सेठ वलभद्रदास थे और मुसलमानोमे हाजी हाशिम। जवतक विट्ठलदास इस आन्दोलन के कर्त्ताधर्त्ता थे तबतक इन लोगोने उसकी ओर कुछ ध्यान न दिया था, लेकिन जबसे पद्मसिंह और म्युनिसिपैलिटीके अन्य कई मेम्बर इस आन्दोलनमे सम्मिलित हो गये थे, तबसे सेठजी और हाजी साहबके पेटमे चूहे दौड़ रहे थे। उन्हे मालूम हो गया था कि शीघ्र ही यह मन्तव्य सभामे उपस्थित होगा, इसलिए दोनो महाशय अपने पक्षके स्थिर करनेमें तत्पर हो रहे थे। पहले हाजी साहबने मुसलमान मेम्बरोको एकत्र किया। हाजी साहबका जनतापर बडा प्रभाव था और वह शहरके समस्त मुसलमानोके नेता समझे जाते थे। शेष ७ मेम्बरोमे मौलाना तेग अली एक इमामबाडेके वली थे। मुन्शी अवुलवफा इत्र और तेलके कारखानेके मालिक थे। वड़े-बडे शहरोमे उनकी कई दूकानें थी। मुन्शी अवदुल्लतीफ एक बडे जमीदार थे, लेकिन बहुधा शहरमे रहते थे। कवितासे प्रेम था और स्वय अच्छे कवि थे। शाकिरबेग और शरीफहसन वकील थे। उनके सामाजिक सिद्धान्त बहुत उन्नत थे। सैयद शफकतअली पेन्शनर डिप्टी-कलक्टर थे। और खॉ साहब शोहरत खॉ प्रसिद्ध हकीम थे। ये दोनो महाशय सभा समाजोसे प्राय पृथक रहते थे, किन्तु उनमे उदारता और विचारशीलताकी कमी न थी। दोनो धार्मिक प्रवृत्तिके मनुष्य थे। समाजमें उनका वड़ा सम्मान था।

हाजी हाशिम बोले, विरादराने वतनकी यह नई चाल आप लोगोने देखी ? वल्लाह इनको सूझती खूब है ! वगली घूसे मारना कोई इनसे सीख

ख्वानसे मीठे लुकमे खाते है, खुशबूदार खमीरेके कश लगाते हैं और उनके खासदानसे मुअत्तर बीड़े उडाते है। बस, इसलामकी मजहबी कूवत इसलाह यहींतक खत्म हो जाती है। अपने बुरे फेलोंपर नादिम होना इंसानी खासा है। ये गुमराह औरतें पेशतर नही तो शराबका नशा उतरनेके बाद जरूर अपनी हालतपर अफसोस करती हैं, लेकिन उस वक्त उनका पछताना बेसूद होता है। उनके गुजरानीकी इसके सिवा और कोई सूरत नही रहती कि वे अपनी लडकियोसे दूसरोंको दामे मुहब्बतमे फँसाएँ और इस तरह यह सिलसिला हमेशा जारी रहता है। अगर उन लड़कियोकी जायज तौरपर शादी हो सके तो, और इसके साथ ही उनकी परवरिशकी सूरत भी निकल आये, तो मेरे ख्यालमे ज्यादा नही तो ७५ फीसदी तवायफें इसे खुशीसे कबूल कर ले। हम चाहे खुद कितने ही गुनहगार हों, पर अपनी औलादको हम नेक और रास्तबाज देखनेकी तमन्ना रखते है। तवायफोंको शहरसे खारिज कर देनेसे उनकी इसलाह नही हो सकती। इस खयालको सामने रखकर तो मैं इबराजकी तहरीकपर एतराज करनेकी जुरअत कर सकता हूँ। पर पोलिटिकल मफादकी बिनापर मैं उसकी मुखालिफत नही कर सकता। मैं किसी फेलको कौमी ख्यालसे पसन्दीदा नही समझता जो इखलाकी तौरपर पसन्दीदा न हो।

तेगअली—बन्दानवाज, सभलकर बातें कीजिये। ऐसा न हो कि आपपर कुफ्रका फतवा सादिर हो जाय। आजकल पोलिटिकल मफादका जोर है, हक और इन्साफका नाम न लीजिये। अगर आप मुदर्रिस हैं तो हिन्दू लड़कोंको फेल कीजिये। तहसीलदार हैं तो हिन्दुओंपर टैक्स लगाइये मजिस्ट्रेट हैं तो हिन्दुओंको सजाएँ दीजिये। सब इन्स्पेक्टर पुलिस हैं तो, हिन्दुओंपर झूठे मुकदमे दायर कीजिये, तहकीकात करने जाइये तो हिन्दुओं के बयान गलत लिखिये, अगर आप चोर हैं तो किसी हिन्दूके घर डाका डालिये, अगर आपको हुस्न या इश्कका खब्त है तो किसी हिन्दू नाजनीन-को उडाइये, तब आप कौमके खादिम, कौमके मुहसिन, कौमी किश्तीके नाखुदा सब कुछ है।

हाजीहाशिम बुडबुडाये, मुन्शी अबुलवफाके तेवरोंपर बल पड गये। तेगअलीकी तलवारने उन्हे घायल कर दिया। अबुलवफा कुछ कहना ही चाहते थे कि शाकिरबेग बोल उठे, भाई साहब, यह तान तजका मौका नहीं। हम अपने घरमे बैठे हुए एक अमरके बारेमे दोस्ताना मशाविरा कर रहे है। जवाने तेंज मसलेहतके हकमे जहरे कातिल है। मै शाहिदान नन्नाजको निजाम तमद्दनमे बिल्कुल बेकार या मायाए शर नही समझता। आप जब कोई मकान तामीर करते है तो उसमे बदरौर बनाना जरूरी ख्याल करते है। अगर बदरोर न हो तो चन्द दिनोमे दीवारोंकी बुनियादे हिल जायँ। इस फिरकेको सोसाइटीका बदरौर समझना चाहिए और जिस तरह बदरौर मकानके नुमाया हिस्सेमे नही होती, बल्कि निगाहसे पोशीदा एक गोशेमे बनाई जाती है उसी तरह इस फिरकेको शहरके पुरफिजा मुकामातसे हटाकर किसी गोशेमे आबाद करना चाहिए।

मुन्शी अबुलवफा पहलेके वाक्य सुनकर खुश हो गये थे, पर नालीकी उपमापर उनका मुह लटक गया। हाजीहाशिमने नैराश्यसे अब्दुल्लतीफकी ओर देखा, जो अबतक चुपचाप बैठे हुए थे और बोले, जनाब, कुछ आप भी फरमाते है। दोस्तीके बहावमे आप भी तो नही बह गये?

अब्दुल्लतीफ बोले, जनाब, रिन्दाको न इत्तहादसे दोस्ती न मुखालिफतसे दुश्मनी। अपना मुशरिब तो सुलहेकुल है। मैअभी यही तै नही कर सका कि आलमे बेदारीमे हूँ या ख्वाबमे। बड़े-बडे आलमोको एक बेसिर पैरकी बातकी ताईदमे जमी और आसमानके कुलाबे मिलाते देखता हूँ। क्योंकर बावर करूँ कि बेदार हूँ? साबुन, चमड़े और मिट्टीके तेलकी दूकानोंसे आपको कोई शिकायत नही। कपड़े, बरतन आदवियातकी दूकानें चौकमे है, आप उनको मुतलक बेमौका नही समझते। क्या आपकी निगाहोमे हुस्नकी इतनी भी वकअत नही? और क्या यह जरूरी है कि इसे किसी तग तारीक कूचेमे बद कर दिया जाय? क्या वह बाग-बाग कहलानेका मुस्तहक है जहाँ सरोंकी कतारें एक गोशेमे हों, बेले और गुलाबके तख्ते दूसरे गोशेमे और रविशोंके दोनो तरफ नीम और कटहलके दरख्त हों, बस्तमे पीपल ठूठ और

किनारे ववूल की कलमें ?—चील और कौए दोनों तरफ तख्तोंपर बैठे अपना राग अलापते हों, और वुलवुले किसी गोशए तारीकमें दर्दके तराने गाती हों। मैं इस तहरीकको सख्त मुखालिफत करता हूँ। मैं उसे इस काविल भी नही समझता कि उसपर साथ मतानतके साथ वहस की जाय।

हाजी हाशिम मुस्कराये, अवुलवफाकी आँखे खुशीसे चमकने लगी। अन्य महाशयोंने दार्शनिक मुस्कानके साथ यह हास्यपूर्ण वक्तृता सुनी, पर तेगअली इतने सहनशील न थे। तीव्र भावसे वोले, क्यों गरीव परवर, अवकी वोर्डमें यह तजवीज क्यो न पेश की जाय कि म्युनिसिपैलिटी ऐन चौकमें खास एहतमामके साथ मीनावाजार आरास्ता करे और जो हजरात इस वाजारकी सैरको तशरीफ ले जाय उन्हे गवर्नमेन्टकी जानिवसे खुशनूदी मिजाजका परवाना अदा किया जाय ? मेरे ख्यालसे इस तजवीजकी ताइद करनेवाले वहुत निकल आयेंगे और इस तजवीजके मुहर्रिरका नाम हमेशाके लिये जिन्दा हो जायगा। उसके वकालतके वाद उसके मजारपर उर्स होंगे और वह अपने गोशये लहदमे पडा हुआ हुस्नकी वहार लूटेगा और दलपजीर नजमे सुनेगा।

मुन्शी अवदुल्लतीफका मुँह लाल हो गया। हाजीहाशिमने देखा कि वात वढ़ी जाती है, तो वोले, मैं अव तक सुना करता था कि उसूल भी कोई चीज है मगर आज मालूम हुआ कि वह महज एक वहम है। अभी वहुत दिन नही हुए कि आप ही लोग इस्लामी वजाएफका डेपुटेशन लेकर गए थे, मुसलमान कैदियोंके मजहवी तसकीनकी तजवीजें कर रहे थे और अगर मेरा हाफिजा गलती नही करता तो आप ही लोग उन मौकोंपर पेश नजर आते थे। मगर आज एकाएक यह इनकलाव नजर आता है। खैर आपका तलव्वुन आपको मुवारक रहे, वन्दा इतना सहजुलयकीन नही है। मैंने जिंदगीका यह उसूल वना लिया है कि विरादराने वतनकी हरएक तजवीजकी मुखालिफत करूँगा, क्योंकि मुझे उससे किसी वेहवूदकी तववको नही है।

अवुलवफाने कहा, अलाहाजा मुझे रातको आफतावका यकीन हो सकता है, पर हिन्दुओंकी नेकनीयतपर यकीन नही हो सकता।

सैयद शफकत अली बोले, हाजी साहब, आपने हमलोगोको जमानासाज और बेउसूल समझनेमे मतानतसे काम नही लिया। हमारा उसूल जो तब था वह अब भी है और वही हमेशा रहेगा और वह है इसलामी वकारको कायम करना और हरएक जायज तरीकेसे बिरादरने मिल्लतके बेहबूदकी कोशिश करना। अगर हमारे फायदेमे बिरादराने वतनका नुकसान हो तो हमको इसकी परवाह नही। मगर जिस तजवीजसे उनके साथ हमको भी फायदा पहुँचता है और उनसे किसी तरह कम नही, उसकी मुखालिफत करना हमारे इमकानसे बाहर है। हम मुखालिफतके लिये मुखालिफत नही कर सकते।

रात अधिक जा चुकी थी। सभा समाप्त हो गई। इस वार्तालापका कोई विशेष फल न निकला। लोग मनमे जो पक्ष स्थिर करके घरसे आये थे उसी पक्षपर डटे रहे। हाजी हाशिमको अपनी विजयका जो पूर्ण विश्वास था उसमे सन्देह पड़ गया।

२९

इस प्रस्तावके विरोधमे हिन्दू मेम्बरोंको जब मुसलमानोके जलसेका हाल मालूम हुआ तो उनके कान खडे हुए। उन्हे मुसलमानोसे जो आशा थी वह भग हो गई। कुल दस हिन्दू थे। सेठ बलभद्रदास चेयरमैन थे। डाक्टर श्यामाचरण वाइस चेयरमैन। लाला चिम्मनलाल और दीनानाथ तिवारी व्यापारियोके नेता थे। पद्मसिह और रुस्तमभाई वकील थे। रमेशदत्त कालेजके अध्यापक, लाला भगतराम ठेकेदार, प्रभाकरराव हिन्दी पत्र 'जगत' के सपादक और कुँवर अनिरुद्ध बहादुर सिह जिलेके सबसे बड़े जमीदार थे। चौककी दूकानोमे अधिकांश बलभद्रदास और चिम्मनलालकी थी। चावल मंडीमें दीनानाथके कितने ही मकान थे, यह तीनो महाशय इस प्रस्ताव के विपक्षी थे। लाला भगतरामका काम चिम्मनलालकी आर्थिक सहायतासे चलता था। इसलिये उनकी सम्मति भी उन्हीकी ओर थी। प्रभाकरराव, रमेशदत्त, रुस्तमभाई और पद्मसिह इस प्रस्तावके पक्षमे थे।

डाक्टर श्यामाचरण और कुँवर साहबके विषयमे अभी तक कुछ निश्चय नही हो सका था। दोनो पक्ष उनसे सहायताकी आशा रखते थे। उन्हीपर दोनों पक्षोंकी हार-जीत निर्भर थी। पद्मसिंह अभी बारातसे नही लौटे थे। बलभद्रदासने इस अवसरको अपने पक्षमे समर्थनके लिये उपयुक्त समझा और सब हिन्दू मेम्बरोको अपनी सुसज्जित बारहदरीमे निमन्त्रित किया, इसका मुख्य उद्देश्य यह था कि डाक्टर साहब और कुँवर महोदय की सहानुभूति अपने पक्षमे कर लें। प्रभाकरराव मुसलमानोके कट्टर विरोधी थे। वे लोग इस प्रस्तावको हिन्दू मुसलिम विवादका रग देकर प्रभाकररावको भी अपनी ओर खीचना चाहते थे।

दीनानाथ तिवारी बोले, हमारे मुसलमान भाइयोने तो इस विषयमें बडी उदारता दिखाई पर इसमे एक गूढ रहस्य है। उन्होने 'एक पथ-दो काज' वाली चाल चली है। एक ओर तो समाज सुधारकी नेकनामी हाथ आती है दूसरी ओर हिन्दूओको हानि पहुँचानेका एक बहाना मिलता है। ऐसे अवसर से वे कब चूकने वाले थे।

चिम्मनलाल—मुझे पालिटिक्ससे कोई वास्ता नही है और न मै इसके निकट जाता हूँ। लेकिन मुझे यह कहनेमे तनिक भी सकोच नही है कि हमारे मुसलिम भाइयोने हमारी गरदन बुरी तरह पकडी है। चावलमंडी और चौकके अधिकांश मकान हिन्दुओके है, यदि बोर्डने यह स्वीकार कर लिया तो हिन्दुओंका मटियामेट हो जायगा। छिपे छिपे चोट करना कोई मुसलमानोसे सीख ले। अभी बहुत दिन नही बीते कि सूदकी आडमे हिन्दुओपर आक्रमण किया गया था। जब वह चाल पट पड गयी तो यह नया उपाय सोचा। खेद है कि हमारे कुछ हिन्दू भाई उनके हाथोकी कठपुतली बने हुए है। वे नही जानते कि अपने दुस्साहसे अपनी जाति को कितनी हानि पहुचा रहे है।

स्थानीय कौंसिलमे जब सूदका प्रस्ताव उपस्थित था तो प्रभाकररावने उसका घोर विरोध किया था। चिम्मनलालने उसका उल्लेख करके और वर्तमान विषयको आर्थिक दृष्टिकोणसे दिखाकर प्रभाकररावको नियम

विरुद्ध करनेकी चेष्टा की। प्रभाकररावने विवश नेत्रोंसे रुस्तमभाईकी ओर देखा, मानो उनसे कह रहे थे कि मुझे ये लोग ब्रह्मफाँसमे डाल रहे है, आप किसी तरह मेरा उद्धार कीजिये। रुस्तम भाई बड़े निर्भीक, स्पष्टवादी पुरुष थे। वे चिम्मनलालका उत्तर देनेके लिये खड़े हो गये और वोले, मुझे यह देखकर शोक हो रहा है कि आप लोग एक सामाजिक प्रश्नको हिन्दू मुसलमानोके विवादका स्वरूप दे रहे है। सूदके प्रश्नको भी यही रंग देनेकी चेष्टा की गई थी। ऐसे राष्ट्रीय विषयोको विवादग्रस्त बनाने से कुछ हिन्दू साहूकारोंका भला हो जाता है, किन्तु इससे राष्ट्रीयता को जो चोट लगती है उसका अनुमान करना कठिन है। इसमे सन्देह नही कि इस प्रस्तावके स्वीकृत होनेसे हिन्दू साहूकारोको अधिक हानि पहुँचेगी, लेकिन, मुसलमानो-पर भी इसका प्रभाव अवश्य पडेगा। चौक और दालमडीमे मुसलमानोंकी दूकाने कम नही है। हमको प्रतिवाद या विरोधके धुनमें अपने मुसलमान भाइयोंकी नीयतकी सफाई पर सन्देह न करना चाहिये, उन्होने इस विषय मे जो कुछ निश्चय किया है वह सार्वजनिक उपकारके विचार से किया है; अगर हिन्दुओंको इससे अधिक हानि हो रही है तो यह दूसरी वात है। मुझे विश्वास है कि मुसलमानोंकी इससे अधिक हानि होती तव भी उनका यही फैसला होता। अगर आप सच्चे हृदयसे मानते है कि यह प्रस्ताव एक सामाजिक कुप्रथाके सुधारके लिये उठाया गया है तो आपको उसके स्वीकार करनेमे कोई वाधा न होनी चाहिये, चाहे धनकी कितनी ही हानि हो। आचरणके सामने धनका कोई महत्व न होना चाहिये।

प्रभाकररावको धैर्य हुआ। वोले, वस यही मै भी कहनेवाला था, अगर थोडोसी आर्थिक हानिसे एक कुप्रथाका सुधार हो रहा हो तो वह हानि प्रसन्नातासे उठा लेनी चाहिये। आपलोग जानते है कि हमारी गवर्नमेन्टको चीन देशसे अफीमका व्यापार करनेमे कितना लाभ था। १८ करोड़से कुछ अधिक ही होगा। पर चीनमें अफीम खानेकी कुप्रथा मिटानेके लिये सरकारने इतनी भीषण हानि उठानेमे जरा भी आगा-पीछा नही किया।

कुँवर अनिरुद्ध सिंहने प्रभाकरराव की ओर देखते हुए पूछा, महाशय,

है। स्वर्गमें पहुँचनेके लिये कोई सीधा रास्ता नहीं है। वैतरणीका सामना अवश्य करना पड़ेगा। जो लोग समझते हैं कि वे किसी महात्माके आशी-र्वादसे कूदकर स्वर्गमें जा बैठेंगे वह उनसे अधिक हास्यास्पद नहीं हैं जो समझते हैं कि चौकसे वेश्याओंको निकाल देनेसे भारतके सब दुःख दारि-द्रय मिट जायँगे और एक नवीन सूर्यका उदय हो जायगा।

३०

जिस प्रकार कोई आलसी मनुष्य किसीके पुकारनेकी आवाज सुनकर जाग जाता है किन्तु इधर-उधर देखकर फिर निद्रामें मग्न हो जाता है, उसी प्रकार पंडित कृष्णचन्द्र क्रोध और ग्लानिका आवेश शान्त होने पर अपने कर्तव्यको भूल गये। उन्होंने सोचा, मेरे यहाँ रहनेसे उमानाथपर कौनसा बोझ पड़ रहा है। आधा सेर आटा ही तो खाता हूँ या और कुछ। लेकिन उसी दिनसे उन्होंने नीच आदमियोंके साथ बैठकर चरस पीना छोड़ दिया। इतनी-सी बातके लिये चारों ओर मारे-मारे फिरना उन्हें अनुपयुक्त मालूम हुआ। अब वे प्रायः बरामदे ही में बैठे रहते और सामनेसे आने-जाने वाली रमणियोंको घूरते। वे प्रत्येक विषयमें उमानाथकी हाँ-में-हाँ मिलाते। भोजन करते समय सामने जितना आ जाता खा लेते, इच्छा रहनेपर भी कभी कुछ न माँगते। वे उनसे ऐसी कितनी ही बातें ठकुरसुहातीके लिये कहते। उनकी आत्मा निर्बल हो गई थी।

उमानाथ शान्ताके विवाहके सम्बन्धमें जब उनसे कुछ कहते तो वह बड़े सरल भावसे उत्तर देते, भाई तुम चाहो जो करो, इसके तुम्हीं मालिक हो। वह अपने मनको समझाते, जब रुपये इनके लग रहे हैं तो सब काम इन्हींकी इच्छानुसार होने चाहिये।

लेकिन उमानाथ अपने बहनोईकी कठोर बातें न भूले। छालेपर मक्खन लगानेसे एक क्षणके लिये कष्ट कम हो जाता है, किन्तु फिर तापकी वेदना होने लगती है। कृष्णचन्द्रकी आत्मग्लानिसे भरी हुई बातें उमानाथको शीघ्र भूल गई और उनके कठोर शब्द कानोंमें गूंजने लगे। जब वह मौके

गये तो जान्हवीने पूछा, आज लालाजी (कृष्णचन्द्र) तुमसे क्या बिगड़ रहे थे ।

उमानाथने अन्यायपीडित नेत्रोसे कहा, मेरा यश गा रहे थे । कह रहे थे, तुमने मुझे लूट लिया, मेरी स्त्रीको मार डाला, मेरी एक लड़कीको कुए में डाल दिया, दूसरीको दुःख दे रहे हो ।

'तो तुम्हारे मुँहमे जीभ न थी ? कहा होता क्या मै किसीको नेवता देने गया था ? कही तो ठिकाना न था, दरवाजे-दरवाजे ठोकरें खाती फिरती । बकरा जैसे गया, खानेवालेको स्वाद ही न मिला । यहाँ लाज ढोते-ढोते मर मिटे, उसका यह फल ! इतने दिन थानेदारी की, लेकिन गंगाजलीने कभी भूलकर भी एक डिबिया सेन्दुर न भेजा । मेरे सामने कहा होता तो ऐसी ऐसी सुनाती कि दाँत खट्टे हो जाते । दो-दो पहाड सी लड़कियाँ गलेपर सवार कर दी, उस पर बोलनेको मरते है । इनके पीछे फकीर होगये, उसका यह यश है ? अबसे अपना पौरा लेकर क्यों नहीं कही जाते ? काहेको पैरमे मेहदी लगाए बैठे है ।'

'अब तो जानेको कहते है । सुमनका पता भी पूछा था ।'

'तो क्या अब बेटीके सिर पडेगे ? वाहरे बेहया !'

'नहीं ऐसा क्या करेगे, शायद दो-एक दिन वहाँ ठहरेगे ।'

'कहाँकी बात, इनसे अब कुछ न होगा । इनकी आँखोका पानी मर गया, जाके उसीके सिर पडेगे, मगर देख लेना वहाँ एक दिन भी निबाह न होगा ।'

अबतक उमानाथने सुमनके आत्मपतनकी बात जान्हवीसे छिपाई थी । वह जानते थे कि स्त्रियोके पेटमे बात नही पचती । यह किसी न किसीसे अवश्य ही कह देगी और बात फैल जायगी । जब जान्हवीके स्नेह व्यवहारसे वह प्रसन्न होते तो उन्हे उससे सुमनकी कथा कहनेकी बडी तीव्र आकांक्षा होती । हृदयसागरमें तरगे उठने लगती, लेकिन परिणामको सोचकर रुक जाते थे । आज कृष्णचन्द्रकी कृतघ्नता और जान्हवीकी स्नेहपूर्ण बातोंने उमानाथको निशंक कर दिया, पेटमें बात न रुक सकी । जैसे किसी नालीमे

स्त्रियाँ भी मुस्करा मुस्कराकर उनपर नयनोंकी कटार चला रही थी। जान्हवी उदास थी, वह मनमें सोच रही थी कि यह वर मेरी चन्द्राको मिलता तो अच्छा होता। सुभागी यह जाननेके लिये उत्सुक थी कि समधी कौन है। कृष्णचन्द्र सदनके चरणोंकी पूजा कर रहे थे और मनमें शंका कर रहे थे कि यह कौनसा उल्टा रिवाज है। मदनसिंह ध्यान से देख रहे थे कि थालमें कितने रुपये हैं।

बारात जनवासेको चली। रसदका सामान बँटने लगा। चारोओर कोलाहल होने लगा। कोई कहता था, मुझे घी कम मिला, कोई गोहार लगाता था कि मुझे उपले नही दिये गये। लाला बैजनाथ शराबके लिये जिद्द कर रहे थे।

सामान बँट चुका तो लोगोंने उपले जलाये और हाँडियाँ चढाई। धुएँसे गैसका प्रकाश पीला पड गया।

सदन मसनद लगाकर बैठा। महफिल सज गई। काशीके संगीत समाजने श्यामकल्याणकी धुन छेडी।

सहस्त्रो मनुष्य शामियानेके चारो ओर खड़े थे। कुछ लोग मिर्जई पहने, पगड़ी बाँधे फर्शपर बैठे थे, लोग एक दूसरेसे पूछते थे कि डेरे कहाँ है। कोई इस छोलदारीमे झाँकता था, कोई उस छोलदारीमे और कुतूहलसे कहता था, कैसी बारात है कि एक डेरा भी नही, कहाँके कंगले है। यह बडासा शामियाना काहेको खडा कर रक्खा है? मदनसिंह ये बाते सुन-सुनकर मनमे पद्मसिंहपर कुडबुडा रहे थे और पद्मसिंह लज्जा और भयके मारे उनके सामने न आ सकते थे।

इतनेमे लंगोने शामियानेपर पत्थर फेकना शुरु किया। लाला बैज-नाथ उठकर छोलदारीमे भागे। कुछ लोग उपद्रवकारियोको गालियाँ देने लगे। एक हलचलसी मच गयी। कोई इधर भागता, कोई उधर, कोई गाली बकता था, कोई मारपीट करनेपर उतारु था। अकस्मात् एक दीर्घकाय पुरुष, सिर मुडाये, भस्म रमाये हाथमे एक त्रिशूल लिये आकर महफिलमे खडा हो गया। उसके लाल नेत्र दीपकके समान जल रहे थे

और मुख मण्डलमे प्रतिभाकी ज्योति स्फुटित हो रही थी । महफिलमें सन्नाटा छा गया । सब लोग आँखे फाड-फाडकर महात्माकी ओर ताकने लगे । यह साधु कौन है ? कहाँसे आ गया ।

साधुने त्रिशूल ऊँचा किया और तिरस्कारपूर्ण स्वरसे वोला हाँ शोक ! यहाँ कोई नाच नही, कोई वेश्या नही, सब बाबा लोग उदास बैठे है । श्याम-कल्याण की धुन कैसी मनोहर है, पर कोई नहीं सुनता, किसीके कान नही, सब लोग वेश्याका नाच देखना चाहते हैं । या उन्हे नाच दिखाओ या अपने सर तुडाओ । चलो, मैं नाच दिखाऊँ । देवताओंका नाच देखना चाहते हो ? देखो सामने वृक्ष की पत्तियोंपर निर्मल चन्द्रकी किरणे कैसी नाच रही हैं । देखो तालाबमे कमलके फूलपर पानी की बूंदे कैसी नाच रही है ! जंलगमें जाकर देखो मोर पर फैलाये कैसा नाच रहा है । क्यो यह देवताओका नाच पसन्द नही है ? अच्छा चलो पिशाचोंका नाच दिखाऊँ । तुम्हारा पड़ोसी दरिद्र किसान जमीदारके जूते खाकर कैसा नाच रहा है ? तुम्हारे भाइयोके अनाथ वालक क्षुधासे बावले होकर कैसे नाच रहे हैं ? अपने घरमे देखो, तुम्हारी विधवा भावजकी आँखोमे शोक और वेदनाके आँसू कैसे नाच रहे हैं ? क्या यह नाच देखना पसन्द नही ? तो अपने मनमें देखो, कपट और छल कैसा नाच रहा है ? सारा संसार नृत्यशाला है उसमे लोग अपना-अपना नाच नाच रहे है । क्या यह देखने के लिये तुम्हारी आँखें नही हैं ? आओ, मैं तुम्हे शकर का तांडव नृत्य दिखाऊँ । किन्तु तुम वह नृत्य देखने योग्य नही हो । तुम्हारी काम तृष्णाको इस नाच का क्या आनन्द मिलेगा ? हा ! अज्ञानी मूर्तियो ! हा ! विषयभोगके सेवको ! तुम्हे नाचका नाम लेते लाज नही आती ! अपना कल्याण चाहते हो तो इस रीतिको मिटाओ । इस कुवासनाको तजो, वेश्या-प्रेमका त्याग करो ।

सब लोग मूर्तिवत् बैठे महात्माकी उन्मत्त वाणी सुन रहे थे कि इतनेमे वह अदृश्य हो गये और सामनेवाले आमके वृक्षोकी आड़से उनके मधुर गान की ध्वनि सुनाई देने लगी । धीरे-धीरे वह भी अन्धकारमे विलीन हो गयी । जैसे रात्रिको चिन्तारूपी नाव निद्रासागर मे विलीन हो जाती है ।

नेत्र ज्योतिहीन हो गये। बोले, महाराज ... .और उनके मुखसे कुछ न निकला।

मदनसिंहने गरजकर कहा, स्पष्ट क्यो नही वोलते ? यह बात सच है या झूठ ?

उमानाथने फिर उत्तर देना चाहा, किन्तु 'महाराज' के सिवा और कुछ न कह सके।

मदनसिंहको अब कोई सन्देह न रहा। क्रोधकी अग्नि प्रचंड हो गई। आँखोसे ज्वाला निकलने लगी। शरीर काँपने लगा। उमानाथकी ओर आग्नेय दृष्टिसे ताककर बोले, अब अपना कल्याण चाहते हो तो मेरे सामनेसे हट जाओ। धूर्त्त, दगाबाज, पाखण्डी कहीका। तिलक लगाकर पण्डित बना फिरता है, चांडाल ! अब तेरे द्वारपर पानी न पीऊँगा। अपनी लडकीको यन्तर बनाकर गले मे पहन। यह कहकर मदनसिंह उठे और उस छोलदारीमें चले गये जहाँ सदन पडा सो रहा था और जोरसे चिल्लाकर कहारो को पुकारा !

उनके जानेपर उमानाथ पद्मसिंहसे बोले, महाराज, किसी प्रकार पण्डितजीको मनाइये। मुझे कही मुँह दिखानेको जगह न रहेगी। सुमनका हाल तो आपने सुना ही होगा। उस अभागिनने मेरे मुँहमें कालिख लगा दी। ईश्वरकी यही इच्छा थी, पर अब गडे हुए मुरदे उखाडनेसे क्या लाभ होगा। आपही न्याय कीजिये, मै इस बातको छिपानेके सिवा और क्या करता ? इस कन्याका विवाह करना ही था। वह बात छिपाये बिना कैसे बनता ? आपसे सत्य कहता हूँ कि मुझे यह समाचार सवन्ध ठीक हो जानेके बाद मिला।

पद्मसिंहने चिंतित स्वरसे कहा, भाई साहबके कानमें बात न पडी होती तो यह सब कुछ न होता। देखिये, मै उनके पास जाता हूँ पर उनका राजी होना कठिन मालूम होता है।

मदनसिह कहारोसे चिल्लाकर कह रहे थे कि जल्द यहाँसे चलने की

तैयारी करो। सदन भी अपने कपडे समेट रहा था। उसके पिताने सब हाल उससे कह दिया था।

इतनेमें पद्मसिहने आकर आग्रहपूर्वक कहा, भैया, इतनी जल्दी न कीजिये। जरा सोच समझकर काम कीजिए। धोखा तो हो ही गया, पर यो लोट चलनेमे तो और भी जग हँसाई है।

सदनने चाचाकी ओर अवहेलनाकी दृष्टिसे देखा, और मदनसिहने आश्चर्यसे।

पद्मसिह—दो चार आदमियोसे पूछ देखिये, क्या राय है।

मदन—क्या कहते हो, क्या जानबूझकर जीती मक्खी निगल जाऊँ?

पद्म—इसमे कमसे कम जग हँसाई तो न होगी।

मदन—तुम अभी लडके हो, ये बाते क्या जानो? जाओ, लौटनेका सामान करो। इस वक्तकी जग हँसाई अच्छी है। कुलमें सदाके लिये कलंक तो न लगेगा।

पद्म—लेकिन यह तो विचार कीजिये कि कन्याकी क्या गति होगी। उसने क्या अपराध किया है?

मदनसिहने झिडककर कहा, तुम हो निरे मूर्ख। चलकर डेरे लदाओ। कलको कोई बात पड़ जायगी तो तुम्ही गालियाँ दोगे कि रुपएपर फिसल पडे। ससारके व्यवहारमे वकालतसे काम नही चलता।

पद्मसिहने कातर नेत्रोसे देखते हुए कहा, मुझे आपकी आज्ञासे इनकार नहीं है, लेकिन शोक है कि इस कन्याका जीवन नष्ट हो जायगा।

मदन—तुम खामख्वाह क्रोध दिलाते हो। लड़कीका मैंने ठीका लिया है? जो कुछ उसके भाग्यमे बदा होगा, वह होगा। मुझे इससे क्या प्रयोजन?

पद्मसिहने नैराश्यपूर्ण भावसे कहा, सुमनका आना जाना बिलकुल बन्द है। इन लोगोने उसे त्याग दिया है।

मदन—मैंने तुम्हे कह दिया कि मुझे गुस्सा न दिलाओ। तुम्हे ऐसी

बात मुझसे कहते हुए लज्जा नही आती ? बड़े सुधारक की दुम बने हो। एक हरजाईकी बहनसे अपने बेटेका ब्याह कर लूं। छि: छि: तुम्हारी बुद्धि कैसी भ्रष्ट हो गई।

पद्मसिंहने लज्जित होकर सिर झुका लिया। उनका मन कह रहा था कि भैया इस समय जो कुछ कर रहे हो वही ऐसी अवस्थामे मैं भी करता। लेकिन भयकर परिणाम विचार करके उन्होने एक बार फिर बोलनेका साहस किया। जैसे कोई परीक्षार्थी गजटमें अपना नाम न पाकर निराश होते हुए भी शोधपत्रकी ओर लपकता है, उसी प्रकार अपनेको धोखा देकर पद्मसिंह भाईसे दबते हुए बोले, सुमनबाई भी तो अब विधवाश्रममे चली गई है।

पद्मसिंह सिर नीचे किये बातें कर रहे थे। भाईसे आँखें मिलानेका हौसला न होता था। यह वाक्य मुँहसे निकला ही था कि अकस्मात् मदनसिंहने एक जोरसे धक्का दिया कि वह लड़खड़ाकर गिर पड़े। चौंककर सिर उठाया, मदनसिंह खड़े क्रोधसे कॉप रहे थे। तिरस्कारके वे कठोर शब्द जो उनके मुँहसे निकलनेवाले थे, पद्मसिंहको भूमिपर गिरते देखकर पश्चात्तापसे दब गये थे। मदनसिंहकी इस समय वही दशा थी जब क्रोधमे मनुष्य अपनाही माँस काटने लगता है।

यह आज जीवनमे पहला अवसर था कि पद्मसिंहने भाईके हाथों धक्का खाया। सारी बाल्यावस्था बीत गई, बड़े-बड़े उपद्रव किये, पर भाईने कभी हाथ न उठाया। वह बच्चोंके सदृश रोने लगे, सिसकते थे, हिचकियाँ लेते थे, पर हृदयमे लेशमात्रको भी क्रोध न था। केवल यह दुःख था कि जिसने सर्वदा प्यार किया, कभी कड़ी बात नही कही, उसे आज मेरे दुराग्रहसे ऐसा दु:ख पहुँचा। यह हृदयमें जलती हुई अग्निकी ज्वाला है, यह लज्जा, अपमान और आत्मग्लानिका प्रत्यक्ष स्वरुप है, यह हृदयमे उमड़े हुए शोक सागरका उद्वेग है। सदनने लपकर पद्मसिंहको उठाया और अपने पिताकी ओर क्रोधसे देखकर बोला, आपतो जैसे बावले हो गये है।

इतनेमें कई आदमी आ गये और पूछने लगे, महाराज, क्या बात हुई ?

बारातको लौटानेका हुकुम क्यो देते है ? ऐसा कुछ करो कि दोनो ओरकी मर्यादा बनी रहे, अब उनकी और आपकी इज्जत एक है। लेन-देनमे कुछ कोर कसर हो तो तुम्ही दब जाओ, नारायणने तुम्हे क्या नही दिया है ? इनके धनसे थोडे ही धनी हो जाओगे ? मदनसिंहने कुछ उत्तर नही दिया।

महफिलमें खलबली पड़ गई। एक दूसरेसे पूछता था, यह क्या बात है ? छोलदारीके द्वार पर आदमियोंकी भीड़ बढती ही जाती थी।

महफिलमें कन्याकी ओरके भी कितने ही आदमी थे। वह उमानाथसे पूछने लगे, भैया, ये लोग क्यों बरात लौटाने पर उतारू हो रहे है ? जब उमानाथने कोई संतोषजनक उत्तर न दिया तो से सबके सब आकर मदन-सिहसे विनती करने लगे, महाराज, हमसे ऐसा क्या अपराध हुआ है। और जो दण्ड चाहे दीजिये पर बारात न लौटाइये, नही तो गाँव बदनाम हो जायगा। मदनसिंहने उनसे केवल इतना कहा, इसका कारण जाकर उमा-नाथसे पूछो, वही बतलायेगे।

पण्डित कृष्णचन्द्रने जबसे सदनको देखा था, आनन्दसे फूले न समाते थे। विवाहका मुहूर्त निकट था, वह वरके आनेकी राह देख रहे थे कि इतनेमे कई आदमियोने आकर उन्हे यह खबर दी। उन्होने पूछा, क्यो लौटे जाते है ? क्या उमानाथसे कोई झगड़ा हो गया है ?

लोगोंने कहा, हमे यह नहीं मालूम, उमानाथ तो वही खड़े मना रहे है।

कृष्णचन्द्र झल्लाये हुए बारातकी ओर चले। बारात का लोटना क्या लड़कों का खेल है ? यह कोई गुड्डे गुड्डोका ब्याह है क्या ? अगर विवाह नही करना था तो यहाँ बारात क्यों लाये। देखता हूँ, कौन बारातको फेर ले जाता है ? खूनकी नदी बहा दूँगा। यही न होगा फाँसी हो जायगी, पर इन्हे इसका मजा चखा दूँगा। कृष्णचन्द्र अपने साथियोसे ऐसी ही बाते करते, कदम बढ़ाते हुए जनवासेमे पहुँचे और ललकारकर बोले, कहाँ है पण्डित मदनसिंह ? महाराज, जरा बाहर आइये।

मदनसिंह यह ललकार सुनकर बाहर निकल आये और दृढताके साथ बोले, कहिये, क्या कहना है ?

कृष्णचन्द्र—आप बारात क्यों लौटाए लिए जाते हैं ?

मदन—अपना मन ! हमें विवाह नही करना है ।

कृष्ण—आपको विवाह करना होगा । यहाँ आकर आप ऐसे नही लौट सकते ।

मदन—आपको जो करना हो कीजिये । हम विवाह नही करेंगे ।

कृष्ण—कोई कारण ?

मदन—कारण क्या आप नही जानते ?

कृष्ण—जानता तो आपसे क्यों पूछता ?

मदन—तो पडित उमानाथसे पूछिए ?

कृष्ण—मैं आपसे पूछता हूँ ?

मदन—बात दबी रहने दीजिए । मैं आपको लज्जित नही करना चाहता ।

कृष्ण—अच्छा, समझा, मैं जेलखाने हो आया हूँ । यह उसका दण्ड है । धन्य है आपका न्याय !

मदन—इस बातपर बारात नही लौट सकती थी ।

कृष्ण—तो उमानाथसे विवाहका कर देनेमे कुछ कसर हुई होगी ।

मदन—हम इतने नीच नही है ।

कृष्ण—फिर ऐसी कौनसी बात है ?

मदन—हम कहते है हमसे न पूछिए ।

कृष्ण—आपको बतलाना पडेगा । दरवाजेपर बारात लाकर उसे लौटा ले जाना क्या आपने लड़कोका खेल समझा है ? यहाँ खूनकी नदी बह जायगी । आप इस भरोसेमे न रहियेगा ।

मदन—इसकी हमको चिन्ता नही है । हम यहाँ मर जायँगे, लेकिन आपकी लडकीसे विवाह न करेंगे । आपके यहाँ अपनी मर्य्यादा खोने नहीं आए है ।

कृष्ण—तो क्या हम आपसे नीच है ?

मदन—हाँ, आप हमसे नीच है ।

कृष्ण—इसका कोई प्रमाण ?

मदन—हाँ, है ।

कृष्ण—तो उसके बतानेमे आपको क्यो सकोच होता है ?

मदन—अच्छा, तो सुनिये, मुझे दोष न दीजियेगा, आपकी लड़की सुमन, जो इस कन्याकी सगी बहन है, पतिता हो गई है । आपका जी चाहे तो उसे दालमडीमे देख आइए ।

कृष्णचन्द्रने अविश्वासकी चेष्टा करके कहा, यह बिल्कुल झूठ है । पर क्षणमात्रमे उन्हे याद आ गया कि जब उन्होंने उमानाथसे सुमनका पता पूछा था तो उन्होंने टाल दिया था, कितने ही ऐसे कटाक्षोका अर्थ समझ मे आ गया जो जान्हवी बात बातमे उनपर करती रहती थी । विश्वास हो गया । उनका सिर लज्जासे झुक गया । वह अचेत होकर भूमिपर गिर पड़े ! दोनो तरफके सैकड़ों आदमी वहाँ खड़े थे लेकिन सबके सब सन्नाटेमे आ गए, इस विषयमे किसीको मुंह खोलनेका साहस नही हुआ ।

आधी रात होते-होते डेरे-खेमे सब उखड गये । उस बगीचेमे फिर अन्धकार छा गया । गीदडोकी सभा होने लगी और उल्लू बोलने लगे ।

३२

विट्ठलदासने सुमनको विधवाश्रममे गुप्त रीतिसे रखा था । प्रबन्धकारिणी सभाके किसी भी सदस्यको इत्तला न दी थी । आश्रमकी विधवाओसे उसे विधवा बताया था । लेकिन अबुलवफा जैसे टोहियोसे यह बात बहुत दिनोतक गुप्त न रही । उन्होंने हिरियाको ढूढ निकाला और उससे सुमनका पता पूछा लिया । तब अपने अन्य रसिक मित्रोको भी इसकी सूचना दे दी । इसका यह परिणाम हुआ कि उन सज्जनोकी आश्रमपर विशेष रीतिसे कृपादृष्टि होने लगी । कभी सेठ चिम्मनलाल आते, कभी सेठ बलभद्रदास, कभी पडित दीनानाथ विराजमान हो जाते । इन महानुभावोको अब आश्रमकी सफाई और सजावट, उसकी आर्थिक दशा, उसके प्रबन्ध आदि

कृष्णचन्द्र—आप बारात क्यों लौटाए लिए जाते हैं ?

मदन—अपना मन ! हमें विवाह नही करना है ।

कृष्ण—आपको विवाह करना होगा । यहाँ आकर आप ऐसे नहीं लौट सकते ।

मदन—आपको जो करना हो कीजिये । हम विवाह नही करेंगे ।

कृष्ण—कोई कारण ?

मदन—कारण क्या आप नही जानते ?

कृष्ण—जानता तो आपसे क्यों पूछता ?

मदन—तो पंडित उमानाथसे पूछिए ?

कृष्ण—मैं आपसे पूछता हूँ ?

मदन—बात दबी रहने दीजिए । मैं आपको लज्जित नही करना चाहता ।

कृष्ण—अच्छा, समझा, मैं जेलखाने हो आया हूँ । यह उसका दण्ड है । धन्य है आपका न्याय !

मदन—इस बातपर बारात नही लौट सकती थी ।

कृष्ण—तो उमानाथसे विवाहका कर देनेमें कुछ कसर हुई होगी ।

मदन—हम इतने नीच नही हैं ।

कृष्ण—फिर ऐसी कौनसी बात है ?

मदन—हम कहते हैं हमसे न पूछिए ।

कृष्ण—आपको बतलाना पड़ेगा । दरवाजेपर बारात लाकर उसे लौटा ले जाना क्या आपने लड़कोंका खेल समझा है ? यहाँ खूनकी नदी बह जायगी । आप इस भरोसेमें न रहियेगा ।

मदन—इसकी हमको चिन्ता नही है । हम यहाँ मर जायेंगे, लेकिन आपकी लड़कीसे विवाह न करेंगे । आपके यहाँ अपनी मर्य्यादा खोने नही आए हैं ।

कृष्ण—तो क्या हम आपसे नीच हैं ?

मदन—हाँ, आप हमसे नीच हैं ।

कृष्ण—इसका कोई प्रमाण ?

मदन—हाँ, है ।

कृष्ण—तो उसके बतानेमे आपको क्यो सकोच होता है ?

मदन—अच्छा, तो सुनिये, मुझे दोष न दीजियेगा, आपकी लड़की सुमन, जो इस कन्याकी सगी बहन है, पतिता हो गई है । आपका जी चाहे तो उसे दालमंडीमे देख आइए ।

कृष्णचन्द्रने अविश्वासकी चेष्टा करके कहा, यह बिल्कुल झूठ है । पर क्षणमात्रमे उन्हे याद आ गया कि जब उन्होंने उमानाथसे सुमनका पता पूछा था तो उन्होंने टाल दिया था, कितने ही ऐसे कटाक्षोका अर्थ समझ मे आ गया जो जान्हवी बात बातमें उनपर करती रहती थी । विश्वास हो गया । उनका सिर लज्जासे झुक गया । वह अचेत होकर भूमिपर गिर पड़े ! दोनों तरफके सैकड़ों आदमी वहाँ खड़े थे लेकिन सबके सब सन्नाटेमें आ गए, इस विषयमे किसीको मुँह खोलनेका साहस नहीं हुआ ।

आधी रात होते-होते डेरे-खेमे सब उखड़ गये । उस बगीचेमे फिर अन्धकार छा गया । गीदड़ोंकी सभा होने लगी और उल्लू बोलने लगे ।

३२

विट्ठदासने सुमनको विधवाश्रममे गुप्त रीतिसे रखा था । प्रबन्धकारिणी सभाके किसी भी सदस्यको इत्तला न दी थी । आश्रमकी विधवाओसे उसे विधवा बताया था । लेकिन अबुलवफा जैसे टोहियोंसे यह बात बहुत दिनोंतक गुप्त न रही । उन्होंने हिरियाको ढूंढ़ निकाला और उससे सुमनका पता पूछा लिया । तब अपने अन्य रसिक मित्रोंको भी इसकी सूचना दे दी । इसका यह परिणाम हुआ कि उन सज्जनोंकी आश्रमपर विशेष रीतिसे कृपादृष्टि होने लगी । कभी सेठ चिम्मनलाल आते, कभी सेठ बलभद्रदास, कभी पंडित दीनानाथ विराजमान हो जाते । इन महानुभावोंको अब आश्रमकी सफाई और सजावट, उसकी आर्थिक दशा, उसके प्रबन्ध आदि

मालूम होता है, वह अपने सद्व्यवहारसे अपनी कालिमाको धोना चाहती है। सब काम करनेको तैयार और प्रसन्न चित्तसे। अन्य स्त्रियाँ सोती ही रहती है और वह उनके कमरोंमें झाड़ू दे जाती है। कई विधवाओंको सीना सिखाती है, कई उससे गाना सीखती है। सब प्रत्येक बातमें उसीकी राय लेती है। इस चहारदिवारीके भीतर अब उसीका राज्य है। मुझे कदापि ऐसी आशा न थी। यहाँ उसने कुछ पढना भी शुरू कर दिया है। और भाई मनका हाल तो ईश्वर जानें, देखनेमें तो अब उसका बिलकुल कायापलट सा हो गया है।

पद्म—नहीं, साहब, वह स्वभावकी बुरी स्त्री नही है। मेरे यहाँ महीनो आती रही थी। मेरे घरमें उसकी बडी प्रशसा किया करती थीं (यह कहते-कहते झेंप गये), कुछ ऐसे कुसंस्कार ही हो गये जिन्होने उससे यह अभिनय कराये। सच पूछिये तो हमारे पापोंका दण्ड उसे भोगना पड़ा। हाँ, कुछ उधरका समाचार भी मिला ? सेठ बलभद्रदासने और कोई चाल चली ?

विट्ठल—हाँ साहब; वे चुप बैठनेवाले आदमी नही है ? आजकल खूब दौड-धूप हो रही है। दो तीन दिन हुए हिन्दू मेम्बरोकी एक सभा भी हुई थी। मै तो जा न सका, पर विजय उन्ही लोगोंकी रही। अब प्रधानके २ वोट मिलाकर उनके पास ६ वोट है और हमारे पास कुल ४ मुसलमानोके वोट मिलाकर बराबर हो जायगे।

पद्म—तो हमको कमसे कम एक वोट मिलना चाहिए। है इसकी कोई आशा ?

विट्ठल—मुझे तो कोई आशा नही मालूम होती।

पद्म—अवकाश हो तो चलिये, जरा डाक्टर साहब और लाला-भगतरामके पास चले।

विट्ठल—हाँ, चलिये, मै तैयार हूँ।

३३

यद्यपि डाक्टर साहबका बँगला निकट ही था, पर इन दोनों आदमियोने

एक किरायेकी गाड़ी की। डाक्टर साहबके यहाँ पैदल जाना फैशनके विरुद्ध था। रास्तेमे विट्ठलदासने आजके सारे समाचार बढाबढ़ाकर बयान किये ओर अपनी चतुराईको खूब दर्शाया।

पद्मसिंहने यह सुनकर चिन्तित भावसे कहा, तो अब हमको और सतर्क होनेकी जरूरत है। अन्तमे आश्रमका सारा भार उन्ही लोगोंपर पडेगा। बलभद्रदास अभी चाहे चुप रह जायँ लेकिन इसकी कसर कभी न कभी निकालेगे अवश्य।

विट्ठल—मैं क्या करूँ? मुझसे यह अत्याचार देखकर रहा नही जाता। शरीरमे एक ज्वाला-सी उठने लगती है। कहनेको ये लोग विद्वान् बुद्धिमान है, नीतिपरायण है, पर उनके ऐसे कर्म? अगर मुझमे कौशलसे काम लेनेकी सामर्थ्य होती तो कमसे कम बलभद्रदाससे लड़नेकी नौबत न आती।

पद्म—यह तो एक दिन होना ही था। यह भी मेरे ही कर्मोका फल है। देखूं, अभी और क्या-क्या गुल खिलते है? जबसे बारात वापस आई है मेरी विचित्र दशा हो गई है। न भूख है, न प्यास, रातभर करवटे बदला करता हूँ। यही चिन्ता लगी रहती है कि उस अभागिन कन्याका बेडा कैसे पार लगेगा। अगर कहीं आश्रमका भार सिरपर पड़ा तो जानही पर बन जायगी। ऐसे अथाह दलदलमे फँस गया हूँ कि ज्यो-ज्यो ऊपर उठना चाहता हूँ और नीचे दबा जाता-हूँ।

यही बात करते-करते डाक्टर साहबका बँगला आ गया। १० बजे थे। डाक्टर साहब अपने सुसज्जित कमरेमे बैठे हुए अपनी बडी लड़की मिस कांतिसे शतरज खेल रहे थे। मेजपर दो टेरियर कुत्ते बैठे हुए बडे ध्यानसे शतरंजकी चालोको देख रहे थे। और कभी-कभी जब उनकी समझमे खिलाड़ियोसे कोई भूल हो जाती थी तो पजोसे मोहरोको उलट पटल देते थे। मिस कांति उनकी इस शरारतपर हँसकर अंग्रेजीमे कहती थीं, 'यू नाटी!'

मेजकी बाईं ओर एक आराम कुर्सीपर सैयद तेग अली साहब विराजमान थे और बीच-बीचमे मिस कान्तिको चाल बताते थे।

इतनेमें हमारे दोनों मित्र जा पहुँचे। डाक्टर साहबने उठकर दोनों सज्जनोंसे हाथ मिलाया। मिस कान्तिने उनकी ओर दबी निगाहोंसे देखा और मेजपरसे एक पत्र उठाकर पढ़ने लगीं।

डाक्टर साहबने अंग्रेजीमें कहा, मैं आप लोगोंसे मिलकर बहुत प्रसन्न हुआ। आइये, आप लोगोंको मिस कांतिसे इन्ट्रोडयूस करा दूं।

परिचय हो जानेपर मिस कान्तिने दोनों आदमियोंसे हाथ मिलाया और हंसती हुई बोली, बाबा अभी आप लोगोंका जिक्र कर रहे थे। मैं आपसे मिलकर बहुत प्रसन्न हुई।

डाक्टर श्यामाचरण—मिस कान्ति अभी डलहौसी पहाड़से आई है। इसका स्कूल जाडेमें बन्द हो जाता है। वहाँ शिक्षाका बहुत उत्तम प्रबन्ध है। यह अंगरेजोंकी लड़कियोंके साथ बोर्डिंगहाउसमें रहती है। लेडी प्रिंसिपलने अबकी इसकी प्रशंसा की है। कांति जरा अपनी लेडी प्रिंसिपलकी चिट्ठी इन्हे दिखा दो। मिस्टर शर्मा, आप कान्तिकी अंगरेजी बात सुनकर दंग रह जायेंगे (हँसते हुए) यह मुझे कितने ही नये मुहाविरे सिखा सकती है।

मिस कान्तिने लजाते हुए अपना प्रशंसापत्र पद्मसिंहको दिखाया। उन्होंने उसे पढ़कर कहा, आप लैटिन भी पढ़ती है?

डाक्टर साहबने कहा, लैटिनमें अबकी परीक्षामे इन्हे एक पदक मिला है। कल क्लब में कान्तिने ऐसा अच्छा गेम दिखाया कि अंगरेज लेडियाँ दंग रह गईं। हाँ, अबकी बार आप हिन्दू मेम्बरोंके जलसेमे नहीं थे?

पद्म—जी नहीं, मैं जरा मकानपर चला गया था।

डाक्टर—आपहीके प्रस्तावपर विचार किया गया। मैं तो उचित समझता हूँ कि अभी उसे बोर्डमें पेश करनेमे जल्दी न करें। अभी सफलताकी बहुत कम आशा है।

तेगअली बोले, जनाव, मुलसमान मेम्बरोंकी तरफसे तो आपको पूरी मदद मिलेगी।

डाक्टर—हाँ, लेकिन हिन्दू मेम्बरोमे तो मतभेद है।

पद्म—आपकी सहायता हो जाय तो सफलतामे कोई सदेह न रहे।

डाक्टर—मुझे इस प्रस्तावसे पूरी सहानुभूति है, लेकिन आप जानते है, मै गवर्नमेन्टका नामजद किया हुआ मेम्बर हूँ। जवतक यह न मालूम हो जाय कि गवर्नमेन्ट इस विषयको पसन्द करती है या नही, तवतक मै ऐसे सामाजिक प्रश्नपर कोई राय नही दे सकता।

वि ्ठलदासने तीव्र स्वरसे कहा, जव मेम्बर होनेसे आपके विचार स्वातन्त्र्यमे बाधा पडती है तो आपको इस्तीफा दे देना चाहिये।

तीनों आदमियोने विट्ठलदासको उपेक्षाकी दृष्टिसे देखा। उनका यह कथन असगत था। तेगअलीने व्यंग भावसे कहा, इस्तीफा दे दे तो यह सम्मान कैसे हो ? लाट साहवके वरावर कुरसीपर कैसे वैठे ? आनरेवल कैसे कहलावे ? वडे-वड़े अगरेजोसे हाथ मिलानेका सौभाग्य कैसे प्राप्त हो ! सरकारी डिनरमे वढ-वढकर हाथ मारनेका गौरव कैसे मिले ? नैनीतालकी सैर कैसे करे ? अपनी वक्तृताका चमत्कार कैसे दिखावे ? यह भी तो सोचिये।

विट्ठलदास बहुत लज्जित हुए। पद्मसिह पछताये कि विट्ठलदासके साथ नाहक आये।

डाक्टर साहव गम्भीर भावसे वोले, साधारण लोग समझते है कि इस लालचसे लोग मेम्वरीके लिए दौडते है। वह यह नही समझते कि यह कितनी जिम्मेदारीका काम है। गरीव मेम्वरोंको अपना कितना समय, कितना विचार, कितना धन, कितना परिश्रम इसके लिए अर्पण करना पडता है। इसके वदले उसे इस सन्तोपके सिवाय और क्या मिलता है कि मै देश और जातिकी सेवा कर रहा हूँ। ऐसा न हो तो कोई मेम्बरीकी परवा न करे।

तेगअली—जी हाँ, इसमे क्या शक है, जनाव ठीक फरमाते है, जिसके

सिर यह अजीमुश्शान जिम्मेदारी पड़ती है उसका दिल जानता है।

११ बज गये थे। श्यामाचरणने पद्मसिंहसे कहा, मेरे भोजनका समय आ गया, अब जाता हूँ। आप सन्ध्या समय मुझसे मिलियेगा।

पद्मसिंहने कहा, हाँ, हाँ, शौकसे जाइये। उन्होंने सोचा जब ये भोजनमे जरासी देर हो जानेसे इतने घबराते है तो दूसरोसे क्या आशा की जाय? लोग जाति और देशके सेवक तो बनना चाहते है, पर जरासा भी कष्ट नही उठाना चाहते।

लाला भगतराम धूपमे तख्तेपर बैठे हुक्का पी रहे थे। उनकी छोटी लड़की गोदमे बैठी हुई धुएको पकडनेके लिए बार बार हाथ बढाती थी। सामने जमीनपर कई मिस्त्री और राजगीर बैठे हुए थे। भगतराम पद्मसिहको देखते ही उठखडे हुए और पालागन करके बोले, मैने शामहीको सुना था कि आप आ गये, आज प्रातःकाल आनेवाला था, लेकिन कुछ ऐसा झझट आ पड़ा कि अवकाश ही न मिला। यह ठेकेदारीका काम बडे झगडेका है। काम कराइये, अपने रुपये लगाइये, उसपर दूसरोंकी खुशामद कीजिये। आजकल इजिनियर साहब किसी बातपर ऐसे नाराज हो गए है कि मेरा कोई काम उन्हे पसन्द ही नही आता। एक पुल बनवानेका ठीका लिया था। उसे तीन बार गिरवा चुके हैं। कभी कहते, यह नही बना, कभी कहते, वह नही बना। नफा कहाँसे होगा, उलटे नुकसान होनेकी सम्भावना है। कोई सुननेवाला नही है। आपने सुना होगा, हिन्दू मेम्बरोका जलसा हो गया।

पद्म—हाँ, सुना और सुनकर शोक हुआ। आपसे मुझे पूरी आशा थी। क्या आप इस सुधारको नही समझते?

भगतराम—इसे केवल उपयोगी ही नही समझता, बल्कि हृदयसे इसकी सहायता करना चाहता हूँ पर मै अपनी रायका मालिक नही हूँ। मैने अपनेको स्वार्थके हाथोंमे बेच दिया है। मुझे आप ग्रामोफोनका रेकार्ड समझिये, जो कुछ भर दिया जाता है वही कह सकता हूँ और कुछ नही।

पद्मसिंह—लेकिन आप यह तो मानते हैं कि जातिके हितमे स्वार्थसे पार्थक्य होनी चाहिए।

भगतराम—जी हाँ, इसे सिद्धन्तरूपसे मानता हूँ, पर इसे व्यवहारमें लानेकी शक्ति नही रखता। आप जानते होगे, मेरा सारा कारबार सेठ चिम्मनलालकी मददसे चलता है। अगर उन्हे नाराज कर लूं तो यह सारा ठाट बिगड़ जाय। समाजमें मेरी जो कुछ मान-मर्य्यादा है वह इसी ठाट-बाट के कारण है। विद्या और बुद्धि है ही नही, केवल इसी स्वांगका भरोसा है। आज अगर कलई खुल जाय तो कोई बात भी न पूछे। दूधकी मक्खीकी तरह समाजसे निकाल दिया जाऊँ। बतलाइये शहरमे कौन है जो केवल मेरे विश्वासपर हजारो रुपये बिना सूदके दे देगा, और फिर केवल अपनी ही फिक्र तो नही है। कम से कम ३००) रु० मासिकके गृहस्थीका खर्च है जातिके लिए मैं स्वयं कष्ट झेलनेके लिए तैयार हूँ, पर अपने बच्चोको कैसे निरवलम्ब कर दूँ।

हम जब अपने किसी कर्त्तव्यसे मुंह मोड़ते है तो दोषसे बचनेके लिए तो ऐसी प्रबल युक्तियाँ निकालते है कि कोई मुह न खोल सके। उस समय हम सकोचको छोड़कर अपने सम्बन्धमे ऐसी-ऐसी बाते कह डालते है कि जिनके गुप्त रहनेहीमे हमारा कल्याण है। लाला भगतरामके हृदयमे यही भाव काम कर रहा था। पद्मसिंह समझ गये कि इनसे कोई आशा नहीं। बोले, ऐसी अवस्थामे आपपर कैसे जोर दे सकता हूँ। मुझे केवल एक वोटकी फिक्र है, कोई उपाय बतलाइये, कैसे मिले?

भगत—कुँवर साहबके यहाँ जाइये। ईश्वर चाहेगे तो उनका वोट आपको मिल जायगा। सेठ बलभद्रदासने उनपर ३०००) की नालिश की है। कल उनकी डिगरी भी हो गई। कुँवर साहब इस समय बलभद्रदाससे तने हुए है, वश चले तो गोली मार दे। फँसानेका एक लटका आपको और बताये देता हूँ। उन्हे किसी सभाका प्रधान बना दीजिये। बस, उनकी नकेल आपके हाथमे हो जायेगी।

पद्मसिंहने हँसकर कहा, अच्छी बात है; उन्हीके यहाँ चलता हूँ।

दोपहर हो गया था, लेकिन पद्मसिंहको भूख प्यास न थी। बग्घीपर बैठकर चले। कुँवर साहब वरुना-किनारे एक बँगलेमें रहते थे। आध घंटेमें जा पहुँचे।

बँगलेके हातेमें न कोई सजावट थी न सफाई। फूलपत्तीका नाम न था। बरामदेमें कई कुत्ते जंजीरमें बँधे खडे थे। एक तरफ कई घोड़े बँधे हुए थे। कुँवर साहबको शिकारका बहुत शौक था। कभी-कभी काश्मीर तकका चक्कर लगाया करते थे। इस समय वह सामने कमरेमें बैठे हुए सितार बजा रहे थे। दीवारोंपर चीतोंकी खालें और हिरनोंके सींग शोभा दे रहे थे। एक कोनेमें कई बन्दूकें और बरछियाँ रखी हुई थीं; दूसरी ओर एक बड़ी मेजपर एक घड़ियाल बैठा था। पद्मसिंह कमरेमें आये तो उसे देखकर एक बार चौंक पड़े। खालमें ऐसी सफाईसे भूसा भरा गया था कि उसमें जानसी पड़ गयी थी।

कुँवर साहबने शर्माजीका बड़े प्रेमसे स्वागत किया—आइये महाशय, आपके तो दर्शन दुर्लभ हो गये। घरसे कब आए ?

पद्मसिंह—कल आया हूँ।

कुंवर—चेहरा उतरा हुआ है, बीमार थे क्या ?

पद्म—जी नहीं बहुत अच्छी तरह हूँ।

कुँवर—कुछ जलपान कीजियेगा ?

पद्म—नहीं क्षमा कीजिये, क्या सितारका अभ्यास हो रहा है ?

कुँवर—जी हाँ, मुझे तो अपना सितार ही पसन्द है। हारमोनियम और प्यानो सुनकर मुझे मतलीसी होने लगती है, इन अंगरेजी बाजोंने हमारे संगीतको चौपट कर दिया, इसकी चर्चा ही उठ गई। जो कुछ कसर रह गई थी, वह थिएटरोंने पूरी कर दी। बस, जिसे देखिए गजल और कौवालीकी रट लगा रहा है। थोड़े दिनोंमें धनुर्विद्याकी तरह इसका भी लोप हो जायगा। संगीतसे हृदयमें पवित्र भाव पैदा होते हैं। जबसे गानेका प्रचार कम हुआ, हम लोग भावशून्य हो गए और इसका सबसे बुरा असर हमारे साहित्यपर पड़ा है। कितने शोककी बात है कि जिस देशमें रामायण

जैसे अमूल्य ग्रन्थकी रचना हुई, सूरसागर जैसा आनन्दमय काव्य रचा गया, उसी देशमे अब साधारण उपन्यासोके लिए हमको अनुवादका आश्रय लेना पडता है। बंगाल और महाराष्ट्रमें अभी गानेका कुछ प्रचार है, इसीलिए वहाँ भावोंका ऐसा शैथिल्य नहीं है। वहाँ रचना और कल्पना-शक्तिका ऐसा अभाव नही है। मैंने तो हिन्दी साहित्यका पढना ही छोड़ दिया। अनुवादोंको निकाल डालिये तो आपके नवीन-हिन्दी साहित्यमे हरिश्चन्द्रके दो चार नाटको और चन्द्रकान्ता सन्ततिके सिवा और कुछ रहता ही नही। ससारका कोई साहित्य इतना दरिद्र न होगा। उसपर तुर्रा यह है कि जिन महानुभावोने दो-एक अगरेजी ग्रन्थोके अनुवाद मराठी और बँगला अनुवादो की सहायतासे कर लिए वे अपनेको धुरन्धर साहित्यज्ञ समझने लगे है। एक महाशयने कालिदासके कई नाटकोंके पद्यबद्ध अनुवाद किये है, लेकिन वे अपनेको हिन्दीका कालिदास समझते है। एक महाशयने 'मिलके' दो ग्रन्थोका अनुवाद किया है और वह भी स्वतन्त्र नही, बल्कि गुजराती, मराठी आदि अनुवादोके सहारेसे, पर वह अपने मनमे ऐसे सन्तुष्ट है मानो उन्होंने हिन्दी साहित्यका उद्धार का दिया। मेरा तो यह निश्चय होता जाता है कि अनुवादोसे हिन्दीका अपकार हो रहा रहा है। मौलिकताको पनपनेका अवसर नही मिलने पाता।

पद्मसिंहको यह देखकर आश्चर्य हुआ कि कुँवर साहबका साहित्यसे इतना परिचय है। वह समझते थे कि इन्हे पोलो और शिकारके सिवाय और किसी चीजसे प्रेम न होगा। वह स्वय हिन्दी-साहित्यसे अपरिचित थे, पर कुँवर साहबके सामने अपनी अनभिज्ञता प्रकट करते सकोच होता था। उन्होंने इस तरह मुस्कुराकर देखा मानो यह सब बाते इन्हे पहले हीसे मालूम थी और बोले, आपने तो ऐसा प्रश्न उठाया जिसपर दोनों पक्षोकी ओरसे बहुत कुछ कहा जा सकता है, पर इस समय मैं आपकी सेवामे किसी और ही कामसे आया हूँ। मैंने सुना है कि हिन्दू मेम्बरोके जलसेमे आपने सेठोंका पक्ष ग्रहण किया।

कुँअर साहब ठठाकर हँसे। उनकी हँसी कमरेमें गूँज उठी। पीतलकी

ढाल जो दीवारसे लटक रही थी इस झनकारमे थरथराने लगी। बोले, सच कहिये, आपने किससे सुना?

पद्मसिंह इस कुसमय हँसीका तात्पर्य न समझकर कुछ भौंचकसे हो गये। उन्हे मालूम हुआ कि कुँअर साहब मुझे बनाना चाहते है। चिढकर बोले, सभी कह रहे है, किस-किसका नाम लू?

कुँअर साहबने फिर जोरसे कहकहा मारा और हँसते हुए पूछा, और आपको विश्वास भी आ गया?

पद्मसिंहको अब इसमे कोई सन्देह न रहा कि यह सब मुझे झेपानेका स्वाँग है, जोर देकर बोले, अविश्वास करनेके लिए मेरे पास कोई कारण नहीं है।

कुँअर—कारण यही है कि मेरे साथ घोर अन्याय होगा। मैंने अपनी समझमे अपनी सम्पूर्ण वाक्यशक्ति आपके प्रस्तावके समर्थनमे खर्च कर दी थी। यहाँतक कि मैंने विरोधको गम्भीर विचारके लायक भी न सोचा। व्यग्योक्ति ही से काम लिया। (कुछ याद करके) हाँ एक बात हो सकती है। समझ गया। (फिर कहकहा मारकर) अगर यह बात है तो मै कहूँगा कि म्युनिसिपैलिटी बिलकुल बछियाके ताऊ लोगों हीसे भरी हुई है। व्यग्योक्ति तो आप समझते ही होंगे। बस, यह सारा कसूर उसीका है। किसी सज्जनने उसका भाव न समझा। काशीके सुशिक्षित सम्मानित म्युनिसिपल कमिश्नरोमें किसीने भी एक साधारण-सी बात न समझी" शोक! महाशोक!! महाशय, आपको बडा कष्ट हुआ। क्षमा कीजिये मै इस प्रस्तावका हृदयसे अनुमोदन करता हूँ।

पद्मसिंह भी मुस्कुराये। कुँअर साहबकी बातोपर विश्वास आया। बोले, अगर इन लोगोंने ऐसा धोखा खाया तो वास्तवमें उनकी समझ बडी मोटी है। मगर प्रभाकरराव धोखेमें आ जायँ, यह समझमे नही आता. पर ऐसा मालूम होता है कि नित्य अनुवाद करते-करते उनकी बुद्धि भी गायब हो गई है।

पद्मसिंह जब यहाँसे चले तो उनका मन ऐसा प्रसन्न था मानो वह

किसी बड़े रमणीक स्थानकी सैर करके आते हो। कुँअर साहबके प्रेम और शीलने उन्हे वशीभूत कर लिया था।

३७

सदन जब घर पर पहुँचा तो उसके मनकी दशा उस मनुष्यकी-सी थी जो बरसोकी कमाई लिए, मनमे सहस्रों मन्सूबे बाँधता, हर्षसे उल्लसित घर आये और यहाँ सन्दूक खोलने पर उसे मालूम हो कि थैली खाली पडी है।

विचारोंकी स्वतन्त्रता विद्या संगति और अनुभवपर निर्भर होती है। सदन इन सभी गुणोंसे रहित था। यह उसके जीवनका वह समय था जब उसको अपने धार्मिक विचारोपर, अपनी सामाजिक रीतियोपर एक अभिमान-सा होता है। हमे उनमे कोई त्रुटि नही दिखाई देती, जब हम अपने धर्मके विरुद्ध कोई प्रमाण या दलील सुननेका साहस नही कर सकते, तब हममे क्या और क्योका विकास नहीं होता। सदनको घरसे निकल भागना स्वीकार होता, इसके बदले कि वह घरकी स्त्रियोंको गगा नहलाने ले जाय। अगर स्त्रियोकी हँसीकी आवाज कभी मरदाने मे जाती तो वह तेवर बदले घरमे आता और अपनी माँको आड़े हाथों लेता। सुभद्राने अपनी सासका शासन भी ऐसा कठोर न पाया था। आत्मपतनको वह दार्शनिककी उदार दृष्टिसे नही, शुष्क योगीकी दृष्टिसे देखता था। उसने देखा था कि उसके गाँवमे एक ठाकुरने एक बेड़िन बैठा ली थी तो सारे गाँवने उनके द्वारपर आना जाना छोड दिया था और इस तरह उसके पीछे पडे थे कि उसे विवश होकर बेडिनको घरसे निकालना पडा। नि.सन्देह वह सुमनबाईपर जान देता था, लेकिन उसके लौकिक शास्त्रमे यह प्रेम उतना अक्षम्य न था जितना सुमनकी परछाई का उसके घरमे आ जाना। उसने अबतक सुमनके यहाँ पानतक न खाया था। वह अपनी कुल-मर्यादा और सामाजिक प्रथाको अपनी आत्मासे कहीं बढकर महत्वकी वस्तु समझता था। उस अपमान और निन्दाकी कल्पना ही उसके लिए असह्य थी जो कुलटा स्त्रीसे सम्बन्ध हो जानेके कारण उसके कुलपर

ढाल जो दीवारसे लटक रही थी इस झनकारसे थरथराने लगी। बोले, सच कहिये, आपने किससे सुना?

पद्मसिंह इस कुसमय हँसीका तात्पर्य न समझकर कुछ भौचकसे हो गये। उन्हें मालूम हुआ कि कुँअर साहब मुझे बनाना चाहते हैं। चिढकर बोले, सभी कह रहे हैं, किस-किसका नाम लू?

कुँअर साहबने फिर जोरसे कहकहा मारा और हँसते हुए पूछा, और आपको विश्वास भी आ गया?

पद्मसिंहको अब इसमें कोई सन्देह न रहा कि यह सब मुझे झेपानेका स्वाँग है, जोर देकर बोले, अविश्वास करनेके लिए मेरे पास कोई कारण नहीं है।

कुँअर—कारण यही है कि मेरे साथ घोर अन्याय होगा। मैंने अपनी समझमें अपनी सम्पूर्ण वाक्यशक्ति आपके प्रस्तावके समर्थनमें खर्च कर दी थी। यहाँतक कि मैंने विरोधको गम्भीर विचारके लायक भी न सोचा। व्यंग्योक्ति ही से काम लिया। (कुछ याद करके) हाँ एक बात हो सकती है। समझ गया। (फिर कहकहा मारकर) अगर यह बात है तो मैं कहूँगा कि म्युनिसिपैलिटी बिलकुल बछियाके ताऊ लोगों हीसे भरी हुई है। व्यंग्योक्ति तो आप समझते ही होंगे। बस, यह सारा कसूर उसीका है। किसी सज्जनने उसका भाव न समझा। काशीके सुशिक्षित सम्मानित म्युनिसिपल कमिश्नरोमें किसीने भी एक साधारण-सी बात न समझी" शोक! महाशोक!! महाशय, आपको बड़ा कष्ट हुआ। क्षमा कीजिये मैं इस प्रस्तावका हृदयसे अनुमोदन करता हूँ।

पद्मसिंह भी मुस्कुराये। कुँअर साहबकी बातोंपर विश्वास आया। बोले, अगर इन लोगोंने ऐसा धोखा खाया तो वास्तवमें उनकी समझ बड़ी मोटी है। मगर प्रभाकरराव धोखेमें आ जायें, यह समझमें नहीं आता, पर ऐसा मालूम होता है कि नित्य अनुवाद करते-करते उनकी बुद्धि भी गायब हो गई है।

पद्मसिंह जब यहाँसे चले तो उनका मन ऐसा प्रसन्न था मानों वह

सदन दालमण्डीके सामने आकर ठिठक गया; उसकी प्रेमाकांक्षा मन्द हो गई। वह धीरे-धीरे एक ऐसे स्थानपर आया जहाँसे सुमनकी अट्टालिका साफ दिखाई देती थी। यहाँसे कातर नेत्रोसे उस मकानके द्वारकी ओर देखा। द्वार बन्द था ताला पडा हुआ था। सदनके हृदयसे एक बोझा-सा उतर गया। उसे कुछ वैसा ही आनन्द हुआ जैसा उस मनुष्यको होता है जो पैसा न रहनेपर भी लड़केकी जिदसे विवश होकर खिलौनेकी दूकानपर जाता है और उसे बन्द पाता है।

लेकिन घर पहुँचकर सदन अपनी उदासीनतापर बहुत पछताया। वियोगकी पीडाके साथ साथ उसकी व्यग्रता बढती जाती थी। उसे किसी प्रकार धैर्य न होता था। रातको जब सब लोग खा-पीकर सोये तो वह चुपकेसे उठा और दालमण्डीकी ओर चला। जाडेकी रात थी, ठण्डी हवा चल रही थी, चन्द्रमा कुहरेकी आडसे झाँकता था और किसी घबराये हुए मनुष्यके समान सवेग दौडता चला जाता था। सदन दालमण्डीतक बडी तेजीसे आया, पर यहाँ आकर फिर उसके पैर बँध गये। हाथ-पैरकी तरह उत्साह भी ठण्ढा पड गया। उसे मालूम हुआ कि इस समय यहाँ मेरा आना अत्यन्त हास्यास्पद है। सुमनके यहाँ जाऊँ तो वह मुझे क्या समझेगी। उसके नौकर आरामसे सो रहे होगे। वहाँ कौन मुझे पूछता है। उसे आश्चर्य होता था कि मै यहाँ कैसे चला आया! मेरी बुद्धि उस समय कहाँ चली गई। अतएव वह लौट पडा।

दूसरे दिन सन्ध्या समय वह फिर चला। मनमे निश्चय कर लिया था कि अगर सुमनने मुझे देख लिया और बुलाया तो जाऊँगा, नही तो सीधे अपने राह चला जाऊँगा। उसका मुझे बुलाना ही बतला देगा कि उसका हृदय मेरी तरफसे साफ है। नही तो इस घटनाके बाद वह मुझे बुलाने ही क्यो लगी। जछ और आगे बढकर उसने फिर सोचा, क्या वह मुझे बुलानेके लिये झरोखेपर बैठी होगी! उसे क्या मालूम है कि मै यहाँ आ गया। यह नही, मुझे एक बार स्वय उसके पास चलना चाहिये। सुमन मुझसे कभी नाराज नही हो सकती और जो नाराज भी हो तो क्या

अच्छादित हो जाती। वह जनवासेमें पण्डित पद्मसिंहकी बात सुन-सुनकर अधीर हो रहा था। वह डरता था कि कहीं पिताजी उनकी बातोंमें न आ जायँ। उसकी समझमें न आता कि चाचा साहबको क्या हो गया है? अगर यही बातें किसी दूसरे मनुष्यने की होती तो वह अवश्य उसकी जबान पकड़ लेता। लेकिन अपने चाचासे वह बहुत दबता था। उसे उनका प्रतिवाद करनेकी बड़ी प्रबल इच्छा हो रही थी; उसकी तार्किक शक्ति कभी इतनी सतेज न हुई थी, और यदि विवाद तर्कही तक रहता तो वह जरूर उनसे उलझ पड़ता। लेकिन मदनसिंह की उद्दंडताने उसके प्रतिवाद उत्सुकताको सहानुभूतिके रूपमें परिणत कर दिया।

इधरसे निराश होकर सदनका लालसापूर्ण हृदय फिर सुमनकी ओर लपका। विषय-वासनाका चस्का पड़ जानेके बाद अब उसकी प्रेमकल्पना निराधार नहीं रह सकती थी। उसका हृदय एक बार प्रेमदीपकसे आलोकित होकर अब अन्धकारमें नहीं रहना चाहता था। वह पद्मसिंहके साथ ही काशी चला आया।

किन्तु यहाँ आकर वह एक बड़ी दुविधामें पड़ गया। उसे संशय होने लगा कि कहीं सुमनबाईको ये सब समाचार मालूम न हो गये हों। वह वहाँ स्वयं तो न रही होगी, लोगोंने उसे अवश्य ही त्याग दिया होगा, लेकिन उसे विवाहकी सूचना जरूर दी होगी। ऐसा हुआ होगा तो कदाचित् वह मुझसे सीधे मुँह बात भी न करेगी। सम्भव है वह मेरा तिरस्कार भी करे। लेकिन सन्ध्या होते ही उसने कपड़े बदले, घोड़ा कसवाया और दालमण्डीकी ओर चला। प्रेम मिलापकी आनन्दपूर्ण कल्पनाके सामने वे शंकाएं निर्मूल हो गईं। वह सोच रहा था कि सुमन मुझसे पहले क्या कहेगी, और मैं उसका उत्तर क्या दूँगा, कहीं उसे कुछ न मालूम हो और वह जाते ही प्रेमसे मेरे गले लिपट जाय और कहे कि तुम बड़े निठुर हो! इस कल्पना ने उसकी प्रेमाग्निको और भी भड़काया, उसने घोड़े को एड़ लगाई और एक क्षणमें दालमण्डीके निकट आ पहुंचा, पर जिस प्रकार एक खिलाड़ी लड़का पाठशालाके द्वारपर आकर भीतर जाते हुए डरता है उसी प्रकार

सदन दालमण्डीके सामने आकर ठिठक गया; उसकी प्रेमाकांक्षा मन्द हो गई। वह धीरे-धीरे एक ऐसे स्थानपर आया जहाँसे सुमनकी अट्टालिका साफ दिखाई देती थी। यहाँसे कातर नेत्रोसे उस मकानके द्वारकी ओर देखा। द्वार बन्द था ताला पडा हुआ था। सदनके हृदयसे एक बोझा-सा उतर गया। उसे कुछ वैसा ही आनन्द हुआ जैसा उस मनुष्यको होता है जो पैसा न रहनेपर भी लड़केकी जिदसे विवश होकर खिलौनेकी दूकानपर जाता है और उसे बन्द पाता है।

लेकिन घर पहुँचकर सदन अपनी उदासीनतापर बहुत पछताया। वियोगकी पीडाके साथ साथ उसकी व्यग्रता बढती जाती थी। उसे किसी प्रकार धैर्य न होता था। रातको जब सब लोग खा-पीकर सोये तो वह चुपकेसे उठा और दालमण्डीकी ओर चला। जाडेकी रात थी, ठण्डी हवा चल रही थी, चन्द्रमा कुहरेकी आडसे झाँकता था और किसी घबराये हुए मनुष्यके समान सवेग दौडता चला जाता था। सदन दालमण्डीतक बडी तेजीसे आया, पर यहाँ आकर फिर उसके पैर बँध गये। हाथ-पैरकी तरह उत्साह भी ठण्ढा पड गया। उसे मालूम हुआ कि इस समय यहाँ मेरा आना अत्यन्त हास्यास्पद है। सुमनके यहाँ जाऊँ तो वह मुझे क्या समझेगी। उसके नौकर आरामसे सो रहे होंगे। वहाँ कौन मुझे पूछता है। उसे आश्चर्य होता था कि मैं यहाँ कैसे चला आया! मेरी बुद्धि उस समय कहाँ चली गई। अतएव वह लौट पडा।

दूसरे दिन सन्ध्या समय वह फिर चला। मनमे निश्चय कर लिया था कि अगर सुमनने मुझे देख लिया और बुलाया तो जाऊँगा, नहीं तो सीधे अपने राह चला जाऊँगा। उसका मुझे बुलाना ही बतला देगा कि उसका हृदय मेरी तरफसे साफ है। नही तो इस घटनाके बाद वह मुझे बुलाने ही क्यो लगी। जछ और आगे बढ़कर उसने फिर सोचा, क्या वह मुझे बुलानेके लिये झरोखेपर बैठी होगी! उसे क्या मालूम है कि मैं यहाँ आ गया। यह नही, मुझे एक बार स्वय उसके पास चलना चाहिये। सुमन मुझसे कभी नाराज नही हो सकती और जो नाराज भी हो तो क्या

मैं उसे मना नहीं सकता ? मैं उसके सामने हाथ जोड़ूंगा उसके पैर पड़ूंगा और अपने आँसुओंसे उसके मनकी मैल धो दूंगा, वह मुझसे कितनी रूठे, लेकिन मेरे प्रेमका चिन्ह अपने हृदय से नही मिटा सकती। आह ! वह अगर अपने कमल नेत्रोंमे आंसू भरे हुए मेरी ओर ताके तो मैं उसके लिये क्या न कर डालूँगा ? यदि उसे कोई चिंता हो तो मैं उस चिंताको दूर करनेके लिये अपने प्राण तक समर्पण कर दूंगा। तो क्या वह इस अपराधको क्षमा न करेगी ? लेकिन ज्योंही वह दालमंडीके सामने पहुँचा, उसकी यह प्रेम कामनाएँ उसी प्रकार नष्ट हो गई जैसे अपने गाँवमे सन्ध्या समय नीमके नीचे देवीकी मूर्ति देखकर उसकी तर्कनाएँ नष्टहो जाती थी। उसने सोचा, कही वह मुझे देखे और अपने मनमे कहे, 'वह जा रहे है कुँअर साहब, मानों सचमुच किसी रियासतके मालिक है। कैसा कपटी धूर्त है !' यह सोचते ही उसके पैर बँध गये। आगे न जा सका।

इसी प्रकार कई दिन बीत गये। रात और दिनमें उसकी प्रेमकल्पनाएँ जो बालूकी दीवार खडी करती, वे सन्ध्या समय दालमंडी के सामने अविश्वासके एक ही झोकेमें गिर पडती थीं।

एक दिन वह घूमते हुए कुईन्स पार्क जा निकला वहाँ एक शामियाना तना हुआ था और लोग बैठे हुए प्रोफेसर रमेशदत्तका प्रभावशाली व्याख्यान सुन रहे थे। सदन घोडेसे उतर पडा और व्याख्यान सुनने लगा। उसने मनमे निश्चय किया कि वास्तवमे वेश्याओंसे हमारी बड़ी हानि हो रही है। ये समाजके लिये हलाहलके तुल्य हैं। मैं बहुत बचा, नहीं तो कहीं का न रहता। इन्हें अवश्य शहरसे बाहर निकाल देना चाहिए। यदि ये बाजारमें न होती तो मैं सुमनबाईके जाल मे कभी न फँसता।

दूसरे दिन वह फिर कुईन्स पार्ककी तरफ गया। आज वहां मुन्शी अबुलवफाका भावपूर्ण ललित व्याख्यान हो रहा था। सदनने उसे भी ध्यानसे सुना। उसने विचार किया, निस्सन्देह वेश्याओंसे हमारा उपकार होता है। सच तो है, ये न हो तो हमारे देवताओंकी स्तुति करनेवाला भी कोई न रहे। यह भी ठीक ही कहा कि वेश्यागृह ही वह स्थान है जहां हिन्दू

मुसलमान दिल खोलकर मिलते है, जहाँ द्वेषका वास नहीं है, जहाँ हम जीवन सग्रामसे विश्राम लेनेके लिये अपने हृदयके शोक और दुःख भुलाने के लिये शरण लिया करते है। अवश्य ही उन्हे शहरसे निकाल देना उन्ही पर नही, वरन् सारे समाजपर घोर अत्याचार होगा।

कई दिनके बाद यह विचार फिर पलटा खा गया। यह क्रम वन्द न होता था। सदनमे स्वच्छद विचारकी योग्यता न थी। वह किसी विषयके दोष और गुण तौलने और परखनेकी सामर्थ्य न रखता था। अतएव प्रत्येक सबल युक्ति उसके विचारोंको उलट-पलट देती थी।

उसने एक दिन पद्मसिहके व्याख्यानका नोटिस देखा। तीनही वजेसे चलनेकी तैयारी करने लगा और चार बजे वेनीवागमे जा पहुँचा। अभी वहाँ कोई आदमी न था, कुछ लोग फर्श बिछा रहे थे। वह घोडेसे उतर पड़ा और बिछानेमे लोगोंकी मदद करने लगा। पाँच वजते वजते लोग आने लगे और आध घंटेमे वहाँ हजारों मनुष्य एकत्र हो गये। तव उसने एक फिटनपर पद्मसिहको आते देखा। उसकी छाती धड़कने लगी। पहले रुस्तमभाईने एक छोटीसी कविता पढ़ी, जो इस अवसरके लिये सैयद तेग अलीने रची थी। उसके बैठनेपर लाला विठ्ठलदास खडे हुए। यद्यपि उनकी वक्तृता रूखी थी, न कही भाषण लालित्यका पता था, न कटाक्षोंका, पर लोग उनकी बातोंको बड़े ध्यानसे सुनते रहे। उनके नि स्वार्थ सार्वजनिक कृत्योके कारण उनपर जनताकी वडी श्रद्धा थी। उनकी रूखी बातों को लोग ऐसे चावसे सुनते थे जैसे प्यासा मनुष्य पानी पीता है। उनके पानीके सामने दूसरोका शर्वत फीका पड जाता था। अन्तमे पद्मसिह उठे। सदनके हृदयमे गुदगुदी-सी होने लगी, मानों कोई असाधारण वात होने वाली है। व्याख्यान अत्यत रोचक और करुणारस से परिपूर्ण था। भाषाकी सरलता और सरसता मनको मोहती थी। बीच-बीचमे उनके शब्द ऐसे भाव पूर्ण हो जाते कि सदनके रोएँ खडे हो जाते थे। वह कह रहे थे कि हमने वेश्याओको शहरके बाहर रखनेका प्रस्ताव इसलिए नही किया कि हमे उनसे घृणा है। हमे उनसे घृणा करनेका कोई अधिकार नही है। यह उनके

नही किया; तुमको तो मैंने अपनी प्रेम सपत्ति सौंप दी थी। क्या उसका तुम्हारी दृष्टिमे कुछ भी मूल्य नही है ?" सदन फिर चौंक पडता और मनको उधरसे हटानेकी चेष्टा करता। उसने एक व्याख्यानमे सुना था कि मनुष्यका जीवन अपने हाथोमे है, वह अपनेको जैसा चाहे बना सकता है, इसका मूल मन्त्र यही है कि बुरे, क्षुद्र, अश्लील विचार मनमे न आने पावे, वह बलपूर्वक इन विचारोंको हटाता रहे और उत्कृष्ट विचारो तथा भावोसे हृदयको पवित्र रक्खे। सदन इस सिद्धातको कभी न भूलता था। उस व्याख्यानमें उसने यह भी सुना था कि जीवनको उच्च बनानेके लिये उच्च शिक्षाकी आवश्यकता नही, केवल शुद्ध विचारो और पवित्र भावोकी आवश्यकता है। सदनको इस कथनमे बड़ा सतोष हुआ था। इसलिये वह अपने विचारोको निर्मल रखनेका यत्न करता रहता। हजारों मनुष्योने उस व्याख्यानमे सुना था कि प्रत्येक कुविचार हमारे इस जीवनको नही, आने वाले जीवन को भी नीचे गिरा देता है। लेकिन औरोंने जो कुछ विज्ञ थे, सुना और भूल गये, सरल हृदय सदनने सुना और उसे गाँठमे बाँध लिया। जैसे कोई दरिद्र मनुष्य सोनेकी एक गिरी हुई चीज पा जाय और उसे अपने प्राणसे भी प्रिय समझे। सदन इस समय आत्म-सुधारकी लहरमे बह रहा था। रास्तेमे अगर उसकी दृष्टि किसी युवती पर पड़ जाती तो तुरन्त ही अपनेको तिरस्कृत करता और मनको समझाता, क्या इस क्षणभरके नेत्र सुखके लिये तू अपने भविष्य जीवन का सर्वनाश किये डालता है। इस चेतावनीसे उसके मनको शान्ति होती थी।

एक दिन सदनको गगास्नानके लिए जाते हुए चौकमें वेश्याओका एक जुलूस दिखाई दिया। नगरकी सबमे नामी गिरामी वेश्याने एक उर्स (धार्मिक जलसा) किया था। यह वेश्याएँ वहाँसे वापस आ रही थीं। सदन इस दृश्यको देखकर चकित हो गया। सौंदर्य, सुवर्ण, और सौरभका ऐसा चमत्कार उसने कभी न देखा था। रेशम, रंग और रमणीयता का ऐसा अनुपम दृश्य, शृङ्गार और जगमगाहटकी ऐसी अद्भुत छटा उसके लिए बिलकुल नई थी, उसने मनको बहुत रोका, पर न रोक सका। उसने उन

अलौकिक सौंदर्य-मूर्त्तियोंको एक वार आँख भरकर देखा, जैसे कोई विद्यार्थी महीनोके कठिन परिश्रमके वाद परीक्षासे निवृत्त होकर आमोद प्रमोद मे लीन हो जाय। एक निगाहसे मन तृप्त न हुआ तो उसने फिर निगाह दौड़ाई, यहाँ तक कि उसकी निगाहो उस तरफ जम गई और वह चलना भूल गया। मूर्तिके समान खडा रहा। जव जुलूस निकल गया तो उसे सुधि आई, चौका, मनको तिरस्कृत करने लगा। तूने महीनोंकी कमाई एक क्षणमे गँवाई ? वाह ! मैंने अपनी आत्माका कितना पतन कर दिया ? मुझमे कितनी निर्वलता है ? लेकिन अन्तमे उसने अपनेको समझाया कि केवल इन्हे देखने ही से मैं पापका भागी थोडे ही हो सकता हूँ ? मैंने इन्हे पाप-दृष्टिसे नही देखा। मेरा हृदय कुवासनाओसे पवित्र है। परमात्माकी सौदर्य सृष्टिसे पवित्र आनन्द उठाना हमारा कर्तव्य है।

यह सोचते हुए वह आगे चला, पर उसकी आत्माको सतोष न हुआ। मै अपने ही को धोखा देना चाहता हूँ ? यह स्वीकार कर लेनेमे क्या आपत्ति है कि मुझसे गल्ती हो गई, हॉ हुई और अवश्य हुई। मगर मनकी वर्तमान अवस्थाके अनुसार मै उसे क्षम्य समझता हूँ। मैं योगी नही, सन्यासी नही, एक वुद्धिहीन मनुष्य हूँ। इतना ऊँचा आदर्श सामने रखकर मैं उसका पालन नही कर सकता। आह ! सौंदर्य भी कैसी वस्तु है। लोग कहते हैं कि अधर्म से मुखकी शोभा जाती रहती है। पर इन रमणियोका अधर्म उनकी शोभाको और भी वढाता है। कहते है मुख सौंदर्य का दर्पण है। पर यह वात भी मिथ्या ही जान पडती है।

सदनने फिर मनको सँभाला और उसे इस ओरसे विरक्त करनेके लिये इस विषयके दूसरे पहलूपर विचार करने लगा। हॉ वे स्त्रियाँ वहुत ही सुन्दर है, वहुत ही कोमल है, पर उन्होंने अपने इन स्वर्गीय गुणोका कैसा दुरुपयोग किया है। उन्होंने अपनी आत्माको कितना गिरा दिया है। हा ! केवल इन रेशमी वस्त्रोके लिये, इन जगमगाते हुए आभूषणोके लिये उन्होंने अपनी आत्माओंका विक्रय कर डाला है। वे ऑखे जिनसे प्रेमकी ज्योति निकलनी चाहिये थी, कपट कटाक्ष और कुचेष्टाओसे भरी हुई हैं।

वे हृदय जिनमे विशुद्ध निर्मल प्रेमका स्रोत वहना चाहिये था, कितने दुर्गंध विशाक्त मलिनतासे ढँके हुए हैं । कितनी अधोगति है ।

इन घृणात्मक विचारोमे सदनको कुछ शान्ति हुई । वह टहलता हुआ गगातटकी ओर चला । इसी विचारमे आज उसे देर हो गई थी । इसलिये वह उस घाट पर न गया । जहाँ वह नित्य नहाया करता था । वहाँ भीड भाड़ हो गई होगी । अतएव उस घाटपर गया जहाँ विधवाश्रम स्थित था । वहाँ एकात रहता था । दूर होनेके कारण शहरके लोग वहाँ कम जाते थे ।

घाटके निकट पहुँचनेपर सदनने एक स्त्रीको घाटकी ओरसे जाते देखा । तुरन्त पहचान गया । यह सुमन थी, पर यह कितनी बदली हुई । न वह लबे लबे केश थे, न वह कोमल गति, न वह हँसते हुए गुलाबके-से होठ, न वह चचल ज्योतिसे चमकती हुई आँख न वह बनाव सिगार, न वह रत्न जटित आभूषणोकी छटा', वह वेवल सफेद साडी पहने हुए थी । उसकी चालमे गभारता और मुखसे नैराश्य और वैराग्य भाव झलकता था काव्य वही था, पर अलकार विहीन, इसलिये सरल और मार्मिक । उसे देखते ही सदन प्रेमसे विह्वल होकर, कई पग वड़े वेगसे चला, पर उसका यह रूपातर देखा तो ठिठक गया, मानो उसे पहचाननेमे भूल हुई, मानो वह सुमन नही कोई और स्त्री थी । उसका प्रेमोत्साह भंग हो गया । समझमे न अया कि यह कायापलट क्यो हो गई ? उसने फिर सुमनकी ओर देखा, वह उसकी ओर ताक रही थी, पर उसकी दृष्टिमे प्रेमकी जगह एक प्रकारकी चिता थी, मानो वह उन पिछली बातोको भूल गई है, या भूलना चाहती है । मानो वह हृदयकी दबी हुई आगको उभारना नही चाहती । सदनको ऐसा अनुमान हुआ कि वह मुझे नीच, धोखेबाज और स्वार्थी समझ रही है । उसने एक क्षणके वाद फिर उसकी ओर देखा । यह निश्चय करनेके लिये कि मेरा अनुमान भ्रातिपूर्ण तो नही है । फिर दोनों की आंखे मिली पर मिलते ही हट गईं । सदनको अपने अनुमानका निश्चय हो गया । निश्चयके साथ ही अभिमानका उदय हुआ । उसने अपने मनको धिक्कारा । अभी-अभी मैने अपने को इतना समझाया है और इतनी ही देरमे फिर उन्ही

कुवासनाओंमे पड गया। उसने फिर सुमनकी तरफ नही देखा। वह सिर झुकाये उसके सामनेसे निकल गई। सदनने देखा, उसके पैर काँप रहे थे, वह जगहसे न हिला, कोई इशारा भी नही किया। अपने विचारमे उसने सुमनपर सिद्ध कर दिया कि अगर तुम मुझसे एक कोस भागोगी तो मै तुमसे सौ कोस भागनेको प्रस्तुत हूँ। पर उसे यह ध्यान न रहा कि मै अपनी जगहपर मूर्तिवत् खडा हूँ। जिन भावोको उसने गुप्त रखना चाहा, स्वय उन्ही भावोकी मूर्ति बन गया।

जब सुमन कुछ दूर निकल गई तो वह लौट पडा और उसके पीछे अपनेको छिपाता हुआ चला। वह देखना चाहता था कि सुमन कहाँ जाती है। विवेकने वासनाके आगे सिर झुका लिया।

३९

जिस दिनसे बारात लौट गई, उसी दिनसे कृष्णचन्द्र फिर घरसे बाहर नही निकले। मन मारे हुए अपने कमरेमे बैठे रहते। उन्हे अब किसीको अपना मुँह दिखाते लज्जा आती थी। दुश्चरित्रा सुमनने उन्हे संसारकी दृष्टिमे चाहे कम गिराया हो, पर वे अपनी दृष्टिमे कहीके न रहे। वे अपने अपमान को सहन न कर सकते थे। वे तीन चार साल कैद रहे, फिर भी अपनी आँखोमे इतने नीचे नही गिरे थे। उन्हे इस विचारसे सतोष हो गया था कि यह दड भोग मेरे कुकर्मका फल है, इस कालिमा ने उनके आत्म-गौरवका सर्वनाश कर दिया। वे अब नीच मनुष्योके पास भी नही जाते थे, जिनके साथ बैठकर वह चरसकी दम लगाया करते थे। वे जानते थे कि मै उनसे भी नीचे गिर गया हूँ। उन्हें मालूम होता था कि सारे ससारमे मेरी ही निन्दा हो रही है। लोग कहते होगे कि इसकी बेटी, यह ख्याल आते ही वह लज्जा और विषाद के सागरमे निमग्न हो जाते। हाय! यदि मै जानता कि वह यो मर्यादाका नाश करेगी तो मैंने उसका गला घोंट दिया होता। यह मै जानता हूँ कि वह अभागिनी थी, किसी बड़े धनी कुलमे रहने योग्य थी, भोग विलासपर जान देती थी। पर यह मै न जानता था कि

उसकी आत्मा इतनी निर्बल है । संसारमे किसके दिन समान होते है ? विपत्ति सभीपर आती है । बड़े-बड़े धनवानोंकी स्त्रियाँ अन्न वस्त्रको तरसती है पर कोई उनके मुखपर चिन्ताका चिन्ह भी नही देख सकता । वे रो रोकर दिन काटती है, कोई उनके आँसू नही देखता । वे किसीके सामने अपनी विपत्तिकी कथा नहीं कहती । वे मर जाती है पर किसीका एहसान सिरपर नही लेती । वे देवियाँ है । वे कुल मर्यादाके लिये जीती है और उसकी रक्षा करती हुई मरती है, पर यह दुष्टा, यह अभागिनी.... और उसका पति कैसा कायर है कि उसने उसका सिर नही काट डाला । जिस समय उसने घरसे बाहर पैर निकाला, उसनें क्यो उसका गला नही दबा दिया ? मालूम होता है वह भी नीच, दुराचारी नामर्द है । उसमे अपनी कुलमर्य्यादाका अभिमान होता तो यह नौबत न आती । उसे अपने अपमानकी लाज न होगी पर मुझे है और मै सुमनको इसका दण्ड दूंगा । जिन हाथोसे उसे पाला, खिलाया, उन्ही हाथोसे उसके गलेपर तलवार चलाऊँगा । यही आँखे कभी उसे खेलती देखकर प्रसन्न होती थी, अब उसे रक्तमे लोटती देखकर तृप्त होगी । मिटी हुई मर्यादाके पुनरुद्धारका इसके सिवाय कोई उपाय नही । संसारको मालूम हो जायगा कि कुल मर्य्यादापर मरनेवाले पापाचरण का क्या दड देते है ।

यह निश्चय करके कृष्णचन्द्र अपने उद्देश्यको पूरा करनेके साधनोपर विचार करने लगे । जेलखानेमे उन्होंने अभियुक्तोसे हत्याकांडके कितने ही मन्त्र सीखे थे । रात दिन इन्ही बातोकी चर्चाएँ रहती थी । उन्हें सबसे उत्तम साधन यही मालूम हुआ कि चलकर तलवारसे उसको मारूँ और तब पुलिसमें जाकर आपही इसकी खबर दूं । मैजिस्ट्रेटके सामने मेरा जो बयान होगा उसे सुनकर लोगोकी आँखें खुल जायगी । मन-ही-मन इस प्रस्तावसे पुलकित होकर वह उस बयान को रचना करने लगे । पहले कुछ सभ्य समाजकी विलासिताका उल्लेख करूँगा, तब पुलिसके हथकडोकी कलई खोलूगा, इसके पश्चात् वैवाहिक अत्याचारोका वर्णन करूँगा । दहेज प्रथा पर ऐसी चोट करूँगा कि सुनकर लोग दग रह जांय । पर

पर सबसे महत्वशील वह भाग होगा जिसमें मैं दिखाऊँगा कि अपनी कुल मर्यादाके मिटानेवाले हम हैं। हम अपनी कायरतासे, प्राणभयसे, लोकनिन्दाके डरसे, झूठे संतान प्रेमसे, अपनी बेहयाईसे, आत्मगौरवकी हीनतासे ऐसे पापाचरणोंको छिपाते हैं, उन पर परदा डाल देते हैं। इसीका यह परिणाम है कि दुर्बल आत्माओंका साहस इतना बढ़ गया है।

कृष्णचन्द्रने यह संकल्प तो कर लिया पर अभी तक उन्होंने यह न सोचा कि शान्ताकी क्या गति होगी। इस अपमानकी लज्जाने उनके हृदयमें और किसी चिन्ताके लिये स्थान न रखा था। उनकी दशा उस मनुष्यकी-सी थी जो अपने बालकको मृत्युशय्यापर छोड़कर अपने किसी शत्रुसे वैर चुकानेके लिये उद्यत हो जाय, जो डोंगीपर बैठा हुआ पानीमें एक सर्प देखकर उसे मारनेके लिये झपटे और उसे यह सुधि न रहे कि इस झपटसे डोंगी डूब जायगी।

सध्याका समय था। कृष्णचन्द्रने आज हत्या मार्गपर चलनेका निश्चय कर लिया था। इस समय उनका चित्त कुछ उदास था। यह वही उदासीनता थी जो किसी भयंकर कामके पहले चित्तपर आच्छादित हो जाया करती है। कई दिनों तक क्रोधके वेगसे उत्तेजित और उन्मत्त रहनेके बाद उनका मन इस समय जछ शिथिल हो गया था जैसे वायु कुछ समयतक वेगसे चलनेके बाद शान्त हो जाती है। चित्तकी ऐसी अवस्थामें यह उदासीनता बहुत ही उपयुक्त होती है। उदासीनता वैराग्यका एक सूक्ष्म स्वरूप है जो थोड़ी देरके लिए मनुष्यको अपने जीवनपर विचार करने की क्षमता प्रदान कर देती है, उस समय कि जब पूर्वस्मृतियाँ हृदयमें क्रीड़ा करने लगती हैं। कृष्णचन्द्रको वह दिन याद आ रहे थे जब उनका जीवन आनन्दमय था, जब वे नित्य सन्धा समय अपनी दोनों पुत्रियोंको साथ लेकर सैर करने जाया करते थे। कभी सुमनको गोद उठाते, कभी शान्ता को जब वे लौटते तो गंगाजली किसी तरह प्रेमसे दौड़कर दोनों लड़कियोंको प्यार करने लगती थी। किसी आनन्दका अनुभव इतना सुखद नहीं होता जितना उसका स्मरण। वही जंगल और पहाड़ जो कभी आपको सुनसान और

वीहड़ प्रतीत होते थे; वही नदियाँ और झील जिनके तटपरसे आप आँखें वन्द किये निकल जाते थे, कुछ समयके पीछे एक अत्यंत मनोरम, शान्तिमय रूप धारण करके आपके स्मृति-नेत्रोंके सामने आती है और फिर आप उन्हीं दृश्योंको देखनेकी आकांक्षा करने लगते हैं। कृष्णचन्द्र उस भूत-कालिक जीवनका स्मरण करते-करते गद्‌गद्‌ हो गये। उनकी आँखोंसे आँसूकी बूँद टपक पड़ी। हाय ! उस आनन्दमय जीवनका ऐसा विषाद-मय अन्त हो रहा है! मैं अपने ही हाथोंसे अपनी ही गोदकी खिलाई हुई लड़कीका वध करनेको प्रस्तुत हो रहा हूँ। कृष्णचन्द्रको सुमनपर दया आई। वह वेचारी कुएँमें गिर पड़ी है। क्या मैं अपनी ही लड़कीपर, जिसे मैं आँखोंकी पुतली समझता था, जिसे सुखसे रखनेके लिये मैंने कोई वात उठा नहीं रखी, इतना निर्दय हो जाऊँ कि उसपर पत्थर फेकूँ ? लेकिन यह दयाका भाव कृष्णचन्द्रके हृदयमें देर तक न रह सका। सुमनके पापाभिनय-का सबसे घृणोत्पादक भाग यह था कि आज उसका दरवाजा सबके लिये खुला हुआ है। हिन्दू, मुसलमान सब वहाँ प्रवेश कर सकते हैं। यह ख्याल आते ही कृष्णचन्द्रका हृदय लज्जा और ग्लानिसे भर गया।

इतनेमें पडित उमानाथ उनके पास आकर बैठ गये और बोले, मैं वकीलके पास गया था। उनकी सलाह है कि मुकद्दमा दायर करना चाहिये।

कृष्णचन्द्रने चौंककर पूछा कैसा—मुकद्दमा ?

उमा—उन्हीं लोगोंपर, जो द्वारसे वारात लौटा ले गये।

कृष्ण—इससे क्या होगा ?

उमा—इससे यह होगा कि या तो वह फिर कन्यासे विवाह करेंगे या हरजाना देंगे।

कृष्ण—पर क्या और वदनामी न होगी ?

उमा—वदनामी जो कुछ होनी थी हो चुकी, अब किस वातका डर है ? मैंने एक हजार रुपये तिलकमें दिये, चार-पाँचसौ खिलाने-पिलानेमें खर्च किये, यह सब क्यों छोड़ दूंगा, यही रुपये किसी कंगाल कुलीनको दे

दूँगा तो वह खुशीसे विवाह करनेपर तैयार हो जायगा। जरा इन शिक्षित महात्माओंकी कलई तो खुलेगी !

कृष्णचन्द्रने लंबी सांस लेकर कहा, पहले मुझे विष दे दो, तब यह मुकद्दमा दायर करो।

उमानाथने क्रुद्ध होकर कहा, आप क्यो इतना डरते है ?

कृष्णचन्द्र—मुकद्दमा दायर करनेका निश्चय कर लिया है ?

उमा—हाँ, मैंने निश्चय कर लिया है। कल सारे शहरके बड़े-बडे वकील बैरिस्टर जमा थे। यह मुकद्दमा अपने ढंगका निराला है। उन लोगोने बहुत कुछ देख-भालकर तब यह सलाह दी है। दो वकीलोको बयानातक दे आया हूँ।

कृष्णचन्द्रने निराश होकर कहा, अच्छी बात है, दायर कर दो।

उमा—आप इससे असन्तुष्ट क्यों है ?

कृष्ण—जब तुम आपही नही समझते तो मै क्या बताऊँ ? जो बात अभी दो चार गाँवमे फैली है वह सारे शहरमे फैल जायगी। सुमन अवश्य ही इजलास पर बुलाई जायगी, मेरा नाम गली-गली बिकेगा।

उमा—अब इससे कहाँ तक डरूँ ? मुझे भी अपनी दो लड़कियोका विवाह करना है। यह कलंक अपने माथे लगाकर उनके विवाहमे क्यो बाधा डालूँ ?

कृष्ण—तो तुम यह मुकद्दमा इसलिये दायर करते हो, जिसमे तुम्हारे नामपर कोई कलक न रहे।

उमानाथने सगर्व कहा, हाँ, अगर आप उसका यह अर्थ लगाते है तो यही सही। बारात मेरे द्वारसे लौटी है, लोगोंको भ्रम हो रहा है कि सुमन मेरी लड़की है। सारे शहरमे मेरा ही नाम लिया जा रहा है। मेरा दावा दस हजारका होगा, अगर पाँच हजारकी डिगरी हो गयी तो शान्ताका किसी उत्तम कुलमे ठिकाना लग जायगा। आप जानते है, जूठी वस्तुको मिठासके लोभसे लोग खाते है। जब तक रुपयेका लोभ न होगा शान्ताका विवाह कैसे होगा ? एक प्रकारसे मेरे कुलमे भी कलक लग गया। पहले

वह अपनी वाणीसे कह सकती थी। उसके मनने कहा, जिसे पतिव्रत जैसा साधन मिल गया है उसे और किसी साधनकी क्या आवश्यकता? इसमे सुख, सन्तोष और शान्ति सब कुछ है।

आधी रात बीत चुकी थी। कृष्णचन्द्र घरसे बाहर निकले। प्रकृति सुन्दरी किसी वृद्धाके समान कुहरेकी मोटी चादर ओढे निद्रामें मग्न थी? आकाशमे चन्द्रमा मुंह छिपाये हुए वेगसे दौडा चला जाता था, मालूम नहीं कहाँ?

कृष्णचन्द्रके मनमे एक तीव्र आकांक्षा उठी, शान्ताको कैसे देखूं। संसारमे यही एक वस्तु उनके आनन्दमय जीवनका चिह्न रह गई थी। नैराश्यके घने अन्धकारमें यही एक ज्योति उनको अपने मनकी ओर खींच रही थी। वह कुछ देर तक द्वार पर चुपचाप खड़े रहे तब एक लंबी साँस लेकर आगे बढे। उन्हे ऐसा मालूम हुआ मानो गंगाजली आकाशमें बैठी हुई उन्हे बुला रही है।

कृष्णचन्द्रके मनमे इस समय कोई इच्छा, कोई अभिलाषा, कोई चिन्ता न थी। संसारसे उनका मन विरक्त हो गया था। वह चाहते थे कि किसी प्रकार जल्दी गगातटपर पहुँचूं और उसके अथाह जलमे कूद पडूं। उन्हे भय था कि कही मेरा साहस न छूट जाय। उन्होंने अपने संकल्पको उत्तेजित करनेके लिये दौडना शुरू किया।

लेकिन थोडी ही दूर चलकर वह फिर ठिठक गये और सोचने लगे। पानी में कूद पडना ऐसा क्या कठिन है, जहाँ भूमिसे पैर उखडे कि काम तमाम हुआ। यह स्मरण करके उनका हृदय एक बार कॉप उठा, अकस्मात् यह बात उनके ध्यानमे आई कि कही निकल क्यो न जाऊँ? जब यहाँ रहूँगा ही नही तो अपना अपमान कैसे सुनूंगा? लेकिन इस बातको उन्होंने मनमे जमने न दिया। मोहकी कपटलीला उन्हे धोखा न दे सकी। यद्यपि वह धार्मिक प्रकृतिके मनुष्य नहीं थे और अदृश्यके एक अव्यक्त भयसे उनका हृदय कॉप रहा था, पर अपने संकल्पको दृढ़ रखनेके लिये वह अपने मनको यह विश्वास दिला रहे थे कि परमात्मा बड़ा दयालु और करुणाशील

है। आत्मा अपने को भूल गई थी। वह उस बालकके समान थी जो अपने किसी सखाके खिलौने तोड़ डालनेके बाद अपने ही घरमे जाते डरता है।

कृष्णचन्द्र इसी प्रकार आगे बढते हुए कोई चार मील चले गये। ज्यों-ज्यो गंगातट निकट होता जाता था, त्यो-त्यो उनके हृदयकी गति बढती जाती थी। भयसे चित्त अस्थिर हुआ जाता था। लेकिन वे इस आन्तरिक निर्बलताको कुछ तो अपने वेग और कुछ तिरस्कारसे हटानेकी चेष्टा कर रहे थे। हा! मै कितना निर्लज्ज, आत्मशून्य हूँ। इतनी दुर्दशा होने पर भी मरनेसे डरता हूँ। अकस्मात् उन्हे किसीके गानेकी ध्वनि सुनाई दी। ज्यो-ज्यों वे आगे बढते थे, त्यों-त्यो वह ध्वनि निकट आती जाती थी। गाने वाला उन्हीकी ओर चला आ रहा था। उस निस्तब्ध रात्रिमे कृष्ण-चन्द्रको वह गाना अत्यंत मधुर मालूम हुआ। कान लगाकर सुनने लगे :

हरिसों ठाकुर और न जनको।
जेहि जेहि विधि सेवक सुख पावै तेहि विधि राखत तिनको॥
हरिसों ठाकुर और न जनको।
भूखेको भोजन जु उदरको तृषा तोय पट तनको।
लाग्यो फिरत सुरभी ज्यों सुत सग उचित गमन गृह वनको॥
हरिसो ठाकुर और न जनको॥

यद्यपि गान माधुर्य-रस पूर्ण न था, तथापि वह शास्त्रोक्त था इसलिये कृष्णचन्द्रको उसमें बहुत आनन्द प्राप्त हुआ। उन्हे इस शास्त्रका अच्छा ज्ञान था। इसने उनके विदग्ध हृदयको शान्ति प्रदान कर दी।

गाना बन्द हो गया और एक क्षणके बाद कृष्णचन्द्रने एक दीर्घकाय जटाधारी साधुको अपनी ओर आते देखा। साधुने उनका नाम और स्थान पूछा। उसके भावसे ऐसा ज्ञात हुआ कि वह उनसे परिचित है। कृष्ण-चन्द्र आगे बढना चाहते थे कि उसने कहा, इस समय आप इधर कहाँ जा रहे हैं?

कृष्णचन्द्र—कुछ ऐसा ही काम आ पडा है।

साधु—आधी रातको आपका गंगातटपर क्या काम हो सकता है ?

कृष्णचन्द्रने रुष्ट होकर उत्तर दिया, आपतो आत्मज्ञानी हैं। आपको स्वयं जानना चाहिये।

साधु—आत्मज्ञानी तो मैं नहीं हूँ, केवल भिक्षुक हूँ, इस समय मैं आपको उधर न जाने दूंगा।

कृष्णचन्द्र—आप अपनी राह जाइये। मेरे काममे विघ्न डालनेका आपको क्या अधिकार है ?

साधु—अधिकार न होता तो मैं आपको रोकता ही नही। आप मुझसे परिचित नही है, पर मैं आपका धर्मपुत्र हूँ, मेरा नाम गजाधर पाँडे है।

कृष्णचन्द्र—ओहो ! आप गजाधर पांडे हैं। आपने यह भेष कबसे धारण कर लिया ? आपसे मिलनेकी मेरी बहुत इच्छा थी, मैं आपसे बहुत कुछ पूछना चाहता था।

गजाधर—मेरा स्थान गंगातटपर एक वृक्षके नीचे है, चलिये वहाँ थोडी देर विश्राम कीजिये, मैं सारा वृत्तात आपसे कह दूंगा।

रास्तेमे दोनों मनुष्योंमें कुछ बातचीत न हुई। थोडी देरम वे उस वृक्षके नीचे पहुँच गये, जहाँ एक मोटासा कुन्दा जल रहा था। भूमिपर पुआल बिछा हुआ था और एक मृग चर्म, एक कमडल और एक पुस्तको का बस्ता उसपर रखा हुआ था।

कृष्णचन्द्र आग तापते हुए बोले, आप साधु हो गये हैं, सत्य ही कहियेगा, सुमनकी यह कुप्रवृत्ति कैसे हो गई ?

गजाधर अग्निके प्रकाशमें कृष्णचन्द्रके मुखकी ओर मर्मभेदी दृष्टिसे देख रहे थे। उन्हे उनके मुखपर उनके हृदयके समस्त भाव अकित देख पडते थे। वह अब गजाधर न थे। सत्सग और विरक्तिने उनके ज्ञानको विकसित कर दिया था। वह उस घटना पर जितना ही विचार करते थे उतना ही उन्हे पश्चात्ताप होता था। इस प्रकार अनुतप्त होकर उनका

हृदय सुमनकी ओरसे बहुत उदार हो गया था। कभी-कभी उनका जी चाहता था कि चलकर उसके चरणोंपर सिर रख दूं।

गजाधार बोले, इसका कारण मेरा अन्याय था। यह सब मेरी निर्दयता और अमानुषीय व्यवहार का फल है। वह सर्वगुण सपन्न थी, वह इस योग्य थी कि किसी बड़े घरकी स्वामिनी बनती। मुझ जैसा दुष्ट दुरात्मा दुराचारी मनुष्य उसके योग्य न था। उस समय मेरी स्थूल दृष्टि उसके गुणोको न देख सकी। ऐसा कोई कष्ट न था जो उस देवीको मेरे साथ न झेलना पडा हो। पर उसने कभी मन मैला न किया। वह मेरा आदर करती थी। पर उसका यह व्यवहार देखकर मुझे उसपर सदेह होता था कि वह मेरे साथ कोई कौशल कर रही है। उसका सतोष, उसकी भक्ति, उसकी गभीरता मेरे लिये दुर्बोध थी। मैं समझता था, वह मुझसे कोई चाल चल रही है। अगर वह मुझसे छोटी-छोटी वस्तुओंके लिये झगड़ा करती, रोती, कोसती, ताने देती तो उसपर मुझे विश्वास होता। उसका ऊँचा आदर्श मेरे अविश्वासका कारण हुआ। मैं उसके सतीत्वपर संदेह करने लगा। अन्तको यह दशा हो गई कि एक दिन रातको एक सहेलीके घरपर केवल जरा विलब हो जानेके कारण मैंने उसे घरसे निकाल दिया।

कृष्णचन्द्र बात काटकर बोले, तुम्हारी बुद्धि उस समय कहाँ गई थी? तुमको जरा भी ध्यान न रहा कि तुम अपनी इस निर्दयतासे कितने बडे कुलको कलकित कर रहे हो?

गजाधर—महाराज, अब मैं क्या बताऊँ कि मुझे क्या हो गया था? मैंने फिर उसकी सुध न ली। पर उसका अन्त.करण शुद्ध था? पापाचरणसे उसे घृणा थी। अब वह विधवाश्रममे रहती है और सब उससे प्रसन्न है। उसकी धर्मनिष्ठा देखकर लोग चकित हो जाते है।

गजाधरकी बाते सुनकर कृष्णचन्द्रका हृदय सुमनकी ओरसे कुछ नरम पड गया। लेकिन वह जितना ही इधर नरम था उतना ही दूसरी ओर कठोर हो गया। जैसे साधारण गतिसे बहती हुई जलधारा सामने रुककर दूसरी ओर और भी वेगसे बहने लगती है। उन्होंने गजाधरको सरोष नेत्रोंसे

देखा, जैसे कोई भूखा सिंह अपने शिकारको देखता है। उन्हें निश्चय हो रहा था कि यही मनुष्य मेरे कुलको कलंकित करनेवाला है। इतना ही नहीं, उसने सुमनके साथ भी अन्याय किया है। उसे नाना प्रकारके कष्ट दिये हैं। क्या मैं उसे केवल इसलिये छोड़ दूं कि वह अब अपने दुष्कृत्योपर लज्जित है? लेकिन उसने यह बात मुझसे कह क्यो दी? कदाचित् वह समझता है कि मैं उसका कुछ नही बिगाड़ सकता। यही बात है, नही तो वह मेरे सामने अपना अपराध इतनी निर्भयतासे क्यो स्वीकार करता? कृष्णचन्द्रने गजाधरके मनोभावोंको न समझा। वह क्षणभर आगकी तरफ ताकते रहे, फिर कठोर स्वरसे बोले, गजाधर, तुमने मेरे कुलको डुबा दिया। तुमने मुझे कही मुँह दिखाने योग्य न रखा। तुमने मेरी लड़कीकी जान ले ली, उसका सत्यानाश कर दिया, तिसपर भी तुम मेरे सामने इस तरह बैठे हो मानो कोई महात्मा हो। तुम्हें चिल्लूभर पानीमे डूब मरना चाहिए।

गजाधर जमीनकी मिट्टी खुरच रहे थे। उन्होने सिर उठाया।

कृष्णचन्द्र फिर बोले, तुम दरिद्र थे, इसमे तुम्हारा दोष नही। तुम अगर अपनी स्त्रीका उचित रीतिसे पालन-पोषण नहीं कर सके तो इसलिये तुम्हें दोषी नही ठहराता। तुम उसके मनोभावोंको नही जान सके, उसके सद्विचारोका मर्म नही समझ सके, इसके लिए भी मैं तुम्हें दोषी नहीं ठहराता। तुम्हारा अपराध यह है कि तुमने उसे घरसे निकाल दिया। तुमने उसे मार क्यो नही डाला? अगर तुमको उसके पातिव्रतपर सन्देह था तो तुमने उसका सिर काट क्यों नही लिया? और यदि इतना साहस नहीं था तो स्वयं क्यों न प्राण त्याग कर दिया? विष क्यों न खा लिया? अगर तुमने उसके जीवन का अन्त कर दिया होता तो उसकी यह दुर्दशा न हुई होती, मेरे कुलमे यह कलंक न लगता। तुम भी कहोगे कि मैं पुरुष हूँ! तुम्हारी इस कायरतापर, इस निर्लज्जतापर धिक्कार है! जो पुरुष इतना नीच है कि अपनी स्त्रीको दूसरोंसे प्रेमालाप करते देखकर उसका रुधिर खौल नहीं उठता वह पशुओंसे भी गया बीता है।

गजाधरको अब मालूम हुआ कि सुमनको घरसे निकालनेकी बात

कहकर वह मानो ब्रह्मफाँसमे फँस गये। वह मनमे पछताने लगे कि उदारता की धुनमे मैं इतना असावधान क्यो हो गया। तिरस्कारकी मात्रा भी उनकी आशासे अधिक हो गई। वे न समझे थे कि वह यह रूप धारण करेगा और उससे मेरे हृदयपर इतनी चोट लगेगी। अनुतप्त हृदय वह तिरस्कार चाहता है जिसमे सहानुभूति और सहृदयता हो, वह नहीं जो अपमान सूचक और क्रूरतापूर्ण हो। पका हुआ फोडा नश्तरका घाव चाहता है, पत्थरका आघात नही। गजाधर अपने पश्चात्ताप पर पछताये। उनका मन अपना पूर्वपक्ष समर्थन करनेके लिये अधीर होने लगा।

कृष्णचन्द्रने गरजकर कहा, क्यो, तुमने उसे मार क्यों नही डाला?

गजाधरने गभीर स्वरमे उत्तर दिया, मेरा हृदय इतना कठोर नही था।

कृष्ण—तो घर से क्यों निकाला?

गजाधर—केवल इसलिये कि उस समय मुझे उससे गला छुड़ानेका और कोई उपाय न था।

कृष्णचन्द्रने मुंह चिढाकर कहा, क्यों जहर खा सकते थे।

गजाधर इस चोटसे बिलबिलाकर बोले, व्यर्थमें जान देता?

कृष्ण—व्यर्थ जान देना व्यर्थ जीनेसे अच्छा है?

गजाधर—आप मेरे जीनेको व्यर्थ नही कह सकते। आपसे पडित उमानाथने न कहा होगा, पर मैंने इसी याचना-वृत्तिसे उन्हे शान्ता के विवाह के लिए १५००) दिये है ओर इस समय भी उन्हीके पास यह १०००) लिये जा रहा था, जिससे वह कही उसका विवाह कर दे।

यह कहते कहते गजाधर चुप हो गये। उन्हे अनुभव हुआ कि इस बातका उल्लेख करके मैंने अपने ओछेपन का परिचय दिया। उन्होने सकोचसे सिर झुका लिया।

कृष्णचन्द्रने संदिग्ध स्वरसे कहा, उन्होंने इस विषयम मुझसे कुछ नही कहा।

गजाधर—यह कोई ऐसी बात भी नही थी कि वह आपसे कहते।

मैंने भी तो पाप किये हैं, पर कभी इस शक्तिका अनुभव नहीं किया। कुछ नहीं, यह सब इनके शब्दजाल हैं, इन्होंने अपनी कायरताको शब्दोंके आडम्बरमें छिपाया है, यह मिथ्या है, पापसे पाप ही उत्पन्न होगा, अगर पापसे पुण्य होता तो आज संसारमें कोई पापी न रह जाता।

यह सोचते हुए वे उठ बैठे, गजाधर भी आगके पास पड़े हुए थे। कृष्णचन्द्र चुपकेसे उठे और गंगातटकी ओर चले। उन्होंने निश्चय कर लिया था कि अब इन वेदनाओंका अन्त ही करके छोड़ूँगा।

चन्द्रमा अस्त हो चुका था। कुहरा और भी सघन हो गया था। अन्धकारने वृक्ष, पहाड़ और आकाशमें कोई अन्तर न छोड़ा था। कृष्णचन्द्र एक पगडंडी पर चल रहे थे, पर दृष्टिकी अपेक्षा अनुमानसे अधिक काम लेना पड़ता था। पत्थरके टुकड़ों और झाड़ियोंसे बचनेमें वह ऐसे लीन हो रहे थे कि अपनी अवस्थाका ध्यान न था।

करारके किनारे पहुँचकर उन्हें कुछ प्रकाश दिखाई दिया। वह नीचे उतरे। गंगा कुहरेकी मोटी चादर ओढ़े पड़ी कराह रही थी। आस-पासके अन्धकार और गंगामें केवल प्रवाहका अन्तर था। यह प्रवाहित अन्धकार था। ऐसी उदासी छाई हुई थी जो मृत्युके बाद घरोंमें छा जाती है।

कृष्णचन्द्र नदीके किनारे खड़े थे। उन्होंने विचार किया, हाय! अब मेरा अन्त कितना निकट है। एक पलमें यह प्राण न जाने कहाँ चले जायँगे। न जाने क्या गति होगी? संसारसे आज नाता टूटता है। परमात्मन् अब तुम्हारी शरण आता हूँ, मुझपर दया करो, ईश्वर मुझे सँभालो।

इसके बाद उन्होंने एक क्षण अपने हृदयमें बलका संचार किया। उन्हें मालूम हुआ कि मैं निर्भय हूँ। वह पानीमें घुसे। पानी बहुत ठंडा था। कृष्णचन्द्रका सारा शरीर दहल उठा। वह घुसते हुए चले गये। गलेतक पानीमें पहुँचकर एक बार फिर विराट तिमिरको देखा, यह संसार-प्रेमकी अंतिम घड़ी थी, यह मनोबलकी, आत्माभिमानकी अंतिम परीक्षा थी। अब तक उन्होंने जो कुछ किया था यह केवल इसी परीक्षाकी तैयारी थी।

इच्छा और मायाका अंतिम संग्राम था। मायाने अपनी संपूर्ण शक्तिसे उसे अपनी ओर खीचा। सुमन विदुषी वेषमे दृष्टिगोचर हुई, शान्ता शोककी मूर्ति बनी हुई सामने आई। अभी क्या बिगडा है क्यो न साधु हो जाऊँ ? मै ऐसा कौन बडा आदमी हूँ कि संसार मेरे नाम और मर्यादाकी चर्चा करेगा ? ऐसी न जाने कितनी कन्याएँ पापके फन्देमे फँसती है। ससार किसकी परवाह करता है ? मै मूर्ख हूँ जो यह सोचता हूँ कि संसार मेरी हँसी उडावेगा। इच्छा-शक्तिने कितना ही चाहा कि इस तर्कका प्रतिवाद करे पर वह निष्फल हुई। एक डुबकी की कसर थी। जीवन और मृत्युमे केवल एक पग का अन्तर था। पीछेका एक पग कितना सुलभ था कितना सरल! आगेका एक पग कितना कठिन था, कितना भयकारक।

कृष्णचन्द्रने पीछे लौटने के लिये कदम उठाया। मायाने अपनी विलक्षण शक्तिका चमत्कार दिखा दिया। वास्तवमे वह ससार-प्रेम नही था यह अदृश्यका भय था।

उस समय कृष्णचन्द्रको अनुभव हुआ कि अब मै पीछे नही फिर सकता। वह धीरे-धीरे आप ही आप खिसकते जाते थे। उन्होंने जोरसे चीत्कार किया, अपने शीत शिथिल पैरोको पीछे हटानेकी प्रबल चेष्टा की, लेकिन कर्म की गति कि आगे ही को खिसके।

अकस्मात् उनके कानोमे गजाधरके पुकारनेकी आवाज आई। कृष्णचन्द्रने चिल्लाकर उत्तर दिया, पर मुँहसे पूरी बात भी न निकलने पाई थी कि हवासे बुझकर अन्धकारमे लीन हो जाने वाले दीपकके सदृश लहरोमे मग्न हो गये। शोक, लज्जा और चितातप्त हृदयका दाह शीतल जलमे शान्त हो गया।

गजाधरने केवल यह शब्द सुने "मै यहाँ डूबा जाता हूँ" और फिर लहरोंकी पैशाचिक क्रीडा-ध्वनिके सिवा और कुछ न सुनाई दिया।

शोकाकुल गजाधर देरतक तटपर खडे रहे। वही शब्द चारों ओरसे उन्हे सुनाई देते थे। पासकी पहाडियाँ और सामनेकी लहरे, और चारों ओर छाया हुआ दुर्भेद्य अन्धकार इन्ही शब्दोसे प्रतिध्वनित हो रहा था।

३९

प्रातःकाल यह शोक समाचार अमोलामें फैल गया, इने गिने सज्जनोंको छोडकर कोई भी उमानाथके द्वार पर समवेदना प्रकट करने न आया ! स्वाभाविक मृत्यु हुई होती तो संभवतः उनके शत्रु भी आकर चार आँसू बहा जाते, पर आत्मघात एक भयकर समस्या है, यहाँ पुलिसका अधिकार है, इस अवसरपर मित्रदलने भी शत्रुवत् व्यवहार किया।

उमानाथसे गजाधरने जिस समय समाचार कहा, उस समय वह कुएँपर नहा रहे थे। उन्हे लेशमात्र भी दुःख व कुतूहल नहीं हुआ। इसके प्रतिकूल उन्हें कृष्णचन्द्रपर क्रोध आया, पुलिसके हथकडोंकी शंकाने शोकको भी दबा दिया। उन्हे स्नान-ध्यानमे उस दिन बडा विलब हुआ। संदिग्ध चित्तको अपनी परिस्थितिके विचारसे अवकाश नही मिलता। वह समय ज्ञान रहित हो जाता है।

जान्हवीने बड़ा हाहाकार मचाया। उसे रोते देखकर उसकी दोनो बेटियाँ भी रोने लगी। पास-पडोसकी महिलाएँ समझानेके लिये आ गई। उन्हे पुलिसका भय नही था पर वह आर्तनाद शीघ्र ही समाप्त हो गया। कृष्णचन्द्रके गुण-दोपकी विवेचना होने लगी। सर्व सम्मतिने स्थिर किया कि उनमे गुणकी मात्रा दोपसे बहुत अधिक थी। दोपहरको जब उमानाथ घरमें शर्बत पीने आये और कृष्णचन्द्रके सबधमे कुछ अनुदारता-का परिचय दिया तो जान्हवीने उनकी ओर वक्र नेत्रोसे देखकर कहा; कैसी तुच्छ बातें करते हो।

उमानाथ लज्जित हो गये। जान्हवी अपने हार्दिक आनन्दका सुख अकेले उठा रही थी। इस भावको वह इतना तुच्छ और नीच समझती थी कि उमानाथसे भी उसे गुप्त रखना चाहती थी। सच्चा शोक शान्ताके सिवा और किसीको न हुआ। यद्यपि अपने पिताको वह सामर्थ्यहीन समझती थी, तथापि संसारमें उसके जीवनका एक आधार मौजूद था। अपने पिताकी हीनावस्था ही उसकी पितृभक्तिका कारण थी, अब वह

सर्वथा निराधार हो गई। लेकिन नैराश्यने उसके जीवनको उद्देश्यहीन नही होने दिया। उसका हृदय और भी कोमल हो गया। कृष्णचन्द्रने चलते चलते उसे जो शिक्षा दी थी, उसमे अब विलक्षण प्रेरणा शक्तिका प्रादुर्भाव हो गया था। आजसे शान्ता सहिष्णुताकी मूर्ति बन गई। पावसकी अतिम बूँदोके सदृश मनुष्यकी वाणीके अंतिम शब्द कभी निष्फल नही जाते। शान्ता अब मुँहसे कोई ऐसा शब्द न निकालती, जिससे उसके पिताकी आत्माको दु.ख हो, उनके जीवनकालमे वह कभी-कभी उनकी अवहेलना किया करती थी, पर अब वह अनुदार विचारोंको हृदयमे भी न आने देती थी। उसे निश्चय था कि भौतिक शरीरसे मुक्त आत्माके लिये अन्तर और बाह्यमे कोई भेद नही। यद्यपि अब वह जान्हवीको संतुष्ट रखनेके निमित्त कोई बात उठा न रखती थी, तथापि जान्हवी उसे दिनमे दो-चार बार अवश्य ही उल्टी सीधी सुना देती। शान्ताको क्रोध आता, पर वह विषका घूँट पीकर रह जाती, एकान्तमे भी न रोती। उसे भय था कि पिताजीकी आत्मा मेरे रोनेसे दु.खी होगी।

होलीके दिन उमानाथ अपनी दोनों लडकियोके लिये उत्तम साडियाँ लाये। जान्हवीने भी रेशमी साड़ी निकाली, पर शान्ताको अपनी पुरानी धोती ही पहननी पड़ी। उसका हृदय दु.खसे विदीर्ण हो गया, पर उसका मुख जरा भी मलिन न हुआ। दोनो बहने मुँह फुलाये बैठी थी कि साडियाँ मे गोट नही लगवाई गई और शान्ता प्रसन्न वदन घरका काम काज कर रही थी, यहाँ तक कि जान्हवीको भी उसपर दया आ गई। उसने अपनी एक पुरानी लेकिन रेशमी साडी निकालकर शान्ताको दे दी। शान्ताने जरा भी मान न किया। उसे पहनकर फिर पकवान बनानेमे मग्न हो गई।

एक दिन शान्ता उमानाथकी धोती छाँटनी भूल गई। दूसरे दिन प्रातःकाल उमानाथ नहाने चले तो धोती गीली पडी थी। वह तो कुछ न बोले, पर जान्हवीने शान्ताको इतना कोसा कि वह रो पड़ी। रोती थी और धोती छाँटती थी। उमानाथको यह देखकर दु.ख हुआ। उन्होने मनमे सोचा, हम केवल पेटकी रोटियोके लिये इस अनाथको इतना कष्ट दे रहे है?

ईश्वर के यहाँ क्या जवाब देंगे ? जान्हवीको तो उन्होंने कुछ न कहा, पर निश्चय किया कि शीघ्र ही इस अत्याचारका अन्त करना चाहिये। मृतक सस्कारोंसे निवृत्त होकर उमानाथ आजकल मदनसिंहपर मुहद्दमा दायर करनेकी कार्यवाहीमें मग्न थे। वकीलोंने उन्हें विश्वास दिलाया था कि तुम्हारी अवश्य विजय होगी। पाँच हजार रुपये मिल जानेसे मेरा कितना कल्याण होगा, यह कल्याण कामना उमानाथको आनन्दोन्मत्त कर देती थी, इस कल्पनाने उनकी शुभाकांक्षाओंको जागृत कर दिया था। नया कर बनानेके मन्सूबे होने लगे थे। उस घर का चित्त हृदयपटपर खिंच गया था। उसके लिये उपर्युक्त स्थानकी बातचीत शुरू हो गयी थी। इन आनन्द कल्पनाओंमें शांताकी सुधि ही न रही थी। जान्हवीके इस अत्याचारने उनको शान्ताकी ओर आकर्षित किया। गजाधरके दिये हुए सहस्र रुपये जो उन्होंने मुकद्दमेके खर्च के लिये अलग रख दिये थे घरमें मौजूद थे एक दिन जाह्नवीसे उन्होंने इस विषयमें कुछ बातचीत की। कहीं एक सुयोग्य वर मिलनेकी आशा थी। शान्ताने यह बाते सुनी। मुकद्दमेकी बातचीत सुनकर भी उसे दुःख होता था, पर वह उसमें दखल देना अनुचित समझती थी। लेकिन विवाहकी बातचीत सुनकर वह चुप न रह सकी। एक प्रबल प्रेरक शक्तिने उसकी लज्जा और संकोच को हटा दिया। ज्योंही उमानाथ चले गये, वह जान्हवीके पास आकर बोली, मामा अभी तुमसे क्या कह रहे थे ? जान्हवीने असंतोषके भावसे उत्तर दिया, कह क्या रहे थे, अपना दुःख रो रहे थे। अभागिनी सुमनने यह सब कुछ किया, नहीं तो यह दोहरकम्मा क्यों करना पड़ता ? अब न उतना उत्तम कुल ही मिलता है, न वैसा सुन्दर वर। थोड़ी दूर पर एक गाँव है। वहीं एक वर देखने गये थे। शान्ताने भूमिकी ओर ताकते हुए उत्तर दिया, क्या मैं तुम्हें इतना कष्ट देती हूँ कि मुझे फेंकने की पड़ी हुई है ? तुम मामासे कह दो कि मेरे लिए कष्ट न उठावें।

जान्हवी—तुम उनकी प्यारी भाँजी हो, उनसे तुम्हारा दुःख नहीं देखा जाता। मैंने भी तो यही कहा था कि अभी रहने दो। जब मुकद्दमेका

रुपया हाथ आजाय तो निश्चित होकर करना पर वह मेरी बात माने तब तो ?

शांता—मुझे वही क्यों नहीं पहुँचा देते ?

जान्हवीने विस्मित होकर पूछा, कहाँ ?

शान्ताने सरल भावसे उत्तर दिया, चाहे चुनार, चाहे काशी।

जान्हवी—कैसी बच्चोंकी सी बात करती हो ! अगर ऐसा ही होता तो रोना काहे का था ? उन्हे तुम्हे घरमे रखना होता तो यह उपद्रव क्यों मचाते ?

शान्ता—बहू बनाकर न रक्खे लौण्डी बनाकर तो रखेंगे।

जान्हवीने निर्दयतासे कहा, तो चली जाओ, तुम्हारे मामासे यह कभी न होगा कि तुम्हे सिर चढ़ाकर ले जाँय और वहाँ अपना अपमान कराके फिर तुम्हे ले आवे। वह तो उन लोगोंका मुँह कुचलकर उनसे रुपये भरावेगे।

शान्ता—मामी, वे लोग चाहे कैसे ही अभिमानी हो, लेकिन मैं उनके द्वारपर जाकर खडी हो जाऊँगी तो उन्हे मुझपर दया आ ही जायगी। मुझे विश्वास है कि वह मुझे अपने द्वार परसे हटा न देगे। अपना बैरी भी द्वारपर आजाय तो उसे भगाते सकोच होता है मैं तो फिर भी . . . . .

जान्हवी अधीर हो गई। यह निर्लज्जता उससे न सही गई। बात काटकर बोली, चुप भी रहो, लाज हया तो जैसे तुम्हें छू नही गई। मान न मान मै तेरा मेहमान। जो अपनी बात न पूछे वह चाहे धन्नासेठ ही क्यों न हो, उसकी ओर आँख उठाकर न देखूँ। अपनी तो यह टेक है। अब तो वे लोग यहाँ आकर नकधिसनी भी करे तो तुम्हारे मामा दूर हीसे भगा देगे।

शान्ता चुप हो गई। ससार चाहे जो कुछ समझता हो, वह अपनेको विवाहिता ही समझती थी। एक विवाहिता कन्याका दूसरे घरमे विवाह हो, यह उसे अत्यत लज्जाजनक, असह्य प्रतीत होता था। बारात आनेके एक मास पहलेसे वह सदनके रूप गुणकी प्रशसा सुन-सुनकर उसके हाथो बिक चुकी थी। उसने अपने द्वार पर, द्वारचारके समय, सदनको अपने पुरुषकी भाँति देखा है, इस प्रकार नही मानो वह कोई अपरिचित मनुष्य है। अब किसी दूसरे पुरुषकी कल्पना उसके सतीत्वपर कुठारके

समान लगती थी। वह इतने दिनों तक सदनको अपना पति समझनेके बाद उसे हृदयसे निकाल न सकती थी, चाहे वह उसकी बात पूछे या न पूछे, चाहे उसे अंगीकार करे या न करे। अगर द्वाराचारके बाद ही सदन उसके सामने आता तो वह उसी भाँति उससे मिलती मानो वह उसका पति है। विवाह, भाँवर या सेंदुर बंधन नहीं, बंधन केवल मनका भाव है।

शान्ताको अभी तक यह आशा थी कि कभी न कभी मैं पतिके घर अवश्य जाऊँगी, कभी न कभी स्वामीके चरणोंमे अवश्य ही आश्रय पाऊँगी, पर आज अपने विवाहकी—या पुनर्विवाहकी—बात सुनकर उसका अनुरक्त हृदय काँप उठा। उसने निस्संकोच होकर जान्हवीसे विनय की कि मुझे पतिके घर भेज दो। यहीतक उसकी सामर्थ्य थी। इसके सिवा वह और क्या करती? पर जान्हवीकी निर्दयतापूर्ण उपेक्षा देखकर उसका धैर्य हाथसे जाता रहा। मनकी चंचलता बढने लगी। रातको जब सब सो गये तो उसने पद्मसिंहको एक विनय पत्र लिखना शुरू किया। यह उसका अंतिम साधन था। इसके निष्फल होने पर उसने कर्तव्यका निश्चय कर लिया था।

पत्र शीघ्रही समाप्त हो गया। उसने पहले हीसे कल्पनामे उसकी रचना कर ली थी। केवल लिखना बाकी थी—

"पूज्य धर्म पिताके चरण-कमलोंमें सेविका शान्ताका प्रणाम स्वीकार हो। मैं बहुत दुःखमे हूँ। मुझपर दया करके अपने चरणोंमे आश्रय दीजिये। पिताजी गगामे डूब गये। यहाँ आप लोगो पर मुकद्दमा चलानेका प्रस्ताव हो रहा है। मेरे पुनर्विवाहकी बातचीत हो रही है। शीघ्र सुधि लीजिये। एक सप्ताह तक आपकी राह देखूँगी। उसके बाद फिर आप इस अबलाकी पुकार न सुनेंगे।"

इतनेमे जान्हवीकी आँख खुली। मच्छरोंने सारे शरीरमे काँटे चुभो दिये थे। खुजलाते हुए बोली, शान्ता! यह क्या कर रही है।

"शान्ताने निर्भय होकर कहा, पत्र लिख रही हूँ।"

"किसको?"

"अपने श्वसुरको।"

"चुल्लूभर पानीमे डूब नहीं मरती ?"

"सातवे दिन मरूँगी।"

जान्हवीने कुछ उत्तर न दिया, फिर सो गई। शान्ताने लिफाफे पर पता लिखा और उसे अपने कपड़ोकी गठरीमे रखकर लेट रही।

४०

पद्मसिहका पहला विवाह उस समय हुआ था जब वह कालेजमे पढ़ते थे और एफ० ए० पास हुए तो वह एक पुत्रके पिता थे। पर वालिका वधू शिशुपालनका मर्म न जानती थी। वालक जन्मके समय तो हृष्ट पुष्ट था पर पीछे धीरे-धीरे क्षीण होने लगा था। यहाँ तक कि छठे महीने माता और शिशु दोनो ही चल बसे। पद्मसिंहने निश्चय किया अब विवाह न करूँगा। मगर वकालत पास करनेपर उन्हे फिर वैवाहिक वन्धनमे फँसना पडा। सुभद्रा रानी वधू बनकर आईं। इसे आज सात वर्ष हो गये।

पहले दो तीन साल तक तो पद्मसिहको सन्तानका ध्यान ही नही हुआ। यदि भामा इसकी चर्चा करती तो वह टाल जाते। कहते मुझे संतानकी इच्छा नही। मुझसे यह वोझ न सँभलेगा। अभीतक सन्तानकी आशा थी, इसलिये अधीर नहीं होते थे।

लेकिन जब चौथा साल भी योंही कट गया तो उन्हे कुछ निराशा होने लगी। मनमे चिंता उपस्थित हुई, क्या सचमुच मै निस्सन्तान ही रहूँगा ? ज्यों ज्यो दिन गुजरते थे यह चिंता वढती जाती थी। अव उन्हे अपना जीवन कुछ शून्य सा मालूम होने लगा सुभद्रासे वह प्रेम न रहा, सुभद्राने इसे ताड लिया। उसे दु:ख तो हुआ, पर इसे अपने कर्मो का फल समझकर उसने सतोष किया।

पद्मसिह अपनेको वहुत समझाते कि तुम्हे सन्तान लेकर क्या करना है ? जन्मसे लेकर पचीस वर्षकी आयु तक उसे जिलाओ, खिलाओ, पढाओ तिसपर भी यह शका ही लगी रहती है कि यह किसी ढंगकी भी होगी या नही।

सिकल उवर फेर दी। वह शान्ताके विषयमे इसी समय कुछ न कुछ निश्चय कर लेना चाहते थे। उन्हें भय था कि कही विलब होने से यह जोश ठण्डा न पड जाय।

कुँवरसाहबके यहाँ ग्वालियरसे एक जलतरंग वजानेवाला आया हुआ था। उसीका गाना सुननेके लिए आज उन्होने अपने मित्रोको निमत्रित किया था। पद्मसिंह वहाँ पहुँचे तो विट्ठलदास और प्रोफेसर रमेशदत्तमें उच्चस्वरसे विवाद हो रहा था और कुँवरसाहव, पण्डित प्रभाकरराव तथा सैयद तेगअली वैठे हुए वटेरोकी इस लडाईका तमाशा देख रहे थे। शर्माजीको देखते ही कुँवरसाहवने उनका स्वागत किया। वोले, आइये, आइये, देखिए यहाँ घोर संग्राम हो रहा है, किसी तरह इन्हे अलग कीजिये नही तो ये लड़ते-लड़ते मर जायँगे।

इतनेमें प्रोफेसर रमेशदत्त वोले, थियासोफिस्ट होना कोई गाली नही है। मै थियासोफिस्ट हूँ और इसे सारा शहर जानता है। हमारे ही समाजके उद्योगका फल है कि आज अमेरिका, जर्मनी, रूस इत्यादि देशोमें आपको राम और कृष्णके भक्त और गीता, उपनिषद् आदि सद्-ग्रन्थोंके प्रेमी दिखाई देने लगे है। हमारे समाजने हिन्दू जातिका गौरव वँढा दिया है उसके महत्वको प्रसारित कर दिया है और उसे उस उच्चासन पर विठा दिया है जिसे वह अपनी अकर्मण्यताके कारण कई शताब्दियोसे छोड़ वैठी थी। यह हमारी परम कृतघ्नता होगी अगर हम उन लोगोंका यश न स्वीकार करें, जिन्होने अपने दीपकसे हमारे अन्धकारको दूर करके हमें वह रत्न दिखा दिये है जिन्हें देखनेकी हममे सामर्थ्य न थी। वह दीपक व्लावेट्स्कीका हो, या आल्कटका या किसी अन्य पुरुपका, हमे इससे कोई प्रयोजन नहीं। जिसने हमारा अन्धकार मिटाया हो उसका अनुगृहीत होना हमारा कर्तव्य है, अगर आप इसे गुलामी कहते है तो यह आपका अन्याय है।

विट्ठदासने इस कथनको ऐसे उपेक्ष्य भावसे सुना मानो वह कोई निरर्थक वकवाद है और वोले, इसीका नाम गुलामी है, वल्कि गुलाम तो

एक प्रकारसे स्वतंत्र होता है, उसका अधिकार शरीरपर होता है, आत्मापर नही । आप लोगोंने तो अपनी आत्मा हीको वेच दिया है। आपकी अगरेजी शिक्षाने आपको ऐसा पददलित किया है कि जवतक यूरोपका कोई विद्वान किसी विषयके गुण दोष प्रकट न करे तवतक आप उस विषयकी ओरसे उदासीन रहते है । आप उपनिषदोका आदर इसलिये नही करते कि वह स्वयं आदरणीय है बल्कि इसलिये करते है कि व्लावेट्स्की और मैक्समूलरने उनका आदर किया है। आपमे अपनी वुद्धिसे काम लेनेकी शक्तिका लोप हो गया है । अभीतक आप तान्त्रिक विद्याकी वात भी न पूछते थे। अव जो यूरोपीय विद्वानों ने उसका रहस्य खोलना शुरू किया तो आपको अव तन्त्रों मे गुण दिखाई देते है। यह मानसिक गुलामी उस भौतिक गुलामीसे कही गई गुजरी है । आप उपनिषदोको अग्रेजी मे पढ़ते है, गीताको जर्मनमे, अर्जुनको अर्जुना, कृष्णको कृशना कहकर अपनी स्वभाषा ज्ञानका परिचय देते है । आपने इसी मानसिक दासत्वके कारण उस क्षेत्रमे अपनी पराजय स्वीकार कर ली, जहाँ हम अपने पुरुषो की प्रतिभा और प्रचण्डतासे चिरकाल तक अपनी विषय पताका फहरा सकते थे ।

रमेशदत्त इसका कुछ उत्तर देना ही चाहते थे कि कुँवर साहब वोल उठे, मित्रों ! अव मुझसे विना वोले नही रहा जाता। लाला साहव, आप अपने इस 'गुलामी' शब्दको वापस लीजिये ।

विट्ठल—क्यों वापस लूँ ?

कुँवर—आपको इसके प्रयोग करने का अधिकार नही है।

विट्ठल—मेरा आशय यह है कि हममे कोई भी दूसरोंको गुलाम कहनेका अधिकार नही रखता । अन्धोके नगर मे कौन किसको अन्धा कहेगा ? हम सवके सव राजा हो या रंक, गुलाम है। हम अगर अपढ निर्धन गँवार है तो थोड़े गुलाम हैं, हम अपने रामका नाम लेते है, अपनी धोती पगडी का व्यवहार करते है, अपनी वोली वोलते हैं, अपनी गाय पालते है और अपनी गगा मे नहाते है, और हम यदि विद्वान्,

उन्नत ऐश्वर्यवान हैं तो वहुत गुलाम हैं, जो विदेशी भाषा बोलते हैं, कुत्ते पालते हैं और अपने देशवासियोंको नीच समझते हैं, सारी जाति इन्हीं दो भागों में विभक्त हैं। इसलिये कोई किसीको गुलाम नहीं कह सकता। गुलामीके मानसिक, आत्मिक, शारीरिक आदि विभाग करना भ्रांति-कारक है। गुलामी केवल आत्मिक होती है; और दशाएँ इसीके अन्तर्गत हैं? मोटर, बंगले, पोलो और प्यानो यह एक एक बेड़ी के तुल्य हैं। जिसने इन बेडियोंको नहीं पहना उसीको सच्ची स्वाधीनताका आनन्द प्राप्त हो सकता है, और आप जानते हैं वह कौन लोग हैं? वह हमारे दीन कृषक हैं जो अपने पसीने की कमाई खाते हैं, अपने जातीय भेष, भाषा और भावका आदर करते हैं और किसीके सामने सिर नहीं झुकाते।

प्रभाकररावने मुस्कराकर कहा, आपको कृषक बन जाना चाहिये।

कुँवर—तो अपने पूर्वजन्मके कुकर्मोंको कैसे भोगूँगा? बड़े दिनमें मेवे की डालियाँ कैसे लगाऊँगा? सलामी के लिये खानसामाकी खुशामद कैसे करूँगा? उपाधिके लिये नैनीतालके चक्कर कैसे लगाऊँगा? डिनर पार्टी देकर लेडियोंके कुत्तोंको कैसे गोदमें उठाऊँगा? देवताओंको प्रसन्न और संतुष्ट करनेके लिये देशहित के कार्योंमें असम्मति कैसे दूँगा? यह सब मानव अधःपतनकी अन्तिम अवस्थाएँ हैं। उन्हें भोग किये बिना मेरी मुक्ति नहीं हो सकती। (पद्मसिंहसे) कहिये शर्माजी, आपका प्रस्ताव बोर्डमें कब आयेगा? आप आजकल कुछ उत्साहहीनसे दीख पड़ते हैं। क्यों, इस प्रस्तावकी भी वही गति होगी जो हमारे अन्य सार्वजनिक कार्योंकी हुआ करती है?

इधर कुछ दिनोंसे वास्तवमें पद्मसिंहका उत्साह कुछ क्षीण हो गया था। ज्यों-ज्यों उसके पास होने की आशा बढ़ती थी, उनका अविश्वास भी बढ़ता जाता था, विद्यार्थीकी परीक्षा जबतक नहीं होती वह उसीकी तैयारीमें लगा रहता है, लेकिन परीक्षामें उत्तीर्ण हो जानेके बाद भावी जीवन-संग्रामकी चिन्ता उसे हतोत्साह कर दिया करती है। उसे अनुभव होता है कि जिन साधनोंसे अबतक मैंने सफलता प्राप्त की है वह इस

नये, विस्तृत, अगम्य क्षेत्रमे अनुपयुक्त है। वही दशा इस समय शर्माजीकी थी। अपना प्रस्ताव उन्हे कुछ व्यर्थ-सा मालूम होता था। व्यर्थ ही नही कभी कभी उन्हे उससे लाभ के बदले हानि होनेका भय होता था। लेकिन वह अपने संदेहात्मक विचारोको प्रकट करनेका साहस न कर सकते थे; कुँवरसाहबकी ओर विश्वासपूर्ण दृष्टिसे देखकर बोले, जी नही, ऐसा तो नही है, हाँ आजकल फुर्सत न रहनेसे वह काम जरा धीमा पड गया है।

कुँवर——उसके पास होनेमे तो अब कोई बाधा नही है?

पद्मसिहने तेगअलीकी तरफ देखकर कहा, मुसलमान मेम्बरोका ही भरोसा है।

तेगअलीने मार्मिक भावसे कहा, उनपर एतमाद करना रेतपर दीवार बनाना है। आपको मालूम नही, वहाँ क्या चाले चली जा रही है? अजब नही है कि वह ऐन वक्तपर धोखा दे।

पद्मसिह——मुझे तो ऐसी आशा नही है।

तेगअली——यह आपकी शराफत है। वहाँ इस वक्त, उर्दू हिन्दीका झगडा, गोकशीका मसला, जुदागाना इन्तखाब, सूदका मुआविजा कानून, इन सबोसे मजहबी तास्सुबके भडकानेमे मदद ली जा रही है।

प्रभाकरराव——सेठ बलभद्रदास न आवेगे क्या, किसी तरह उन्हीको समझाना चाहिये।

कुँवर——मैने उन्हे निमन्त्रण ही नही दिया, क्योकि मै जानता था कि कदापि न आवेंगे। वह मतभेदको वैमनस्य समझते है। हमारे प्रायः सभी नेताओंका यही हाल है। यही एक विषय है, जिसमे उनकी सजीवता प्रकट होती है। आपका उनसे जरा भी मतभेद हुआ और वह आपके जानी दुश्मन हो गये, आपसे बोलना तो दूर रहा आपकी सूरत तक न देखेंगे, बल्कि अवसर पायेंगे तो अधिकारियोसे आपकी शिकायत करेंगे, अपने मित्रोकी मंडलीमे आपके आचार-विचार, रीति व्यवहारकी आलोचना करेंगे, आप ब्राह्मण है तो आपको भिक्षुक कहेंगे, क्षत्रिय हैं तो आपको उजड्ड गँवार कहेगे। वैश्य है तो आपको बनिये, डण्डी

तीलकी पदवी मिलेगी और शूद्र है तब तो आप बने बनाये चाण्डाल हैं ही। आप अगर गानेसे प्रेम रखते हैं तो आप दुराचारी हैं, आप सत्संगी हैं तो आपको तुरन्त 'बछियाके ताऊ' की उपाधि मिल जायगी। यहाँ तक कि आपकी माता और स्त्रीपर भी निन्दास्पद आक्षेप किये जायेंगे। हमारे यहाँ मतभेद महापाप है और उसका कोई प्रायश्चित्त नहीं। अहा! वह देखिये, डाक्टर श्यामाचरणकी मोटर आ गयी।

डाक्टर श्यामाचरण मोटरसे उतरे और उपस्थित सज्जनोंकी ओर देखते हुए बोले, I am sorry. I was late.

कुँवर साहबने उनका स्वागत किया। औरोंने भी हाथ मिलाया और डाक्टरसाहब एक कुर्सीपर बैठकर बोले—When is the performance going to begin!

कुँवर—डाक्टर साहब, आप भूलते हैं, यह काले आदमियोंका समाज है।

डाक्टर साहबने हँसकर कहा, मुआफ कीजियेगा, मुझे याद न रहा कि आपके यहाँ म्लेच्छोंकी भाषा बोलना मना है।

कुँवर—लेकिन देवताओंके समाजमें तो आप कभी ऐसी भूल नहीं करते।

डाक्टर—तो महाराज इसका कुछ प्रायश्चित्त करा लीजिये।

कुँवर—इसका प्रायश्चित्त यही है कि आप मित्रोंसे अपनी मातृभाषाका व्यवहार किया कीजिये।

डाक्टर—आप राजा लोग हैं, आपसे यह प्रण निभ सकता है हमसे इसका पालन क्योंकर हो सकता है? अंग्रेजी तो हमारी Lingua Franca (सार्वदेशिक भाषा) हो रही है।

कुँवर—इसे आपही लोगोंने तो यह गौरव प्रदान कर रखा है। फारस और काबुलके मूर्ख सिपाहियों और हिन्दू व्यापारियोंके समागमसे उर्दू जैसी भाषाका प्रादुर्भाव हो गया। अगर हमारे देशके भिन्न-भिन्न प्रांतों के विद्वज्जन परस्पर अपनी ही भाषामें सम्भाषण करते

तो अब तक कभी एक सार्वदेशिक भाषा बन गई होती। जबतक आप जैसे विद्वान् लोग अग्रेजी के भक्त बने रहेगे, कभी एक सार्वदेशिक भाषाका जन्म न होगा। मगर यह काम कष्ट-साध्य है, इसे कौन करे? यहाँ तो लोगोको अंग्रेजी जैसी समुन्नत भाषा मिल गयी, सब उसी के हाथों बिक गये। मेरी समझमे नही आता कि अग्रेजी भाषा बोलने और लिखनेमे लोग क्यो अपना गौरव समझते है? मैने भी अग्रेजी पढी है। दो साल विलायत रह आया हूँ और आपके कितने ही अग्रेजीके धुरधर पंडितोंसे अच्छी अग्रेजी लिख और बोल सकता हूँ पर मुझे उससे ऐसी घृणा होती है जैसे किसी अग्रेजके उतारे कपडे पहनने से।

पद्मसिहने इन वादोंमे कोई भाग न लिया। ज्योंही अवसर मिला, उन्होने विट्ठलदासको बुलाया और उन्हे एकान्तमे लेजाकर शान्ताका पत्र दिखाया।

विट्ठलदासने कहा, अब आप क्या करना चाहते है?

पद्म—मेरी तो कुछ समझ ही नही आता। जबसे यह पत्र मिला है, ऐसा मालूम होता है मानो नदीमे बहा जाता हूँ।

विट्ठल—कुछ न कुछ करना तो पडेगा।

पद्म—क्या करूँ?

विट्ठल—शान्ताको बुला लाइये।

पद्म—सारे घरसे नाता टूट जायगा।

विट्ठल—टूट जाय। कर्तव्यके सामने किसीका क्या भय?

पद्म—यह तो आप ठीक कहते है, पर मुझमें इतनी सामर्थ्य नही। भैया को मै अप्रसन्न करनेका साहस नहीं कर सकता।

विट्ठल—अपने यहाँ न रखिये, विधवाश्रमम रख दीजिये, यह तो कठिन नहीं।

पद्म—हाँ, यह आपने अच्छा उपाय बतया। मझे इतना भी न सूझा था। कठिनाईमे मेरी बद्धि जैसे चरने चली जाती है।

विट्ठल—लेकिन जाना आपको पडेगा।

पद्म—यह क्यो, आपके जानेसे काम न चलेगा?

विट्ठल—भला उमानाथ उसे मेरे साथ क्यो भेजने लगे?

पद्म—इसमे उन्हे क्या आपत्ति हो सकती है!

विट्ठल—आप तो कभी-कभी बच्चोकी सी बात करने लगते है। शान्ता उनकी बेटी न सही, पर इस समय वह उसके पिता है। वह उसे एक अपिरिचित मनुष्यके साथ क्यो आने देगे?

पद्म—भाई साहब नाराज न हो, मै वास्तव मे कुछ बौखला गया हूँ। लेकिन मेरे चलने मे तो बडा उपद्रव खडा हो जायगा। भैया सुनेंगे तो वह मुझे मारही डालेगे। जनवासेमे उन्होने जो धक्का लगाया था वह अभीतक मुझे याद है।

विट्ठल—अच्छा, आप न जाइये, मै ही चला जाऊँगा। लेकिन उमानाथके नाम एक पत्र दे देनेमे तो आपको कोई बाधा नही?

पद्म—आप कहेगे कि वह निरा मिट्टीका लोदा है, पर मुझसे इतना साहस भी नही है। ऐसी युक्ति बताइये कि कोई अवसर पडे तो मै साफ निकल जाऊँ। भाई साहब को मुझपर दोषारोपणका मौका न मिले।

विट्ठलदासने झुझलाकर उत्तर दिया, मुझे ऐसी युक्ति नही सूझती। भलेमानुस, आप भी अपने को मनुष्य कहेगे। कहाँ तो वह धुँआधार व्याख्यान देते है, ऐसे उच्च भावोसे भरा हुआ मानो मुक्तात्मा है और कहाँ यह भीरुता!

पद्मसिहने लज्जित होकर कहा, इस समय जो चाहे कह लीजिये, पर इस कामका सारा भार आपके ऊपर रहेगा।

विट्ठल—अच्छा, एक तार तो दे दीजियेगा, या इतना भी न होगा?

पद्म—(उछलकर) हाँ, मै तार दे दूंगा। मै तो जानता था कि आप कोई राह निकालेगे! अगर कभी बात आ पडी तो मै कह दूँगा कि मैने तार नही दिया, किसीने मेरे नामसे दे दिया होगा। मगर एक ही क्षणमें उनका विचार पलट गया। अपनी आत्मभीरुतापर लज्जा

आई। मनमे सोचा, भाई साहब ऐसे मूर्ख नही है कि इस धर्म-कार्यके लिये मुझसे अप्रसन्न हो और यदि हो भी जायँ तो मुझे इसकी चिन्ता न करनी चाहिये।

विट्ठल—तो आज ही तार दे दीजिये।

पद्म—लेकिन यह सरासर जालसाजी होगी।

विट्ठल—हाँ, होगी तो, आप ही समझिये।

पद्म—मैं ही चलूं तो कैसा हो?

विट्ठल—बहुत ही उत्तम, सारा काम ही बन जाय।

पद्म—अच्छी बात है, मैं और आप दोनों चले।

विट्ठल—तो कब?

पद्म—बस, आज तार देता हूँ कि हम लोग शान्ता को विदा कराने आ रहे है, परसो सन्ध्याकी गाड़ीसे चले चले।

विट्ठल—निश्चय हो गया?

पद्म—हाँ निश्चय हो गया। आप मेरा कान पकड़कर ले जाइयेगा।

विट्ठलदासने अपने सरल-हृदय मित्रकी ओर प्रशंसा की दृष्टिसे देखा और दोनो मनुष्य जलतरंग सुनने जा बैठे, जिसकी मनोहर ध्वनि आकाश मे गूँज रही थी।

४१

जब हम स्वास्थ्य-लाभ करने के लिये किसी पहाड़पर जाते है तो इस बातका विशेष यत्न करते है कि हमसे कोई कुपथ्य न हो। नियमितरूपसे व्यायाम करते है, आरोग्य का उद्देश्य सदैव हमारे सामने रहता है। सुमन विधवाश्रममे आत्मिक स्वास्थ्यलाभ करने गई थी और अभीष्टको एक क्षणके लिये भी न भूलती थी। वह अपनी अन्य बहनो की सेवामे तत्पर रहती और धार्मिक पुस्तके पढती। देवोपासना, स्नानादिमे उसके व्यथित हृदय को शान्ति मिलती थी।

विट्ठलदासने अमोलाके समाचार उससे छिपा रखे थे, लेकिन जब

जायगी। उसे मुँह दिखानेकी अपेक्षा गंगाकी गोद मे मग्न हो जाना कितान सहज था।

अकस्मात् उसने देखा कि कोई आदमी उसकी तरफ चला आ रहा है। अभी कुछ-कुछ अंधेरा था, पर सुमनको इतना मालूम हो गया कि कोई साधु है। सुमनकी अँगुलीमे एक अँगूठी थी। उसने उसे साधुको दान करनेका निश्चय किया, लेकिन वह ज्यो ही समीप आया, सुमनने भय, घृणा और लज्जासे अपना मुँह छिपा लिया। यह गजाधर थे।

सुमन खड़ी थी और गजाधर उसके पैरोपर गिर पडे और रुद्ध कण्ठ से बोले, मेरे अपराध क्षमा करो।

सुमन पीछे हट गई, उसकी आँखोके सामने अपने अपमानका दृश्य खिंच गया। घाव हरा हो गया। उसके जीमे आया कि इसे फटकारूँ, कहूँ कि तुम मेरे पिताके घातक, मेरे जीवनके नाश करनेवाले हो, पर कुछ गजाधरकी अनुकम्पापूर्ण उदारता, कुछ उसका साधुवेश और कुछ विराग भावने, जो प्राणघातका सकल्प कर लेनेके वाद उदित हो जाता है, उसे द्रवित कर दिया। उसके नयन सजल हो गये, करुण स्वर से बोली, तुम्हारा कोई अपराध नहीं है, जो कुछ हुआ वह सब मेरे कर्मोंका फल था।

गजाधर—नही सुमन, ऐसा मत कहो, यह सब मेरी मूर्खता और अज्ञानताका फल है। मैंने सोचा था कि उसका प्रायश्चित कर सकूँगा, पर अपने अत्याचारका भीषण परिणाम देखकर मुझे विदित हो रहा है कि उसका प्राश्चित्त नही हो सकता। मैंने इन्ही आँखोसे तुम्हारे पूज्य पिताको गगामे लुप्त होते देखा है।

सुमनने उत्सुक भावसे पूछा, क्या तुमने पिताजीको डूबते देखा है।

गजाधर—सुमन, डूबते देखा। मैं रातको अकेला जा रहा था, मार्गमे वह मुझे मिल गये। मुझे अर्द्धरात्रिके समय उन्हे गगाकी ओर जाते देखकर संदेह हुआ। उन्हे अपने स्थान पर लाया और उनके हृदयको शान्त करनेकी चेष्टा की। फिर यह समझकर कि मेरा मनोरथ

पूरा हो गया, मै सो गया। थोडी देरमे जब उठा तो उन्हे वहाँ न देखा। तुरन्त गगातटकी ओर दौड़ा। उस समय मैने सुना कि वह मुझे पुकार रहे है, पर जब तक मै यह निश्चय कर सकूँ कि वह कहाँ है उन्हे निर्दयी लहरोने ग्रस लिया! यह दुर्लभ आत्मा मेरी आँखोके सामने स्वर्गधामको सिधारी। तबतक मुझे मालूम न था कि मेरा पाप इतना घोरतम है वह अक्षम्य है, अदंड्य है। मालूम नही, ईश्वरके यहाँ मेरी क्या गति होगी?

गजाधरकी आत्मवेदनाने सुमनके हृदयपर वही काम किया, जो साबुन मैलके साथ करता है। उसने जमे हुए मालिन्यको काटकर ऊपर कर दिया। वह सचित भाव ऊपर आ गये जिन्हे वह गुप्त रखना चाहती थी। बोली, परमात्माने तुम्हे सद्बुद्धि प्रदान कर दी है। तुम अपनी सुकीर्तिसे चाहे कुछ कर भी लो, पर मेरी क्या गति होगी, मै तो दोनो लोकोसे गई। हाय! मेरी विलास-तृष्णाने मुझे कहीका न रखा! अब क्या छिपाऊँ, तुम्हारे दारिद्र्य और इससे अधिक तुम्हारे प्रेमविहीन व्यवहारने मुझमे असतोषका अकुर जमा दिया और चारो ओर पाप जीवनकी मान मर्यादा, सुख विलास देखकर इस अकुरने बढते-बढते भटकटैये के सदृश सारे हृदयको छा लिया। उस समय एक फफोलेको फोडने लिये जरासी ठेस भी बहुत थी। तुम्हारी नम्रता, तुम्हारा प्रेम, तुम्हारी सहानुभूति, तुम्हारी उदारता उस फफोलेपर फाहेका काम देती, पर तुमने उसे मसल दिया, मै पीडासे व्याकुल, सज्ञाहीन हो गई। तुम्हारे उस पाशविक पैशाचिक व्यवहारका जब स्मरण होता है तो हृदयमे एक ज्वालासी दहकने लगती है और अन्त.करण से तुम्हारे प्रति शाप निकल आता है। यह मेरा अतिम समय है, एक क्षणमे यह पापमय शरीर गगामे डूब जायगा, पिताजीकी शरणमे पहुँच जाऊँगी, इसलिये ईश्वरसे प्रार्थना करती हूँ कि तुम्हारे अपराधोको क्षमा करे।

गजाधर ने चितित स्वर मे कहा, सुमन, यदि प्राण देने से पापो का प्रायश्चित्त हो जाता तो मै अबतक कभी प्राण दे चुका होता।

सुमन—कमसे कम दुखो का तो अन्त हो जायगा।

गजाधर—हाँ, तुम्हारे दुखोका अन्त हो सकता है, पर उनके दुखोंका अन्त न होगा जो तुम्हारे दुखोमे दुखी हो रहे हैं। तुम्हारे माता पिता शरीर के बन्धन से मुक्त हो गये है, लेकिन उनकी आत्माएँ अपनी विदेहावस्थामे तुम्हारे पास विचर रही हैं। वह अभी तुम्हारे सुख से सुखी और दुःख से दुखी होगे। सोच लो कि प्राणघात करके उनको दुख पहुँचाओगी या अपना पुनरुद्धार करके उन्हे सुख और शान्ति दोगी। पश्चात्ताप अतिम चेतावनी है। जो हमें आत्म-सुधार के निमित्त ईश्वरकी ओरसे मिलती है। यदि इसका अभिप्राय न समझकर हम शोकावस्थामे अपने प्राणोंका अन्त कर दे तो मानो हमने आत्मोद्धारकी इस अंतिम प्रेरणाको भी निष्फल कर दिया। यह भी सोचो कि तुम्हारे न रहनेसे उस अबला शान्ताकी क्या गति होगी, जिसने अभी ससारके ऊँच नीचका कुछ अनुभव नहीं किया है, तुम्हारे सिवा उसका ससारमे कौन है? उमानाथका हाल तुम जानती ही हो, वह उसका निर्वाह नही कर सकते। उनमे दया है, पर लोभ उससे अधिक है। कभी न कभी वह उससे अवश्य ही अपना गला छुडा लेगे। उस समय वह किसकी होकर रहेगी।

सुमनको गजाधरके इस कथनमे सच्ची समवेदनाकी झलक दिखाई दी। उसने उनकी ओर नीचतासूचक दृष्टिसे देखकर कहा, शान्तासे मिलनेकी अपेक्षा मुझे प्राण देना सहज प्रतीत होता है। कई दिन हुए उसने पद्मसिहके पास एक पत्र भेजा था। उमानाथ उसका कहीं और विवाह करना चाहते है। वह इसे स्वीकार नही करती।

गजाधर—देवी है!

सुमन—शर्माजी बेचारे और क्या करते? उन्होने निश्चय किया है कि उसे बुलाकर आश्रममे रखे। अगर उनके भाई मान जायेंगे तब तो अच्छा ही है, नही तो उस दुखियाको न जाने कितने दिनोंतक आश्रममें रहना पड़ेगा। वह कल यहाँ आ जायगी। उसके सम्मुख जाने मे

भय, उससे आँखे मिलनेकी लज्जा मुझे मारे डालती है। जब वह तिरस्कारकी आँखोसे मुझे देखेगी, उस समय मैं क्या करूँगी ? और जो कहीं उसने घृणावश मुझसे गले मिलनेमे संकोच किया, तब तो मैं उसी क्षण विष खा लूँगी। इस दुर्गतिसे तो प्राण दे देना अच्छा है।

गजाधरने सुमनको श्रद्धाभावसे देखा, उन्हे अनुभव हुआ कि ऐसी अवस्थामे मैं भी वही करता जो सुमन करना चाहती है। बोले, सुमन तुम्हारे यह विचार यथार्थ हैं, पर तुम्हारे हृदयपर चाहे जो कुछ बीते, शान्ता के हितके लिये तुम्हे सब कुछ सहना पड़ेगा। तुमसे उसका जितना कल्याण हो सकता है उतना अन्य किसीसे नही हो सकता। अबतक तुम अपने लिये जीती थीं, अब दूसरो के लिये जीओ।

यह कह गजाधर जिधरसे आये थे उधर ही चले गये। सुमन गगाजीके तटपर देरतक खडी उनकी बातोंपर विचार करती रही, फिर स्नान करके आश्रमकी ओर चली, जसे कोई मनुष्य समरमे परास्त होकर घरकी ओर जाता है।

४२

शान्ताने पत्र तो भेजा, पर उसको उत्तर आनेकी कोई आशा न थी। तीन दिन बीत गये, उसका नैराश्य दिनों दिन बढता जाता था। अगर कुछ अनुकूल उत्तर न आया तो उमानाथ अवश्य ही उसका विवाह कर देगे, यह सोचकर शान्ताका हृदय थरथराने लगता था। वह दिनमे कई बार देवीके चबूतरेपर जाती और नानाप्रकारकी मनौतियाँ करती। कभी शिवजी के मन्दिरमे जाती और उनसे अपनी मनोकामना कहती। सदन एक क्षणके लिये भी उसके ध्यानसे न उतरता। वह उसकी मूर्तिको हृदयनेत्रोके सामने बैठाकर उससे कर जोड़कर कहती, प्राणनाथ, मुझे क्यो नही अपनाते ? लोकनिन्दाके भयसे ! हाय, मेरी जान इतनी सस्ती है कि इन दामो बिके ! तुम मुझे त्याग रहे हो, आगमे झोक रहे हो, केवल इस अपराधके लिये कि मैं सुमनकी

बहन हूँ ! यही न्याय है ! कहीं तुम मुझे मिल जाते, मैं तुम्हे पकड़ पाती, फिर देखती कि मुझसे कैसे भागते हो ? तुम पत्थर नहीं हो कि मेरे आँसुओंसे न पसीजते। तुम अपनी आँखोंसे एक बार मेरी दशा देख लेते तो फिर तुमसे न रहा जाता। हाँ, तुमसे कदापि न रहा जाता। तुम्हारा विशाल हृदय करुणा शून्य नहीं हो सकता। क्या करूँ, तुम्हे अपने चित्तकी दशा कैसे दिखाऊँ।

चौथे दिन प्रातःकाल पद्मसिंहका पत्र मिला। शान्ता भयभीत हो गई। उसकी प्रेमाभिलाषाएँ शिथिल पड़ गईं। अपनी भावी दशाकी शंकाओंने चित्तको अशान्त कर दिया।

लेकिन उमानाथ फूले न समाये। बाजेका प्रबन्ध किया। सवा-ग्रियाँ एकत्रित की, गाँव भरमे निमन्त्रण भेजे, मेहमानोंके लिये चौपाल में फर्श आदि बिछवा दिये। गाँवके लोग चकित थे, यह कैसा गौना है ? विवाह तो हुआ ही नहीं, गौना कैसा ? वह समझते थे कि उमानाथने कोई न कोई चाल खेली है। एक ही धूर्त है। निर्दिष्ट समयपर उमा-नाथ स्टेशन गये और बाजे बजवाते हुए मेहमानोंको अपने घर लाये। चौपालमे उन्हे ठहराया। केवल तीन आदमी थे। पद्मसिंह, विट्ठलदास और एक नौकर।

दूसरे दिन सन्ध्या-समय विदाईका मुहूर्त था, तीसरा पहर हो गया किन्तु उमानाथके घरमें गाँवकी कोई स्त्री नहीं दिखाई देती। वह बार-बार अन्दर आते है, तेवर बदलते है, दीवारोको धमकाकर कहते है, मैं एक-एकको देख लूँगा। जान्हवीसे बिगड़कर कहते है कि मै सबकी खबर लूँगा। लेकिन वह धमकियाँ जो कभी नम्बरदारो को कंपायामान कर दिया करती थी, आज किसीपर असर नहीं करती। बिरादरी अनुचित दबाव नहीं मानती। घमण्डियोका सिर नीचा करनेके लिये वह ऐसे ही अवसरोंकी ताक मे रहती है।

सन्ध्या हुई। कहारोंने पालकी द्वारपर लगा दी। जान्हवी और शान्ता गले मिलकर खूब रोईं।

शान्ताका हृदय प्रेमसे परिपूर्ण था, इस घरमे उसे जो जो कष्ट उठाने पडे थे वह इस समय भूल गये थे। इन लोगोसे फिर भेट न होगी. इस घरके अब फिर दर्शन न होंगे, इनसे सदैवके लिये नाता टूटता है, यह सोचकर उसका हृदय विदीर्ण हुआ जाता था। जान्हवीका हृदय भी दयासे भरा हुआ था। इस माता-पिता विहीन बालिकाको हमने बहुत कष्ट दिये यह सोचकर वह अपने आँसुओंको न रोक सकती थी। दोनोके हृदयमें सच्चे, निर्मल, कोमल भावोकी तरंगे उठ रही थी।

उमानाथ घरमे आये तो शान्ता उनके पैरोसे लिपट गई और विनय करती हुई कहने लगी, तुम्ही मेरे पिता हो, अपनी बेटीको भूल न जाना, मेरी बहनोंको गहने-कपडे देना, होली और तीजमें उन्हें बुलाना, पर मै तुम्हारे दो अक्षरोके पत्रको ही अपना धन्यभाग्य समझूँगी। उमानाथने उसको संबोधन करते हुए कहा, बेटी, जैसी मेरी और दो बेटियाँ हैं वैसी ही तुम भी हो, परमात्मा तुम्हे सदा सुखी रखे। यह कह कर रोने लगे।

सन्ध्याका समय था, मुन्नी गाय घरमे आई तो शान्ता उसके गले लिपटकर रोने लगी। उसने तीन-चार वर्ष उस गायकी सेवा की थी। अब वह किसे भूसी लेकर दौडगी? किसके गलेमे काले डोरेमे कौड़ियाँ गूँथकर पहनावेगी? मुन्नी सिर झुकाये उसके हाथो को चाटती थी। उसका वियोग दुःख उसकी आँखोंसे झलक रहा था।

जान्हवीने शान्ताको लाकर पालकीमे बैठा दिया, कहारोने पालकी उठाई। शान्ताको ऐसा मालूम हुआ कि मानों वह अथाह सागर मे बही जा रही है।

गाँवकी स्त्रियाँ अपने द्वारों पर खड़ी पालकीको देखती थी और रोती थीं।

उमानाथ स्टेशनतक पहुँचाने आये। चलते समय अपनी पगडी उतारकर उन्होंने पद्मसिहके पैरोपर रख दी। पद्मसिहने उनको गलेसे लगा लिया।

जब गाडी चली तो पद्मसिंहने विट्ठलदाससे कहा, अब इस अभिनयका सबसे कठिन भाग आ गया।

विट्ठल—मैं नही समझा।

पद्म—क्या शान्तासे कुछ कहे सुने बिना ही उसे आश्रममे पहुँचा दीजियेगा। उसे पहले उसके लिये तैयार करना चाहिये।

विट्ठल—हाँ, यह आपने ठीक सोचा, तो जाकर कह दूं ?

पद्म—जरा सोच तो लीजिये, क्या कहियेगा ? अभी तो वह यह समझ रही है कि ससुरालमे जारही हूँ। वियोगके दुःख मे यह आशा उसे सँभाले हुए है। लेकिन जब उसे हमारा कौशल ज्ञात हो जायगा तो उसे कितना दुःख होगा ? मुझे पछतावा हो रहा है कि मैंने पहले ही वे बाते क्यों न कह दी ?

विट्ठल—तो अब कहनेमे क्या बिगडा जाता है ? मिर्जापुरम गाडी देरतक ठहरेगी, मैं जाकर उसे समझा दूंगा।

पद्म—मुझसे बडी भूल हुई।

विट्ठल—तो उस भूलपर पछतानेसे अगर काम चल जाय तो जी भरकर पछता लीजिये।

पद्म—आपके पास पेन्सिल हो तो लाइये, एक पत्र लिखकर सब समाचार प्रकट कर दूं।

विट्ठल—नही तार दे दीजिये, यह और भी उत्तम होगा। आप विचित्र जीव है, सीधी-सी बातमे भी इतना आगा पीछा करने लगते है।

पद्म—समस्या ही ऐसी आ पडी है, मैं क्या करूँ ? एक बात मेरे ध्यानमे आती है, मुगलसरायमे देरतक रुकना पडेगा, बस वही उसके पास जाकर सब वृत्तांत कह दूंगा।

विट्ठल—यह आप बहुत दूरकी कौडी लाये, इसलिये बुद्धिमानोंने कहा है कि कोई काम बिना भली भाँति सोचे नही करना चाहिये। आपकी बुद्धि ठिकानेपर पहुँचती है, लेकिन बहुत चक्कर खाकर। यही बात आपको पहले न सूझी।

शान्ता ड्योढ़े दरजेके जनाने कमरेमे बैठी हुई थी। वहाँ दो ईसाई लेडियाँ ओर बैठी थी। वे शान्ताको देखकर अग्रेजीमे बाते करने लगी।

"मालूम होता है यह कोई नवविवाहिता स्त्री है।"

"हाँ, किसी ऊँचे कुलकी है। ससुराल जा रही है।"

"ऐसी रो रही है मानों कोई ढकेले लिये जाता हो।"

"पतिकी अभीतक सूरत न देखी होगी, प्रेम कैसे हो सकता है। भयसे उसका हृदय काँप रहा होगा।"

"यह इनके यहाँ अत्यत निकृष्ट रिवाज है। बेचारी कन्या एक अनजान घरमे भेज दी जाती है, जहाँ कोई उसका अपना नही होता।"

"यह सब पाशविक कालकी प्रथा है, जब स्त्रियोको बलात् उठा ले जाते थे।"

"क्यो बाईजी, (शान्तासे) ससुराल जा रही हो?"

शान्ताने धीरेसे सिर हिलाया।

"तुम इतनी रूपवती हो, तुम्हारा पति भी तुम्हारे जोड़ का है?"

शान्ताने गभीरतासे उत्तर दिया, पतिकी सुन्दरता नही देखी जाती।

"यदि वह काला-कलूटा हो तो?"

शान्ताने गर्वसे उत्तर दिया, हमारे लिये वह देवतुल्य है, चाहे कैसा ही हो।

अच्छा, मान लो तुम्हारे ही सामने दो मनुष्य लाये जायँ, एक रूपवान हो, दूसरा कुरूप, तो तुम किसे पसन्द करोगी?

शान्ताने दृढतासे उत्तर दिया, जिसे हमारे माता-पिता पसन्द करें।

शान्ता समझ रही थी कि यह दोनो हमारी विवाह-प्रथापर आक्षेप कर रही हैं। थोडी देरके बाद उसने उनसे पूछा, मैंने सुना है आप लोग अपना पति खुद चुन लेती हैं?

"हाँ, हम इस विषयमे स्वतन्त्र हैं।"

"आप अपनेको माँ-बापसे बुद्धिमान समझती है?"

वेश्याओंका नाच करानेके लिये एक भारी टैक्स लगाया जाय, और ऐसे जल्मे किसी हालतमें खुले स्थानोंमें न हो।

प्रोफेसर रमेशदत्तने उसका समर्थन किया।

सैयद शफक़तअली (पें० डिप्टी० कले०) ने कहा—इस तजवीजमें मुझे पूरा इत्तफाक है, लेकिन बगैर मुनासिब तरमीमके मैं इसे तसलीम नहीं कर सकता। मेरी राय है कि रिज्योलूशन के पहले हिस्सेमें यह अल्फाज बढा दिये जायँ—बइस्तसनाय उनके जो नौ माह के अन्दर या तो अपनी निकाह कर लें, या कोई हुनर सीख ले, जिससे वह जायज तरीकेपर जिन्दगी बसर कर सके।

कुँवर अनिरुद्ध सिंह बोले, मुझे इस तरमीमसे पूरी सहानुभूति है। हमें वेश्याओंका पतित समझनेका कोई अधिकार नहीं है, यह हमारी परम धृष्टता है। हम रात-दिन जो रिश्वतें लेते हैं, सूद खाते हैं, दीनोंका रक्त चूसते हैं, असहायोंका गला काटते हैं, कदापि इस योग्य नहीं हैं कि समाजके किसी अंगको नीच या तुच्छ समझें। सबसे नीच हम हैं, सबसे पापी, दुराचारी, अन्यायी हम हैं जो अपनेको शिक्षित, सभ्य, उदार, सच्चा समझते हैं। हमारे शिक्षित भाइयोंहीकी बदौलत दालमण्डी आबाद है, चौकमें चहल-पहल है, चकलोंमें रौनक है। यह मीनाबाजार हम लोगों ही ने सजाया है, ये चिड़ियाँ हम लोगों ने ही फँसाई हैं, ये कठपुतलियाँ हमने बनाई हैं। जिस समाजमें अत्याचारी जमींदार, रिश्वती राज्य-कर्मचारी, अन्यायी महाजन, स्वार्थी बन्धु आदर और सम्मानके पात्र हों, वहाँ दालमण्डी क्यों न आबाद हो? हरामका धन हरामकारीके सिवा और कहाँ जा सकता है? जिस दिन नजराना, रिश्वत और सूद-दर-सूदका अन्त होगा, उसी दिन दालमण्डी उजड़ जायगी, ये चिड़ियाँ उड़ जायँगी—पहले नहीं। मुख्य प्रस्ताव इस तरमीमके बिना नश्तरका वह घाव है जिसपर मरहम नहीं। मैं उसे स्वीकार नहीं कर सकता।

प्रभाकररावने कहा, मेरी समझमें नहीं आता कि इस तरमीमका रिज्योल्यूशनसे क्या सबंध है? इसको आप अलग दूसरे प्रस्तावके रूपमें

पेश कर सकते है । सुधारके लिए आप जो कुछ कर सके वह सर्वथा प्रशसनीय है, लेकिन यह काम बस्तीसे हटाकर भी उतना ही आसान है जितना शहरके भीतर, बल्कि वहाँ वह सुविधा अधिक हो जायगी ।

अबुलवफाने कहा, मुझे इस तरमीमसे पूरा इत्तफाक है ।

अब्दुल्लतीफ बोले, बिला तरमीमके मै रिज्योल्यूशनको कभी कबूल नही कर सकता ।

दीनानाथ तिवारीने भी तरमीम पर जोर दिया ।

पद्मसिह बोले, इस प्रस्तावसे हमारा उद्देश्य वेश्याओको कष्ट देना नही वरन् उन्हे सुमार्गपर लाना है, इसलिये मुझे इस तरमीमके स्वीकार करनेमे कोई आपत्ति नहीं है ।

सैयद तेगअलीने फरमाया, तरमीमसे असल तजवीजका मशा फौत हो जानका खौफ है । आप गोया एक मकान का सदर दरवाजा बन्द करके पीछेकी तरफ दूसरा दरवाजा बना रहे है । यह गैरमुमकिन है कि वे औरतें जो अब तक ऐश और बेतकल्लुफीकी जिन्दगी बसर करती थी, मेहनत और मजदूरीकी जिन्दगी बसर करने पर राजी हो जायँ । वह इस तरमीमसे नाजायज फायदा उठायेगी, कोई अपने बालाखानेपर सिगरकी एक मशीन रखकर अपना बचाव कर लेगी, कोई मोजेकी एक मशीन रख लेगी, कोई पानकी दूकान खोल लेगी, कोई अपने बालाखानेपर सेब और अनार के खोनचे सजा देगी । नकली निकाह और फरजी शादियोका बाजार गर्म हो जायगा और इस परदेकी आड़मे पहलेसे भी ज्यादा हरामकारी होने लगेगी । इस तरमीमको मजूर करना इंसानी खसलतसे बेइल्मीका इजहार करना है ।

हकीम शोहरतखांने कहा, मुझे सैयद तेगअलीके खयालात बेजा मालूम होते है । पहले इन खबीस हस्तियोंको शहरबदर कर देना चाहिये । इसके बाद अगर वह जायज तरीकेपर जिन्दगी बसर करना चाहे तो काफी इतमीनानके बाद उन्हे इम्तहानन शहरमे आकर आबाद होनेकी इजाजत देनी चाहिये । शहरका दरवाजा बन्द नही है, जो चाहे यहाँ आबाद

हो सकता है। मुझे कामिल यकीन है कि तरमीमसे इस तजवीजका मकसद गायब हो जायगा।

शरीफहसन वकील बोले, इसमें कोई शक नहीं कि पंडित पद्मसिंह एक बहुत ही नेक और रहीम बुजुर्ग हैं, लेकिन इस तरमीमको कबूल करके उन्होंने असल मकसदपर निगाह रखनेके बजाय हरदिलअजीज बननेकी कोशिश की है। इसमें तो यही बेहतर था कि यह तजवीज पेश ही न की जाती। सैयद शफकतअली साहबने अगर ज्यादा गौरसे काम लिया होता तो वह कभी यह तरमीम पेश न करते।

शाकिरबेगने कहा, कम्प्रोमाइज मुलकी मुआमिलातमें चाहे कितना ही काबिल तारीफ हो, लेकिन इखलाकी बुराइयोंपर सिर्फ परदा पड जाता है।

सभापति सेठ बलभद्रदासने रिज्योल्यूशनके पहले भागपर राय ली। ९ सम्मतियाँ अनुकूल थीं, ८ प्रतिकूल। प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

फिर तरमीमपर राय ली गयी, ८ आदमी उसके अनुकल थे, ८ प्रतिकूल, तरमीम भी पास हो गयी। सभापतिने उसके अनुकूल राय दी। डाक्टर श्यामाचरणने किसी तरफ राय नहीं दी।

प्रोफेसर रमेशदत्त और रुस्तमभाई और प्रभाकरराव ने तरमीमके स्वीकृत हो जानेमें अपनी हार समझी और पद्मसिंहको और इस भावसे देखा, मानों उन्होंने विश्वासघात किया है। कुँवरसाहबके विषयमें उन्होंने स्थिर किया कि यह केवल बातूनी, शक्की और सिद्धांतहीन मनुष्य है।

अबुलवफा और उनके मित्रगण ऐसे प्रसन्न थे मानों उन्हींकी जीत हुई है। उनका यों पुलकित होना प्रभाकरराव और उनके मित्रोंके हृदयमें काँटेको तरह गड़ता था।

प्रस्तावके दूसरे भागपर सम्मति ली गई। प्रभाकरराव और उनके मित्रोंने इस बार उसका विरोध किया। वह पद्मसिंहको विश्वासघातकताका दण्ड देना चाहते थे। यह प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया। अबुलवफा और उनके मित्र बगले बजाने लगे।

अब प्रस्तावके तीसरे भागकी बारी आई। कुँवर अनिरुद्धसिंहने उसका समर्थन किया। हकीम शोहरतखा, सैयद शफकत अली, शरीफ हसन और शाकिरबेगने भी उसका अनुमोदन किया। लेकिन प्रभाकर-राव और उनके मित्रोने उसका भी विरोध किया। तरमीमके पास हो जानेके बाद उन्हे इस संबधमे अन्य सभी उद्योग निष्फल मालूम होते थे। वह उन लोगोंमे थे जो या तो सब लेंगे या कुछ न लेंगे। प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

कुछ रात गये सभा समाप्त हुई। जिन्हे हारकी शंका थी वह हँसते हुए निकले, जिन्हे जीतका निश्चय था, उनके चेहरोपर उदासी छाई हुई थी।

चलते समय कुँवरसाहबने मिस्टर रुस्तमभाई से कहा, यह आप-लोगोंने क्या कर दिया ?

रुस्तमभाईने व्यंग भावसे उत्तर दिया, जो आपने किया वही हमने किया। आपने घडेमे छेद कर दिया, हमने उसे पटक दिया। परिणाम दोनोंका एक ही है।

सब लोग चले गये। अन्धेरा गहरा हो गया। चौकीदार और माली भी फाटक बन्द करके चल दिये, लेकिन पद्मसिंह वहीं घासपर निरुत्साह और चिंताकी मूर्ति बने हुए बैठे थे।

४४

पद्मसिंहकी आत्मा किसी भाँति इस तरमीमके स्वीकार करनेमे अपनी भूल स्वीकार न करती थी। उन्हे कदापि यह आशा न थी कि उनके मित्रगण एक गौण बात पर उनका इतना विरोध करेंगे। उन्हे प्रस्ताव-के एक अंगके अस्वीकृत हो जानेका खेद न था, खेद यह था कि इसका दोष उनके सिर मढा जाता था, हालाँकि उन्हें यह संपूर्णत अपने सहकारियोंकी असहिष्णुता और अदूरदर्शिता प्रतीत होती थी। इस तरमीमको वह गौण ही समझते थे। इसके दुरुपयोगकी जो शंकाएँ

की गयी थीं उनपर पद्मसिंहको विश्वास न था। वह अविश्वास इस प्रस्तावकी सारी जिम्मेदारी उन्हींके सिर डाल देता था। उन्हे अब यह निश्चय होता जाता था कि वर्तमान सामाजिक दशाके होते हुए इस प्रस्तावसे जो आशाएँ की गई थीं उनके पूरे होनेकी कोई सभावना नही है। वह कभी-कभी पछताते थे कि मैंने व्यर्थही यह झगडा अपने सिर लिया। उन्हे आश्चर्य होता था कि मै कैसे इस काँटेदार झाड़ीमे उलझा और यदि इस भावी असफलताका भार इस तरमीमके सिर जा पडता तो वे एक बड़ी भारी जिम्मेदारीसे मुक्त हो जाते, पर यह उन्हे दुर्दशामात्र प्रतीत होती थी। अब सारी बदनामी उन्हींपर आवेगी, विरोधी दल उनकी हँसी उडावेगा, उनकी उद्दण्डतापर टिप्पणियाँ करेगा और यह सारी निन्दा उन्हे अकेले सहनी पड़ेगी, कोई उनका मित्र नहीं, कोई उन्हें तसल्ली देनेवाला नहीं। विट्ठलदाससे आशा थी कि वह उनके साथ न्याय करेंगे, उनके रूठे हुए मित्रोको मना लावेगे, लेकिन विट्ठलदासने उल्टे उन्हींको अपराधी ठहराया। वह बोले, आपने इस तरमीमको स्वीकार करके सारा गुड गोबर कर दिया, बरसोकी मेहनतपर पानी फेर दिया। केवल कुँवर अनिरुद्धसिंह वह मनुष्य थे जो पद्मसिंहके व्यथित हृदयको ढाढस देते थे और उनसे सहानुभूति रखते थे।

पूरे महीने भर पद्मसिंह कचहरी न जा सके। बस, अकेले बैठे हुए इसी घटनाकी आलोचना किया करते। उनके विचारोमे एक विचित्र निष्पक्षता आ गई थी। मित्रोके वैमनस्यसे उन्हे जो दुःख होता था, उस पर ध्यान देकर वह यह सोचते कि जब ऐसे सुशिक्षित, विचारशील पुरुष एक जरासी बातपर अपने निश्चित सिद्धांतोके प्रतिकूल व्यवहार करते है तो इस देशका कल्याण होनेकी कोई आशा नही। माना कि मैंने तरमीम को स्वीकार करनेमें भूल की, लेकिन मेरी भूलने उन्हे क्यों अपने मार्गसे विचलित कर दिया?

पद्मसिंहको इस मानसिक कष्टकी अवस्थामें पहली बार अनुभव हुआ कि एक अबला स्त्री, चित्तको सावधान करनेकी कितनी शक्ति रखती

है। अगर संसारमे कोई प्राणी था जो सपूर्णत. उनकी अवस्थाको समझता था तो वह सुभद्रा थी। वह उस तरमीमको उससे कही अधिक आवश्यक समझती थी, जितना वे स्वयं समझते थे। वह उनके सहकारियोंकी उनसे कही अधिक तीव्र समालोचना करती। उसकी बातोसे पद्मसिहको वड़ी शाति होती थी। यद्यपि वह समझते थे कि सुभद्रामे ऐसे गहन विषयके समझने और तौलनेकी सामर्थ्य नही और यह जो कुछ कहती है वह केवल मेरी ही बातोकी प्रतिध्वनि है तथापि इस ज्ञानसे उनके आनन्दमे कोई विघ्न न पडता था।

लेकिन महीना पूरा भी न हो पाया था कि प्रभाकररावने अपने पत्रमे इस प्रस्तावके संबंधमे एक लेखमाला निकालनी आरंभ कर दी। उसमे पद्मसिहपर ऐसी ऐसी मार्मिक चोटे करने लगे कि उन्हे पढ़कर वह तिलमिला जाते थे। एक लेखमे उन्होने पद्मसिहके पूर्व चरित्र और इस तरमीममे घनिष्ट सबध दिखाया। एक दूसरे लेखमे उनके आचरणपर आक्षेप करते हुए लिखा, वह वर्तमान कालके देशसेवक है जो देशको भूल जायँ, पर अपनेको कभी नही भूलते, जो देशसेवाकी आडमे अपना स्वार्थसाधन करते है। जातिके नवयुवक कुएँमे गिरते हो तो गिरे, काशीके हाजीकी कृपा वनी रहनी चाहिये। पद्मसिहको इस अनुदारता और मिथ्या द्वेषपर जितना क्रोध आता था उतनाही आश्चर्य होता था। असज्जनता इस सीमा तक जा सकती है यह अनुभव उन्हे आज ही हुआ। यह सभ्यता और शालीनताके ठेकेदार वनते है, लेकिन उनकी आत्मा ऐसी मलिन है। और किसीमे इतना साहस नहीं कि इसका प्रतिवाद करे?

सन्ध्याका समय था। वह लेख चारपाईपर पडा हुआ था। पद्मसिह सामने मेजपर वैठे हुए इस लेखका उत्तर लिखनेकी चेष्टा कर रहेथे, पर कुछ लिखते न वनता था कि सुभद्राने आकर कहा, गरमीमे यहाँ क्यो वैठे हो? चलो वाहर वैठो।

पद्म—प्रभाकररावने मुझे आज खूब गालियाँ दी है, उन्हीका जवाव लिख रहा हूँ।

सुभद्रा—वह तुम्हारे पीछे इस तरह क्यों पड़ा हुआ है ?

यह कहकर सुभद्रा वह लेख पढ़ने लगी और पाँच मिनटमें उसने उसे आद्योपान्त पढ डाला।

पद्म—कैसा लेख है ?

सुभद्रा—यह लेख थोड़े ही है, यह तो खुली हुई गालियाँ हैं। मैं समझती थी कि गालियोंकी लड़ाई स्त्रियोंमे ही होती है, लेकिन देखती हूँ तो पुरुष हम लोगोंमे भी बढ़े हुए हैं। ये विद्वान् भी होंगे ?

पद्म—हाँ, विद्वान् क्यों नहीं हैं, दुनियाभरकी किताबें चाटे बैठे हैं।

सुभद्रा—और उसपर यह हाल !

पद्म—मै इसका उत्तर लिख रहा हूँ, ऐसी खबर लूँगा कि वह भी याद करे कि किसीसे पाला पड़ा था।

सुभद्रा—मगर गालियोंका क्या उत्तर होगा ?

पद्म—गालियाँ।

सुभद्रा—नहीं, गालियोंका उत्तर मौन है। गालियोंका उत्तर गाली तो मूर्ख भी देते हैं, फिर उनमे और तुममे अन्तर ही क्या है ?

पद्मसिंहने सुभद्राको श्रद्धापूर्ण नेत्रोंसे देखा। उसकी बात उनके मनमे बैठ गई। कभी-कभी हमें उन लोगोंसे भी शिक्षा मिलती है, जिन्हें हम अभिमानवश अज्ञानी समझते हैं।

पद्म—तो मौन धारण कर लूँ ?

सुभद्रा—मेरी तो यही सलाह है। उसे जो जी मे आवे बकने दो। कभी-न-कभी वह अवश्य लज्जित होगा। बस वही इन गालियोंका दण्ड होगा।

पद्म—वह लज्जित कभी न होगा, ये लोग लज्जित होना जानते ही नहीं। अभी मैं उसके पास जाऊँ तो मेरा बड़ा आदर करेगा, हँस-हँसकर बोलेगा, लेकिन सन्ध्या होते ही फिर उन पर गालियोंका नशा चढ़ जायगा।

सुभद्रा—तो उसका उद्यम क्या दूसरोंपर आक्षेप करना ही है ?

पद्म—नही, उद्यम तो यह नहीं है लेकिन संपादक लोग अपने ग्राहक बढानेके लिये इस प्रकार की कोई न कोई फुलझडी छोडते रहते है। ऐसे आक्षेपपूर्ण लेखोसे पत्रोकी बिक्री बढ जाती है, जनता को ऐसे झगडोमे आनन्द प्राप्त होता है और सपादक लोग अपने महत्वको भूलकर जनता के इस विवाद-प्रेमसे लाभ उठाने लगते है। गुरुपदको छोडकर जनताके कलह-प्रेमका आवाहन करने लगते है। कोई-कोई संपादक तो यहाँ तक कहते है कि अपने ग्राहकोको प्रसन्न रखना हमारा कर्त्तव्य है। हम उनका खाते है तो उन्हीका गावेगे।

सुभद्रा—तब तो ये लोग केवल पैसेके गुलाम है। इनपर क्रोध करनेकी जगह दया करनी चाहिये।

पद्मसिंह मेजसे उठ आये। उत्तर लिखनेका विचार छोड दिया। वह सुभद्राको ऐसी विचारशीला कभी न समझते थे, उन्हे अनुभव हुआ कि यद्यपि मैंने बहुत विद्या पढी है, पर इसके हृदय की उदारताको मै नहीं पहुँचता। यह अशिक्षिता होकर भी मुझसे कही उच्च विचार रखती है। उन्हें आज ज्ञात हुआ कि स्त्री सन्तान-हीन होकर भी पुरुष के लिए शान्ति, आनन्दका एक अविरल स्रोत है। सुभद्राके प्रति उनके हृदयमे एक नया प्रेम जाग्रत हो गया। एक लहर उठी जिसने बरसोंके जमे हुए मालिन्यको काटकर बहा दिया। उन्होने विमल, विशुद्धभावसे उसे देखा। सुभद्रा उसका आशय समझ गई और उसका हृदय आनन्दसे विह्लल गद्‌गद् हो गया।

४५

सदन जब सुमनको देखकर लौटा तो उसकी दशा उस दरिद्र मनुष्यकी-सी थी, जिसका वर्षो का धन चोरोने हर लिया हो।

वह सोचता था, सुमन मुझसे बोली क्यो नहीं, उसने मेरी ओर ताका क्यों नहीं? क्या वह मुझे इतना नीच समझती है? नही, वह अपने पूर्व चरित्रपर लज्जित है और मुझे भूल जाना चाहती है। सभव है,

निकाल देता, पर गुमनाम लेखोंका छापना नियम विरुद्ध है, इसीसे मजबूर था। शुभ नाम ?

सदनने अपना नाम बताया। उसका क्रोध कुछ शान्त हो चला था।

प्रभाकर—आप तो शर्माजीके परम भक्त मालूम होते है।

सदन—मै उनका भतीजा हूँ।

प्रभाकर—ओह, तब तो आप अपनेही है। कहिये, शर्माजी अच्छे तो है ? वे तो दिखाई ही नही दिये।

सदन—अभीतक तो अच्छे है, पर आपके लेखोंका यही तार रहा तो ईश्वरही जाने उनकी क्या गति होगी। आप उनके मित्र होकर इतना द्वेष कैसे करने लगे ?

प्रभाकर—द्वेष ? राम राम ! आप क्या कहते है ? मुझे उनमे लेशमात्र भी द्वेष नही है। आप हम सपादकोंके कर्त्तव्यको नहीं जानते। हम पब्लिकके सामने अपना हृदय खोलकर रखना अपना धर्म समझते है। अपने मनोभावोंको गुप्त रखना हमारे नीत-शास्त्रमे पाप है। हम न किसीके मित्र न है न किसीके शत्रु। हम अपने जन्मके मित्रोंको एक क्षणमें त्याग देते है और जन्मके शत्रुओसे एक क्षणमे गले मिल जाते है। हम सार्वजनिक विषयमे किसीकी भूलोकी क्षमा नही, करते, इसलिए कि हमारे क्षमा करनेसे उनका प्रभाव और भी हानिकारक हो जाता है।

पद्मसिह मेरे परममित्र है और मै उनका हृदयसे आदर करता हूँ। मुझे उनपर आक्षेप करते हुए हार्दिक वेदना होती है। परसोतक मेरा उनसे केवल सिद्धान्तका विरोध था, लेकिन परसों ही मुझे ऐसे प्रमाण मिले है, जिनसे विदित होता है कि उस तरमीमके स्वीकार करनेमे उनका कुछ और ही उद्देश्य था। आपसे कहनेमे कोई हानि नही है कि उन्होंने कई महीने हुए सुमनबाई नामकी वेश्याको गुप्त रीतिसे विधवा आश्रममें प्रविष्ट करा दिया और लगभग एक माससे उसकी छोटी बहनको भी आश्रममें ही ठहरा रक्खा है। मै अब भी चाहता हूँ कि मुझे गलत खबर

मिली हो, लेकिन मै शीघ्र ही किसी और नीयतसे नही तो उनका प्रतिवाद करानेके ही लिए इस खबरको प्रकाशित कर दूगा ?

सदन—यह खबर आपको कहाँ से मिली ?

प्रभाकर—इसे मै नही बता सकता, लेकिन आप शर्माजीसे कह दीजियेगा कि यदि उनपर यह मिथ्या दोषारोपण हो तो मझे सूचित कर दे। मुझे यह मालूम हुआ है कि इस प्रस्तावके बोर्डमे आनेसे पहले शर्माजी हाजी हाशिमके यहाँ नित्य जाते थे। ऐसी अवस्थामे आप स्वय देख सकते है कि मै उनकी नीयतको कहाँतक निस्पृह समझ सकता था ?

सदनका क्रोध शान्त हो गया। प्रभाकररावकी बातोंने उसे वशीभूत कर लिया, वह मनमे उनका आदर करने लगा और कुछ इधर-उधर की बाते करके घर लौट आया। उसे अब सबसे बडी चिन्ता यह थी कि क्या शान्ता सचमुच आश्रममे लाई गई है ?

रात्रिको भोजन करते समय उसने बहुत चाहा कि शर्माजीसेइस विषयमे कुछ बातचीत करे, पर साहस न हुआ। सुमनको तो विधवा-आश्रममे जाते उसने देखा ही था, लेकिन अब उसे कई बातोका स्मरण करके जिनका तात्पर्य अबतक उसकी समझमे न आया, था, शान्ताके लाये जानेका सन्देह भी होने लगा।

वह रातभर विकल रहा। शान्ता आश्रममे क्यो आई है ? चाचाने उसे क्यो यहाँ बुलाया है ? क्या उमानाथने उसे अपने घरमे नही रखना चाहा ? इसी प्रकारके प्रश्न उसके मनमे उठते रहे। प्रात काल वह विधवा आश्रमवाले घाटकी ओर चला कि अगर सुमनसे भेट हो जाय तो उससे सारी बाते पूछूँ। उसे वहाँ बैठे थोडी ही देर हुई थी कि सुमन आती हुई दिखाई दी। उसके पीछे एक और सुन्दरी चली आती थी। उसका मुखचन्द्र घूघटसे छिपा हुआ था।

सदनको देखते ही सुमन ठिठक गई। वह इधर कई दिनोसे सदनसे मिलना चाहती थी। यद्यपि पहले उसने मनमे निश्चय कर लिया था कि सदनसे कभी न बोलूंगी, पर शान्ताके उद्धारका उसे इसके सिवा कोई

अन्य उपाय न सूझना था ? उसने लजाते हुए सदनसे कहा, सदनसिंह आज बड़े भाग्यसे तुम्हारे दर्शन हुए। तुमनेतो इधर आना ही छोड़ दिया। कुशलसे तो हो ?

मदन झेंपता हुआ बोला, हाँ, सब कुशल है।

सुमन---दुबले बहुत मालूम होते हो, बीमार थे क्या ?

सदन---नहीं, बहुत अच्छी तरह हूँ। मुझे मौत कहाँ ?

हम बहुधा अपनी झेंप मिटाने और दूसरोंकी सहानुभूति प्राप्त करनेके लिए कृत्रिम भावोंकी आड़ लिया करते हैं।

सुमन---चुप रहो, कैसा अशकुन मुँहसे निकालते हो। मैं मरनेको मनाती तो एक बात थी, जिसके कारण यह सब हो रहा है। इस राम-लीलाकी कैकेयी मैं ही हूँ। आप भी डूबी और दूसरोंको भी अपने साथ ले डूबी। खड़े कबतक रहोगे, बैठ जाओ। मुझे आज तुमसे बहुत सी बातें करनी हैं। मुझे क्षमा करना, अब तुम्हें भैया कहूँगी। अब मेरा तुमसे भाई बहनका नाता है। मैं तुम्हारी बड़ी साली हूँ, अगर कोई कड़ी बात मुँहसे निकल जाय तो बुरा मत मानना। मेरा हाल तो तुम्हे मालूम ही होगा। तुम्हारे चाचाने मेरा उद्धार किया और अब मैं विधवा आश्रममें पड़ी अपने दिनोंको रोती हूँ और सदा रोऊँगी। इधर एक महीनेसे मेरी अभागिनी बहन भी यहीं आ गई है, उमानाथके घर उसका निर्वाह न हो सका। शर्माजीको परमात्मा चिरंजीवी करे, वह स्वयं अमोला गए और इसे ले आए। लेकिन यहाँ लाकर उन्होंने भी इसकी सुधि न ली। मैं तुमसे पूँछती हूँ, भला यह कहाँ की नीति है कि एक भाई चोरी करे और दूसरा पकड़ा जाय। अब तुमसे कोई बात छिपी नहीं है, अपने खोटे नसीबसे, दिनोंके फेरसे, पूर्वजन्मके पापोंसे मुझ अभागिनीने धर्मका मार्ग छोड़ दिया। उसका दण्ड मुझे मिलना चाहिए था और वह मिला। लेकिन इस बेचारीने क्या अपराध किया था कि जिसके लिए तुम लोगोंने इसे त्याग दिया ? इसका उत्तर तुम्हें देना पड़ेगा। देखो, अपने बड़ोंकी आड़ मत लेना, यह कायर मनुष्यकी चाल है। सच्चे हृदयसे बताओ,

यह अन्याय था या नही ? और तुमने कैसे ऐसा घोर अन्याय होने दिया ? क्या तुम्हे एक अबला बालिकाका जीवन नष्ट करते हुए तनिक भी दया न आई ?

यदि शान्ता यहाँ न होती तो कदाचित् सदन अपने मनके भावोंको प्रकट करनेका साहस कर जाता। वह इस अन्यायको स्वीकार कर लेता। लेकिन शान्ताके सामने वह एकाएक अपनी हार माननेके लिए तैयार न हो सका। इसके साथ ही अपनी कुल मर्य्यादाकी शरण लेते हुए भी उसे सकोच होता था। वह ऐसा कोई वाक्य मुँहसे न निकालना चाहता था, जिससे शान्ताको दुख हो, न कोई ऐसी बात कह सकता था, जो झूठी आशा उत्पन्न करे। उसकी उडती हुई दृष्टिने जो शान्तापर पडी थी, उसे बडे संकटमे डाल दिया था, उसकी दशा उस बालककी-सी थी, जो किसी मेहमानकी लाई हुई मिठाईको ललचायी हुई आँखोसे देखता है, लेकिन माताके भयसे निकालकर खा नही सकता। बोला, बाईजी, आपने पहले ही मेरा मुँह बन्द कर दिया है, इसलिए मै कैसे कहूँ कि जो कुछ मेरे बडोने किया, मै उनके सिर दोष रखकर अपना गला नही छुड़ाना चाहता। उस समय लोक-लज्जासे मै भी डरता था। इतना तो आप भी मानेगी कि ससारमे रहकर ससारकी चाल चलनी पडती है। मै इस अन्यायको स्वीकार करता हूँ; लेकिन यह अन्याय हमने नही किया, वरन् उस समाजने किया है, जिसमे हम लोग रहते है।

सुमन--भैया, तुम पढे-लिखे मनुष्य हो, मै तुमसे बातोमे नही जीत सकती, जो तुम्हे उचित जान पडे वह करो। अन्याय अन्याय ही है, चाहे कोई एक आदमी करे या सारी जाति करे। दूसरोके भयसे किसी पर अन्याय नही करना चाहिए। शान्ता यहाँ खडी है, इसलिए मैं उसके भेद नही खोलना चाहती, लेकिन इतना अवश्य कहूँगी कि तुम्हे दूसरी जगह धन, सम्मान, रूप, गुण सब मिल जाय पर यह प्रेम न मिलेगा। अगर तुम्हारे जैसा इसका हृदय भी होता तो यह आज अपनी नई ससुरालमे आनन्दसे बैठी होती. लेकिन केवल तुम्हारे प्रेमनें उसे यहाँ खीचा।

तुम उसे जिस तरह चाहे रखो, वह तुम्हारे ही नामपर आजन्म बैठी रहे।

सदनने देखा कि शान्ताकी आँखोसे जल बहकर उसके पैरोपर गिर रहा है। उसका सरल प्रेम-तृषित हृदय शोकसे भर गया। अत्यन्त करुण स्वरसे बोला, मेरी समझमे नही आता कि क्या करूँ? ईश्वर साक्षी है कि दुःखसे मेरा कलेजा फटा जाता है।

सुमन—तुम पुरुष हो, परमात्माने तुम्हे सब शक्ति दी है।

सदन—मुझसे जो कुछ कहिये करनेको तैयार हूँ।

सुमन—वचन देते हो?

सदन—मेरे चित्तकी जो दशा हो रही है वह ईश्वर ही जानते होगे, मुहसे क्या कहूँ।

सुमन—मरदोकी बातोपर विश्वास नही आता।

यह कहकर मुस्कुराई। सदनने लज्जित होकर कहा, अगर अपने वशकी बात होती तो अपना हृदय निकालकर आपको दिखाता। यह कहकर उसने दबी हुई आँखोसे शान्ताकी ओर ताका।

सुमन—अच्छा, तो आप इसी गगा नदीके किनारे शान्ताका हाथ पकडकर कहिए कि तुम मेरी स्त्री हो और मै तुम्हारा पुरुष हूँ, मै तुम्हारा पालन करूँगा।

सदनके आत्मिक बलने जवाब दे दिया। वह बगले झाँकने लगा, मानो अपना मुह छिपानेके लिए कोई स्थान खोज रहा है। उसे ऐसा जान पडा कि गगा मुझे छिपानेके लिए बढी चली आती है। उसने डूबते हुए मनुष्यकी भाँति आकाशकी ओर देखा और लज्जासे आँखे नीची किए रुक-रुककर बोला, सुमन, मुझे इसके लिए सोचनेका अवसर दो। सुमनने नम्रतासे कहा, हाँ सोचकर निश्चय कर लो, मै तुम्हे धर्म सकटमे नही डालना चाहती। यह कहकर वह शान्तासे बोली, देख तेरा पति तेरे सामने खडा है। मुझसे जो कुछ कहते बना उससे कहा, पर वह नही पसीजता। वह अब सदाके लिए तेरे हाथसे जाता है। अगर तेरा प्रेम सत्य है और उसमे कुछ बल है तो उसे रोक ले, उससे प्रेम वरदान ले ले।

यह कहकर सुमन गगाकी ओर चली। शान्ता भी धीरे-धीरे उसीके पीछे चली गई। उसका प्रेम मानके नीचे दब गया। जिसके नामपर वह यावज्जीवन दुख झेलनेका निश्चय कर चुकी थी, जिसके चरणोपर वह कल्पनामे अपनेको अर्पण कर चुकी थी, उसीसे वह इस समय तन बैठी। उसने उसकी अवस्थाको न देखा, उसकी कठिनाइयोका विचार न किया, उसकी पराधीनतापर ध्यान न दिया। इस समय वह यदि सदनके सामने हाथ जोडकर खडी हो जाती तो उसका अभीष्ट सिद्ध हो जाता पर उसने विनयके स्थानपर मान करना उचित उमझा।

सदन एक क्षण वहाँ खडा रहा और बादको पछताता हुआ घरको चला।

४६

सदनको ऐसी ग्लानि हो रही थी, मानो उसने कोई बड़ा पाप किया हो। वह बार-बार अपने शब्दोपर विचार करता और यही निश्चय करता कि मै बड़ा निर्दयी हूँ। प्रेमाभिलाषाने उसे उन्मत्त कर दिया था।

वह सोचता, मुझे संसारका इतना भय क्यो है? ससार मुझे क्या दे देता है? क्या केवल झूठी बदनामीके भयसे मै उस रत्नको त्याग दूँ, जो मालूम नही मेरे पूर्वजन्मकी कितनी ही तपस्याओका फल है? अगर अपने धर्मका पालन करनेके लिए मेरे बन्धुगण मुझे छोड दे तो क्या हानि है? लोकनिन्दाका भय इसलिए है कि वह हमें बुरे कामोसे बचाती है। अगर वह कर्त्तव्य मार्गमे बाधक हो तो उससे डरना कायरता है। यदि हम किसी निरपराधपर झूठ अभियोग लगावे, तो ससार हमको बदनाम नहीं करता, वह इस अकर्ममे हमारी सहायता करता है, हमको गवाह और वकील देता है। हम किसीका धन दबा बैठें, किसीकी जायदाद हड़प ले, तो संसार हमको कोई दण्ड नही देता, देता भी है तो बहुत ही कम, लेकिन ऐसे कुकर्मों के लिए वह हमे बदनाम करता है, हमारे माथेपर सदाके लिए कलंकका टीका लगा देता है। नही, लोकनिन्दाका भय मुझसे

कर दिया। उसे अपने माता-पितापर, अपने चाचापर, समाजपर और अपने आपपर क्रोध आता। अभी थोड़े ही दिन पहले वह स्वयं फिटन पर सैर करने निकलता था, लेकिन अब किसी फिटनको आते देखकर उसका रक्त खौलने लगता था। वह किसी फैशनेबुल मनुष्यको पैदल चलते पाता तो अदबदाकर उससे कन्धा मिलाकर चलता और मनमें सोचता कि यह जरा भी नाक-भौं सिकोड़े तो इसकी खबर लूं। बहुधा वह कोचवानोंके चिल्लानेकी परवाह न करता। सबसे छेड़कर लड़ना चाहता था। ये लोग गाड़ियोंपर सैर करते है, कोट-पतलून डाटकर बनठनकर हवा खाने जाते है और मेरा कहीं ठिकाना नही।

घरपर जमींदारी होनेके कारण सदनके सामने जीविकाका प्रश्न कभी न आया था। इसीलिए उसने शिक्षाकी ओर विशेष ध्यान न दिया था, पर अकस्मात् जो यह प्रश्न उसके सामने आ गया, तो उसे मालूम होने लगा कि इस विषयमे मैं असमर्थ हूँ। यद्यपि उसने अग्रेजी न पढ़ी थी, पर इधर उसने हिन्दी भाषाका अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। वह शिक्षित समाजको मातृभाषामे अश्रद्धा रखनेके कारण देश और जातिका विरोधी समझता था। उसे अपने सच्चरित्र होनेपर भी घमण्ड था। जबसे उसके लेख "जगत" मे प्रकाशित हुए थे वह अग्रेजी पढ़े-लिखे आदमियोंको अनादरकी दृष्टिसे देखने लगा था। यह सबके सब स्वार्थ-सेवी है, इन्होंने केवल दीनोंका गला दबानेके लिए, केवल अपना पेट पालनेके लिए अंगरेजी पढ़ी है, यह सबके सब फैशनके गुलाम है, जिनकी शिक्षाने उन्हें अंगरेजोंका मुँह चिढ़ाना सिखा दिया है, जिनमे दया नहीं, धर्म नही, निज भाषासे प्रेम नहीं, चरित्र नही, आत्मबल नहीं, वे भी कुछ आदमी है। ऐसे ही विचार उसके मनमे आया करते थे। लेकिन अब जो जीविकाकी समस्या उसके सामने आई तो उसे ज्ञात हुआ कि मैं इनके साथ अन्याय कर रहा था। ये दयाके पात्र है। मैं भाषाका पण्डित न सही, पर बहुतोंसे अच्छी भाषा जानता हूँ, मेरा चरित्र उच्च न सही, पर बहुतोंसे अच्छा है, मेरे विचार उच्च न हो, पर ऐसे नीच नहीं, लेकिन मेरे लिए सब

दरवाजे बन्द हैं। मैं या तो कही चपरासी हो सकता हूँ या वहुत होगा तो कान्सटेबिल हो जाऊँगा। वस, यही मेरी सामर्थ्य है। यह हमारे साथ कितना वडा अन्याय है, हम कैसे ही चरित्रवान् हों, कितने ही वुद्धिमान् हों, कितने ही विचारशील हों, पर अग्रेजी भाषाका ज्ञान न होनेसे उनका कुछ मूल्य नहीं। हमसे अधम और कौन होगा जो इस अन्यायको चुपचाप सहते हैं। नही, वल्कि उसपर गर्व करते हैं। नही, मुझे नौकरी करनेका विचार मनसे निकाल डालना चाहिए।

सदनकी दशा इस समय उस मनुष्यकी सी थी जो रातको जगलमे भटकता हुआ अन्धेरी रातमे झुंझलाता है।

इसी निराशा और चिन्ताकी दशामे एक दिन वह टहलता हुआ, नदीके किनारे उस स्थानपर जा पहुँचा जहाँ वहुत सी नावे लगी हुई थी। नदीमे छोटी-छोटी नावे इधर-उधर इठलाती फिरती थी। किसी-किसी नौकामे सुरीली ताने सुनाई देती थी। कई किश्तियोंपरसे मल्लाह लोग वोरे उतार रहे थे। सदन एक नावपर जा वैठा। सन्ध्या समयकी शान्तिदायिनी छटा और गगातटके मनोरम काव्यमय दृश्यने उसे वशीभूत कर लिया। वह सोचने लगा, यह कैसा आनन्दमय जीवन है, ईश्वर मुझे भी ऐसा ही एक झोपडा दे देता, तो मै उसीपर सन्तोष करता, यही नदी तटपर विचरता लहरोपर चलता और आनन्दके राग गाता। शान्ता झोपड़ेके द्वारपर खड़ी मेरी राह देखती। कभी-कभी हम दोनो नावपर वैठकर गंगाकी सैर करते। उसकी रसिक कल्पनाने उस सरल सुखमय-जीवनका ऐसा सुन्दर चित्र खीचा, उस आनन्दमय स्वप्नके देखनेमे वह ऐसा मग्न हुआ कि उसका चित्त व्याकुल हो गया। वहाँकी प्रत्येक वस्तु उस समय सुख, शान्ति और आनन्दके रंगमे डूबी हुई थी। वह उठा और एक मल्लाहसे वोला, क्यो जी चौधरी यहाँ कोई नाव विकाऊ भी है?

मल्लाह वैठा हुक्का पी रहा था। सदनको देखते ही उठ खडा हुआ और उसे कई नावे दिखाईं। सदनने एक नई किश्ती पसन्द की, मोल-तोल होने लगा, कितने ही और मल्लाह एकत्र हो गये। अन्तमे ३००) में नाव

पक्की हो गई, यह भी तै हो गया कि जिसकी नाव है वही उसे चलानेके लिए नौकर होगा।

सदन घरको ओर चला तो ऐसा प्रसन्न था मानों अब उसे जीवनमें किसी वस्तुकी अभिलाषा नहीं है, मानों उसने किसी बड़े भारी संग्राममें विजय पायी है। सारी रात उसकी आँखोमे नींद नहीं आई। वही नाव जो पाल खोले क्षितिजकी ओरसे चली आती थी उसके नेत्रो के सामने नाचती रही, वही दृश्य उसे दिखाई देते रहे। उसकी कल्पनाने तटपर एक सुन्दर, हरी-भरी लताओसे सजा हुआ झोपड़ा बनाया और शान्ताकी मनोहारिणी मूर्ति आकर उसमें बैठी। झोपड़ा प्रकाशमान हो गया। यहाँतक कि आनन्द-कल्पना धीरे-धीरे नदीके किनारे एक सुन्दर भवन बनाया, उसमे एक वाटिका लगवाई और सदन उसकी कुञ्जोंमे शान्ताके साथ विहार करने लगा। एक ओर नदीकी कलकलध्वनि थी, दूसरी ओर पक्षियोंका कलरव गान। हमें जिससे प्रेम होता है उसे हम सदा एक ही अवस्थामे देखते है, हम उसे जिस अवस्थामे स्मरण करते है, उसी समयके भाव' उसी समयके वस्त्राभूषण हमारे हृदयपर अंकित हो जाते हैं। सदन शान्ताको उसी अवस्थामें देखता था, जब वह एक सादी साडी पहने, सिर झुकाये गंगातटपर खड़ी थी, वह चित्र उसकी आँखोसे न उतरता था।

सदनको इस समय ऐसा मालूम होता था कि इस व्यवसायमें लाभ ही लाभ है, हानिकी सम्भावना ही उसके ध्यानसे बाहर थी। सबसे विचित्र बात यह थी कि अबतक उसने यह न सोचा था कि रुपये कहाँसे आवेंगे?

प्रातःकाल होते ही उसे चिन्ता हुई कि रुपयोका क्या प्रबन्ध करूँ? किससे माँगूँ और कौन देगा? माँगूँ किस बहाने से? चाचासे कहूँ? नहीं उनके पास आजकल रुपये न होंगे। महीनोंसे कचहरी नहीं जाते और दादासे माँगना तो पत्थरसे तेल निकालना है। क्या करूँ? यदि इस समय न गया तो चौधरी अपने मनमे क्या कहेगा? वह छतपर इधर उधर टहलने लगा। अभिलाषाओंका वह विशाल भवन, अभी थोडी देर पहले उसकी कल्पनाने जिसका निर्माण किया था देखते-देखते गिरने

लगा। युवाकालकी आशा पुआलकी आग है जिसके जलने और बुझनेमे देर नही लगती।

अकस्मात् सदनको एक उपाय सूझा गया। वह जोरसे खिलखिलाकर हँसा, जैसे कोई अपने शत्रु को भूमिपर गिराकर बेहँसीकी हँसी हँसता है। वाह! मै भी कैसा मूर्ख हूँ। मेरे सन्दूकमे मोहनमाला रखीहुई है। ३००) से अधिककी होगी। क्यो न उसे बेच डालूं? जब कोई माँगेगा, देखा जायगा। कौन माँगता है और किसीने माँगा भी तो साफ साफ कह दूंगा कि बेचकर खा गया। जो कुछ करना होगा, कर लेगा और अगर उस समयतक हाथमे कुछ रुपये आ गये तो निकालकर फेक दूंगा। उसने आकर सन्दूकसे माला निकाली और सोचने लगा कि इसे कैसे बेचूं। बाजारमे कोई गहना बेचना अपनी इज्जत बेचनेसे कम अपमानकी बात नही है, इसी चिन्ता मे बैठा था कि जीतन कहार कमरेमे झाड देने आया। सदनको मलिन देखकर बोला, भैया, आज उदास हो, आँखे चढी हुई है, रातको सोये नही क्या?

सदनने कहा, आज नीद नही आई। सिरपर एक चिन्ता सवार है।

जीतन—ऐसी कौनसी चिन्ता है? मै भी सुनूं।

सदन—तुमसे कहूँ तो तुम अभी सारे घरमे दोहाई मचाते फिरोगे।

जीतन—भैया, तुम्हीं लोगोंकी गुलामीमे उमिर बीत गई। ऐसा पेटका हलका होता तो एक दिन न चलता। इससे निसाखातिर रहो।

जिस प्रकार एक निर्धन किन्तु शीलवान मनुष्यके मुँहसे बडी कठिनता, बडी विवशता और बहुत लज्जाके साथ 'नही' शब्द निकलता है, उसी प्रकार सदनके मुँहसे निकला, मेरे पास एक मोहनमाला ह, इसे कही बेच दो, मुझे रुपयोका काम है।

जीतन—तो यह कौन बडा काम है, इसके लिए क्यो चिन्ता करते हो? मुदा रुपये क्या करोगे? मलकिनसे क्यो नही माँग लेते हो? वह कभी नाहीं नही करेगी। हाँ, मालिकसे कहोगे तो न मिलेगा। इस घर मे मालिक कुछ नही है, जो है वह मलकिन है।

सदन—मैं घरमें किसीसे नहीं माँगना चाहता ।

जीतनने माला लेकर देखी, उसे हाथोंसे तौला और शामतक उसे बेच लानेकी बात कहकर चला गया, मगर बाजार न जाकर वह सीधे अपनी कोठरीमे गया, दोनो किवाड़ बन्द कर लिए और अपनी खाटके नीचेकी भूमि खोदने लगा । थोड़ी देरमे मिट्टीकी एक हाँड़ी निकल आयी । यही उसकी सारे जन्मकी कमाई थी, सारे जीवनकी किफायत, कंजूसी, काट कपट, बेईमानी, दलाली, गोलमाल, इसी हाँड़ीके अन्दर इन रुपयोंके रूपमे संचित थी । कदाचित् इसी कारण रुपयोके मुँहपर कालिमा भी लग गयी थी । लेकिन जन्मभरके पापोंका कितना संक्षिप्त फल था ! पाप कितने सस्ते बिकते हैं !

जीतनने रुपये गिनकर २०), २०) की ढेरियाँ लगाई । कुल १७ ढेरियाँ हुईं । तब उसने तरजूपर मालेको रुपयोंसे तौला । वह २५) रुपिये भरसे कुछ अधिक थी । सोनेकी दर बजारमे चढी हुई थी, पर उसने एक रुपये भरके २५) ही लगाये । फिर रुपयोंकी २५-२५ की ढेरियाँ बनाईं । १३ ढेरियाँ हुईं और १५) बच रहे । उसके कुल रुपये मालाके मूल्यसे २८५) कम थे । उसने मनमें कहा, अब यह चीज हाथसे नही जाने पायगी । कह दूँगा माला १३ ही भर थी । १५) और बच जायँगे । चलो मालारानी, तुम इस दरबेमे आरामसे बैठो ।

हाँडी फिर धरतीके नीचे चली गई, पापोंका आकार और भी सूक्ष्म हो गया ।

जीतन इस समय उछला पडता था । उसने बात-की-बातमे २८५) पर हाथ मारा था । ऐसा सुअवसर उसे कभी नही मिला था । उसने सोचा, आज अवश्य किसी भले आदमीका मुह देखकर उठा था । बिगड़ी हुई आँखोंके सदृश बिगड़े हुए ईमानमें प्रकाश ज्योति प्रवेश नहीं करती ।

१० बजे जीतनने ३२५) लाकर सदनके हाथोंमें दिये । सदनको मानो पडा हुआ धन मिला ।

रुपये देखकर जीतनने नि.स्वार्थभावसे मुँह फेरा । सदनने ५)

निकाल कर उसकी ओर बढाये और बोला यह लो तमाखू पीना।

जीतनने ऐसा मुँह बनाया, जैसे कोई वैष्णव मदिरा देखकर मुँह बनाता है, और बोला भैया, 'तुम्हारा दिया तो खाता ही हूँ, यह कहाँ पचेगा ?

सदन—नही नही मैं खुशीसे देता हूँ। ले लो, कोई हरज नही है।

जीतन—नहीं भैया, यह न होगा, ऐसा करता तो अबतक चार पैसेका आदमी हो गया होता, नारायण तुम्हे बनाये रखे।

सदनको विश्वास हो गया कि यह बड़ा सच्चा आदमी है। इसके साथ अच्छा सलूक करूँगा।

सन्ध्या समय सदनकी नाव गगाकी लहरोपर इस भाँति चल रही थी जैसे आकाशमे मेघ चलते है। लेकिन उसके चेहरेपर आनन्द-विकासकी जगह भविष्यकी शका झलक रही थी, जैसे कोई विद्यार्थी परीक्षामे उत्तीर्ण होनेके बाद चिन्तामे ग्रस्त हो जाता है। उसे अनुभव होता है कि वह बाँध जो संसाररूपी नदीकी बाढसे मुझे बचाये हुए था, टूट गया है और मै अथाह सागरमे खडा हूँ। सदन सोच रहा था कि मैंने नाव तो नदीमे डाल दी, लेकिन यह पार भी लगेगी ? उसे अब मालूम हो रहा था कि वह पानी गहरा है, वहा तेज है और जीवनयात्रा इतनी सरल नही है, जितनी मै समझता था। लहर यदि मीठे स्वरोमे गाती है तो भयंकर ध्वनिसे गरजती भी है, हवा अगर लहरोको थपकियाँ देती है, तो कभी कभी उन्हे उछाल भी देती है।

४७

प्रभाकररावका क्रोध बहुत कुछ तो सदनके लेखोसे ही शात हो गया था और जब पद्मसिहने सदनके आग्रहसे सुमनका पूरा वृत्तान्त उसे लिख भेजा, तो वह सावधान हो गए।

म्युनिसिपैलिटीमे प्रस्तावको पास हुए लगभग तीन मास बीत गये; पर उसकी तरमीमके विषयमें तेगअलीने जो शंकाएँ प्रकट की थी वह निर्मूल प्रतीत हुई। न दालमण्डीके कोठोपर दूकाने ही सजी और न वेश्याओंने निकाह-बंधनसे ही कोई विशेष प्रेम प्रकट किया। हाँ, कई

कोठे खाली हो गये। उन वेश्याओंने भावी निर्वासनके भयसे दूसरी जगह रहनेका प्रबन्ध कर लिया। किसी कानूनका विरोध करनेके लिए उससे अधिक संगठनकी आवश्यकता होती है जितनी उसके जारी करनके लिए। प्रभाकररावका क्रोध शान्त होनेका यह एक और कारण था।

पद्मसिहने इस प्रस्तावको वेश्याओके प्रति घृणासे प्रेरित होकर हाथमे लिया था, पर अब इस विषयपर विचार करते करते उनकी घृणा बहुत कुछ दया और क्षमाका रूप धारण कर चुकी थी। इन्हीं भावोने उन्हे तरमीमसे सहमत होनेपर बाध्य किया था। सोचते, यह बेचारी अबलाएँ अपनी इन्द्रियोके सुखभोगमे अपना सर्वस्वनाश कर रही है। विलास प्रेमकी लालसाने उनकी आँखे बन्द कर रखी है। इस अवस्थामें उनके साथ दया और प्रेमकी आवश्यकता है। इस अत्याचारसे उनकी सुधारक शक्तियाँ और भी निर्बल हो जायँगी और जिन आत्माओका हम उपदेशसे, प्रेमसे, ज्ञानसे, शिक्षासे उद्धार कर सकते है वे सदाके लिए हमारे हाथसे निकल जायेंगी। हम लोग जो स्वयं मायामोहके अन्धकारमे पडे हुए है, उन्हें दण्ड देनेका कोई अधिकार नही रखते। उनके कर्म ही उन्हे क्या कम दण्ड दे रहे है कि हम यह अत्याचार करके उनके जीवनको और भी दुःखमय बना दे ?

हमारे मनके विचार कर्मके पथदर्शक होते है। पद्मसिहने झिझक और संकोचको त्यागकर कर्म क्षेत्रमें पैर रखा। वही पद्मसिह जो सुमनके सामनेसे भाग खडे हुए थे अब दिन दोपहर दालमंडीके कोठोपर बैठे दिखाई देने लगे, उन्हे अब लोकनिन्दाका भय न था, मुझे लोग क्या कहेगे इसकी चिन्ता न थी। उनकी आत्मा बलवान हो गई थी, हृदयमे सच्ची सेवाका भाव जाग्रत हो गया था। कच्चा फल पत्थर मारनेसे भी नही गिरता, किन्तु पककर वह आप ही आप धरतीकी ओर आकर्षित हो जाता है। पद्मसिहके अन्तःकरणमें सेवाका—प्रेमका भाव परिपक्व हो गया था।

विट्ठलदास इस विषयमें उनसे पृथक हो गए। उन्हे जन्मकी

वेश्याओंके सुधारपर विश्वास न था। सैयद शफकतअली भी जो इस तरमीमके जन्मदाता थे, उनसे कन्नी काट गए और कुँवरसाहबको तो अपने साहित्य, सगीत और सत्सगसे ही अवकाश न मिलता था, केवल साधु गजाधरने इस कार्य्यमे पद्मसिहका हाथ बटाया। उस सदुद्योगी पुरुषमे सेवाका भाव पूर्णरूपसे उदय हो चुका था।

४८

एक महीना बीत गया। सदनने अपने इस नये धंधेकी चर्चा घरमे किसीसे न की। वह नित्य सवेरे उठकर गंगास्नानके बहाने चला जाता। वहाँसे दस बजे घर आता। भोजन करके फिर चल देता और तबका गया गया घडी रात गये घर लौटता। अब उसकी नाव घाटपरकी सब नावोंसे अधिक सजी हुई, दर्शनीय थी। उसपर दो तीन मोढ़े रखे रहते थे और एक जाजिम बिछी रहती थी। इसलिए शहरके कितने ही रसिक, विनोदी मनुष्य उसपर सैर किया करते थे, सदन किरायेके विषयमे खुद बातचीत न करता। यह काम उसका नौकर झींगुर मल्लाह किया करता था। वह स्वय कभी तो तटपर बैठा रहता और कभी नावपर जा बैठता था। वह अपनेको बहुत समझाता कि काम करनेमे क्या शर्म ? मैंने कोई बुरा काम तो नही किया है, किसीका गुलाम तो नही हूँ कोई आँख तो नही दिखा सकता। लेकिन जब वह किसी भले आदमीको अपनी नावकी ओर आते देखता तो आप ही आप उसके कदम पीछे हट जाते और लज्जासे आँखे झुक जाती। वह एक जमीदारका पुत्र था और एक वकीलका भतीजा। उस उच्च पदसे उतरकर मल्लाहका उद्यम करनेमे उसे स्वभावत: लज्जा आती थी, जो तर्कसे किसी भाँति न हटती। इस संकोचसे उसकी बहुत हानि होती थी। जिस कामके लिए वह सुगमतासे एक रुपया ले सकता था, उसीके लिए उसे आधेमें ही राजी होना पड़ता था। ऊँची दूकान पकवान फीके होनेपर भी बाजारमे श्रेष्ठ होती है। यहाँ तो पकवान अच्छे थे, केवल एक चतुर सजीले दूकानदारकी कमी थी। सदन इस बातको समझता था, पर संकोचवश कुछ कह न सकता था। तिसपर भी

इस विषयमें चुप रहना ही उचित समझते थे । वह पहलेसे ही उसकी खातिर करते थे, अब कुछ आदर भी करने लगे और सुभद्रा तो उसे लड़के के समान मानने लगी ।

एक दिन रातके समय सदन अपने झोपडेमें बैठा हुआ नदीकी तरफ देख रहा था । आज न जाने क्यों नावके आनेमे देर हो रही थी । सामने लैम्प जल रहा था । सदनके हाथमें एक समाचारपत्र था, पर उसका ध्यान पढनेमे न लगता था । नावके न आनेसे उसे किसी अनिष्टकी शंका हो रही थी । उसने पत्र रख दिया और बाहर निकलकर तटपर आया । रेतपर चाँदनीकी सुनहरी चादर बिछी हुई थी और चाँदकी किरणों नदीके हिलते हुए जलपर ऐसी मालूम होती थी जैसे किसी झरनेसे निर्मल जलकी धारा क्रमशः चौड़ी होती हुई निकलती है । झोपडेके सामने चबूतरेपर कई मल्लाह बैठे हुए बातें कर रहे थे कि अकस्मात् सदनने दो स्त्रीयोंको शहरकी ओरसे आते देखा । उनमेंसे एकने मल्लाहोंसे पूछा, हमें उस पार जाना है, नाव ले चलोगे ?

सदनने शब्द पहचाने । यह सुमनबाई थी । उसके हृदयमे एक गुदगुदी-सी आई; आँखोंमे एक नशा-सा आ गया । लपककर चबूतरेके पास आया और सुमनसे बोला, बाईजी, तुम यहाँ कहाँ ?

सुमनने ध्यानसे सदनको देखा, मानों उसे पहचानती ही नहीं । उसके साथवाली स्त्रीने घूँघट निकाल लिया और लालटेनके प्रकाशसे कई पग हटकर अन्धेरेमें चली गयी । सुमनने आश्चर्यसे कहा, कौन ? सदन ?

मल्लाहोंने उठकर घेर लिया, लेकिन सदनने कहा, तुम लोग इस समय यहाँसे चले जाओ । ये हमारे घरकी स्त्रियाँ है, आज यहीं रहेंगी । इसके बाद वह सुमनसे बोला, बाईजी कुशल-समाचार कहिये । क्या क्या माजरा है ?

सुमन—सब कुशल ही है, भाग्यमें जो कुछ लिखा है वही भोग रही हूँ । आजका पत्र तुमने अभी न पढा होगा, प्रभाकररावने न जाने क्या छाप दिया कि आश्रममें हलचल मच गई । हम दोनों बहनें वहाँ

एक दिन भी और रह जाती तो आश्रम बिलकुल खाली हो जाता। वहाँसे निकल आनेमे कुशल थी। अब इतनी कृपा करो कि हमे उस पार ले जानेके लिए एक नाव ठीक कर दो। वहाँसे हम एक्का करके मुगलसराय चली जायँगी। अमोलाके लिए कोई-न-कोई गाड़ी मिल ही जायगी। यहाँसे रातको कोई गाडी नही जाती।

सदन--अब तो तुम अपने घर ही पहुँच गई, अमोला क्यो जाओगी। तुम लोगोको कष्ट तो बहुत हुआ, पर इस समय तुम्हारे आनेसे मुझे जितना आनन्द हुआ, यह वर्णन नही कर सकता। मै स्वय कई दिनसे तुम्हारे पास आनेका इरादा कर रहा था, लेकिन कामसे छुट्टी ही नही मिलती। मै तीन-चार महीनेसे मल्लाहका काम करने लगा हूँ। यह तुम्हारा झोपड़ा है, चलो अन्दर चलो।

सुमन झोपड़ेमे चली गई, लेकिन शान्ता वही अन्धेरेमे चुपचाप सिर झुकाये रो रही थी। जबसे उसने सदनसिहके मुँहसे यह बाते सुनी थी, उस दुखियाने रो-रोकर दिन काटे थे। उसे बार-बार अपने मान करनेपर पछतावा होता था। वह सोचती, यदि मै उस समय उनके पैरोपर गिर पडती तो उन्हे मुझपर अवश्य दया आ जाती। सदनकी सूरत उसकी आँखोमे फिरती और उसकी बाते उसके कनोमे गूँजती। बाते कठोर थी लेकिन शान्ताको वह प्रेम-करुणासे भरी हुई प्रतीत होती थी। उसने अपने मनको समझा लिया था कि यह सब मेरे कुदिनका फल है, सदनका कोई अपराध नही। वह वास्तवमे विवश है। अपनी माता-पिताकी आज्ञाका पालन करना उनका धर्म है। यह मेरी नीचता है कि मै उन्हे धर्मके मार्गसे फेरना चाहती हूँ। हा! मैने अपने स्वामीसे मान किया, मैने अपने आराध्यदेवका निरादर किया, मैने अपने कुटिल स्वार्थके वश होकर उनका अपमान किया। ज्यो-ज्यो दिन बीतते थे, शान्ताकी आत्मग्लानि बढती जाती थी। इस शोक, चिन्ता और विरह-पीडासे वह रमणी इस प्रकार सूख गयी थी, जैसे जेठके महीनेमे नदी सूख जाती है।

उसका हृदय कुछ हलका हुआ। सुमनने यदि उसे गालियाँ दी होती तो और भी क्षोभ होता। वह अपनेको इस तिरस्कारके सर्वथा योग्य समझता था।

उसने ठण्डे पानीका कटोरा सुमनको दिया और स्वयं पंखा झलने लगा। सुमनने शान्ताके मुँहपर पानीके कई छींटे दिये। इसपर भी जब शान्ताने आँखे न खोलीं, तब सदन बोला, जाकर डाक्टरको बुला लाऊँ न ?

सुमन—नही, घवराओ मत। ठढक पहुँचते ही होश आ जायगा। डाक्टरके पास इसकी दवा नही है।

सदनको कुछ तसल्ली हुई, बोला, सुमन, चाहे तुम समझो कि मैं बात बना रहा हूँ, लेकिन मैं तुमसे सत्य कहता हूँ कि उसी मनहूस घडीसे मेरी आत्माको कभी शन्ति नही मिली। मै बार बार अपनी मूर्खतापर पछताता था। कई बार इरादा किया कि चलकर अपना अपराध क्षमा कराऊँ, लेकिन यही विचार उठता कि किस बूतेपर जाऊँ ? घरवालोसे सहायताकी कोई आशा न थी, और मुझे तो तुम जानती ही हो कि सदा कोतल घोड़ा बना रहा। बस इसी चिन्तामे डूबा रहता था कि किसी प्रकार चार पैसे पैदा करूँ और अपनी झोपड़ी अलग बनाऊँ। महीनो नौकरीकी खोजमे मारा मारा फिरा, कही ठिकाना न लगा। अन्तको मैंने गगामाताकी शरण ली और अब ईश्वरकी दयासे मेरी नाव चल निकली है, अब मझे किसीके सहारे या मददकी आवश्यकता नही है। यह झोपडी बना ली है, और विचार है कि कुछ रुपये और आ जायँ तो उस पार किसी गाँवमे एक मकान बनवा लूँ। क्यों, इनकी तबीयत कुछ सँभलती हुई मालूम होती है ?

सुमनका क्रोध कुछ शान्त हुआ। बोली, हाँ अब कोई भय नही है, केवल मूर्च्छा थी। आँखे बन्द हो गई और ओठोंका नीलापन जाता रहा।

सदनको ऐसा आनन्द हुआ कि यदि वहाँ ईश्वरकी कोई मूर्ति होती तो उसके पैरोपर सिर रख देता। बोला, सुमन मेरे साथ जो उपकार किया है उसको मैं सदा याद करता रहूँगा। अगर और कोई बात हो जाती तो इस लाशके साथ मेरी लाश भी निकलती।

सुमन—यह कैसी बात मुँहसे निकालते हो। परमात्मा चाहेंगे तो

दो-तीन महिलाएँ तैयारियाँ कर रही थीं और और कई अन्य देवियोंने घर अपने घरोंपर पत्र भेजे थे। केवल वही चुपचाप बैठी थी, जिनका कहीं ठिकाना नहीं था, पर वह भी सुमनसे मुँह चुराती फिरती थीं। सुमन यह अपमान न सह सकी। उसने शान्तासे सलाह की। शान्ता बड़ी दुविधामें पड़ी। पद्मसिंहकी आज्ञाके विना वह आश्रमसे निकलना अनुचित समझती थी। केवल यही नहीं कि आशाका एक पतला सूत उसे यहाँ बाँधे हुए था, वल्कि इसे वह धर्मका बन्धन समझती थी, वह सोचती थी, जब मैंने अपना सर्वस्व पद्मसिंहके हाथोंमें रख दिया, तव अव स्वेच्छा पथपर चलनेका मुझे कोई अधिकार नहीं है। लेकिन जब सुमनने निश्चित रूपसे कह दिया कि तुम रहती हो तो रहो पर मैं किसी भाँति यहाँ न रहूँगी, तो शान्ताको वहाँ रहना असम्भव-सा प्रतीत होने लगा। जंगलमें भटकते हुए उस मनुष्यकी भाँति जो किसी दूसरेको देखकर उसके साथ केवल इसलिए हो लेता है कि एकसे दो हो जायँगे, शान्ता अपनी वहनके साथ चलनेको तैयार हो गई।

सुमनने पूछा—और जो पद्मसिंह नाराज हों?

शान्ता—उन्हें एक पत्र द्वारा समाचार लिख दूंगी।

सुमन—और जो सदनसिंह बिगड़े?

शान्ता—जो दण्ड देंगे सह लूंगी।

सुमन—खूब सोच लो, ऐसा न हो कि पीछे पछताना पड़े।

शान्ता—रहना तो मुझे यहीं चाहिए, पर तुम्हारे विना मुझसे रहा न जायगा। हाँ, यह वता दो कि कहाँ चलोगी?

सुमन—तुम्हें अमोला पहुँचा दूंगी।

शान्ता—और तुम?

सुमन—मेरे नारायण मालिक हैं। कहीं तीर्थयात्रा करने चली जाऊँगी।

दोनों वहनोंमें बहुत देरतक बातें हुईं। फिर दोनों मिलकर रोईं। ज्योंही आज आठ बजे और विट्ठलदास भोजन करनेके लिए अपने घर गए, दोनों वहनें सवकी आँख बचाकर चल खड़ी हुईं।

रातभर किसीको खबर न हुई। सबेरे चौकीदरने आकर विट्ठल-से यह समाचार कह। वह घबराये और लपके हुए सुमनके कमरे में । सब चीजे पडी हुई थीं केवल दोनों वहनोंका पता न था। वेचारे बड़ी ताामे पड़े। पद्मसिंह को कैसे मुँह दिखाऊँगा? उन्हें उस समय सुमनपर r आया। यह सब उसीकी करतूत है, वही शान्ताको बहकाकर ले है। एकाएक उन्हे सुमनकी चारपाईपर एक पत्र पडा हुआ दिखाई ा। लपककर उठा लिया और पढने लगे। यह पत्र सुमनने चलते समय ब़कर रख दिया था। इसे पढकर विट्ठलदासको कुछ धैर्य्य हुआ। कन इसके साथ ही उन्हे यह दुःख हुआ कि सुमनके कारण मुझे नीचा ना पडा। उन्होंने निश्चय कर लिया था कि मै अपने धमकी देनेवालोको चा दिखाऊँगा, पर यह अवसर उनके हाथसे निकल गया, अब लोग ो समझेगे कि मै डर गया, यह सोचकर उन्हे बहुत दुःख हुआ।

आखिर वह कमरेसे निकले। दरवाजे वन्द कराये और सीधे पद्म-हके घर पहुँचे।

शर्माजीने यह समाचार सुना तो सन्नाटेमे आ गये। बोले, अब ा होगा?

विट्ठल—वे अमोला पहुँच गई होगी।

शर्मा—हाँ, सम्भव है।

विट्ठल—सुमन इतनी दूर सफर तो मजेमें कर सकती है।

शर्मा—हाँ ऐसी नासमझ तो नही है।

विट्ठल—सुमन तो अमोला गई न होगी।

शर्मा—कौन जाने, दोनों कही डूब मरी हो।

विट्ठल—एक तार भेजकर पूछ क्यों न लीजिए।

शर्मा—कौन मुंह लेकर पूछूं? जब मुझसे इतना भी न हो सका कि ान्ताकी रक्षा करता, तो अब उसके विषयमें कुछ पूछ ताछ करना मेरे लए लज्जाजनक है। मुझे आपके ऊपर विश्वास था। अगर जानता कि ाप ऐसी लापरवाही करेगे तो उसे मैंने अपने ही घरमे रखा होता।

विट्ठल—आप तो ऐसी बातें कह रहे हैं, मानों मैंने जान बूझकर उन्हें निकाल दिया हो।

शर्मा—आप उन्हें तसल्ली देते रहते तो वह कभी न जाती। आपने मुझसे भी अब कहा है, जब अवसर हाथसे निकल गया।

विट्ठल—आप सारी जिम्मेदारी मुझीपर डालना चाहते हैं।

पद्म—और किसपर डालूं ? आश्रमके संरक्षक आपही हैं या कोई और ?

विट्ठल—शान्ताको वहाँ रहते तीन महीनेसे अधिक हो गये, आप कभी भूलकर भी आश्रमकी ओर गये ? अगर आप कभी-कभी वहाँ जाकर उसका कुशल समाचार पूछते रहते तो उसे धैर्य्य रहता। जब आपने उसकी कभी बाततक न पूछी तो वह किस आधारपर वहाँ पडी रहती ? मैं अपने दायित्वको स्वीकार करता हूँ, पर आप भी दोषसे नहीं बच सकते।

पद्मसिंह आजकल विट्ठलदाससे चिढे हुए थे। उन्होंने उन्हींके अनुरोधसे वेश्या-सुधारके काममें हाथ डाला था, पर अन्तमें जब काम करनेका अवसर पड़ा तो वह साफ निकल गये। उधर विट्ठलदास भी वेश्याओंके प्रति उनकी सहानुभूति देखकर उन्हें संदिग्ध दृष्टिसे देखते थे। वे इस समय अपने-अपने हृदय की बात न कहकर एक दूसरेपर दोषारोपण करनेकी चेष्टा कर रहे थे। पद्मसिंह उन्हें खूब आडे हाथों लेना चाहते थे, पर यह प्रत्युत्तर पाकर उन्हें चुप हो जाना पड़ा। बोले—हाँ, इतना दोष मेरा अवश्य है।

विट्ठल—नहीं, आपको दोष देना मेरा आशय नहीं है। दोष सब मेरा ही है। आपने जब उन्हें मेरे सुपुर्द कर दिया तो आपका निश्चिन्त हो जाना स्वाभाविक ही था।

शर्मा—नहीं वास्तवमें यह सब मेरी कायरता और आलस्यका फल है। आप उन्हें जबर्दस्ती नहीं रोक सकते थे।

पद्मसिंहने अपना दोष स्वीकार करके बाजी पलट दी थी। हम आप

झुककर दूसरेको झुका सकते है, पर तनकर किसीको झुकाना कठिन है ।

विट्ठल—शायद सदनसिहको कुछ मालूम हो । जरा उन्हे बुलाइए ।

शर्मा—वह तो रातसे ही गायब है । उसने गंगाके किनारे एक झोपड़ा बनवा लिया है, कई मल्लाह लगा लिये है और एक नाव चलाता है । शायद रात वही रह गया ।

विट्ठल—सम्भव है, दोनो बहने वही पहुँच गई हो, कहिए तो जाऊँ ?

शर्मा—अजी नही, आप किस भ्रममे है । वह इतना लिबरल नही है । उनके सायेसे भागता है ।

अकस्मात् सदनने उनके कमरेमे प्रवेश किया । पद्मसिहने पूछा, तुम रात कहाँ रह गये ? सारी रात तुम्हारी राह देखी ।

सदनसिहने धरतीकी ओर ताकते हुए कहा, मै स्वय लज्जित हूँ । ऐसा काम पड गया कि मुझे विवश होकर रुकना पडा । इतना समय भी न मिला कि आकर कह जाता । मैने आपसे शर्मके मारे कभी चर्चा नही की, लेकिन इधर कई महीनेसे मैने एक नाव चलाना शुरू किया है । वही नदीके किनारे एक झोपड़ा बनवा लिया है । मेरा विचार है कि इस कामको जमकर करूँ । इसलिए आपसे उस झोपड़ेमे रहनेकी आज्ञा चाहता हूँ ।

शर्मा—इसकी चर्चा तो लाला भगतरामने एक बार मुझसे की, लेकिन खेद यह है कि तुमने अबतक मुझसे इसे छिपाया, नही तो मै भी कुछ सहायता करता । खैर, मै इसे बुरा नही समझता, बल्कि तुम्हे इस अवस्थामे देखकर मुझे बड़ा आनन्द हो रहा है, लेकिन मै यह कभी न मानूँगा कि तुम अपना घर रहते हुए अपनी हाँडी अलग चढाओ । क्या एक नावका और प्रबन्ध हो तो अधिक लाभ हो सकता है ?

सदन—जी हाँ, मै स्वयं इसी फिक्रमे हूँ । लेकिन इसके लिए मेरा घाटपर रहना जरूरी है ।

शर्मा—भाई, यह शर्त तुम बुरी लगाते हो । शहरमे रहकर तुम मुझसे अलग रहो, यह मुझे पसन्द नही । इसमे चाहे कुछ हानि भी हो, लेकिन मै न मानूँगा ।

सदन—नही चाचा, आप मेरी यह प्रार्थना स्वीकार कीजिये; मैं बहुत मजबूर होकर आपसे यह कह रहा हूँ।

शर्मा—ऐसी क्या बात है जो तुम्हे मजबूर करती है? तुम्हें जो संकोच हो वह साफ साफ क्यों नही कहते?

सदन—मेरे इस घरमे रहनेसे आपकी बदनामी होगी। मैंने अब अपने उस कर्त्तव्यके पालन करनेका संकल्प कर लिया है, जिसे मैं कुछ दिनोंतक अपने अज्ञान और कुछ समयतक अपनी कायरता और निन्दाके भयसे टालता आता था। मैं आपका लड़का हूँ। जब मुझे कोई कष्ट होगा, आपका आश्रय लूंगा, कोई जरूरत पडेगी तो आपको सुनाऊँगा, लेकिन रहूँगा अलग और मुझे विश्वास है कि आप मेरे प्रस्तावको पसन्द करेंगे।

विट्ठलदास भी बातकी तहतक पहुँच गये। पूछा, कल सुमन और शान्तासे तो तुम्हारी मुलाकात नही हुई?

सदनके चेहरेपर लज्जाकी लालिमा छा गई, जैसे किसी रमणीके मुखपरसे घूंघट हट जाय। दबी जबानसे बोला, जी हाँ।

पद्मसिंह बडे धर्म संकटमें पडे। न 'हाँ' कह सकते थे, न 'नही' कहते बनता था। अबतक वह शान्ताके सम्बन्धमे अपनेको निर्दोष समझते थे। उन्होंने इस अन्यायका सारा भार अपने भाईके सिर डाल दिया था और सदन तो उनके विचारमे काठका पुतला था। लेकिन अब इस जालमे फँसकर वह भाग निकलनेकी चेष्टा करते थे। संसारका भय तो उन्हे नही था, भय था कि कही भैया यह न समझ ले कि यह सब मेरे सहारेसे हुआ है, मैंने ही सदनको बिगाडा है। कही यह सन्देह उनके मनमे उत्पन्न हो गया तो फिर वह कभी मुझे क्षमा न करेंगे।

पद्मसिंह कई मिनटतक इसी उलझनमे पडे रहे। अन्तमे वह बोले, सदन, यह समस्या इतनी कठिन है कि मैं अपने भरोसेपर कुछ नही कर सकता। भैयाकी राय लिए बिना 'हाँ' या 'नही' कैसे कहूँ? तुम मेरे सिद्धान्तोंको जानते हो। मैं तुम्हारी प्रशंसा करता हूँ और प्रसन्न हूँ कि ईश्वरने तुम्हे सद्बुद्धि दी। लेकिन मैं भाई साहबकी इच्छाको सर्वोपरि

समझता हूँ। यह हो सकता है कि दोनो बहनोके अलग रहनेका प्रबन्ध कर दिया जाय जिसमे उन्हे कोई कष्ट न हो। बस यही तक। इसके आगे मेरी कुछ सामर्थ्य नहीं है। भाई साहबकी जो इच्छा हो वही करो।

सदन—क्या आपको मालूम नही, कि वह क्या उत्तर देगे ?

पद्म—हाँ, यह भी मालूम है।

सदन—तो उनसे पूछना व्यर्थ है। माता-पिताकी आज्ञासे मै अपनी जान दे सकता हूँ, जो उन्हीकी दी हुई है, लेकिन किसी निरपराधकी गर्दनपर तलवार नही चला सकता।

पद्म—तुम्हें इसमें क्या आपत्ति है कि दोनो बहनें एक अलग मकानमे ठहरा दी जायँ।

सदनने गर्म होकर कहा, ऐसा तो मै तब करूँगा, जब मुझे छिपाना हो। मै कोई पाप करने नही जा रहा हूँ, जो उसे छिपाऊँ। यह मेरे जीवन-का परम कर्त्तव्य है. उसे गुप्त रखनेकी आवश्यकता नही है। अबतक विवाहके जो संस्कार नहीं पूरे हुए है वह कल गंगाके किनारे पूरे किये जायँगे। यदि आप वहाँ आनेकी कृपा करेगे तो मै अपना सौभाग्य समझूगा, नही तो ईश्वरके दरबारमे गवाहोके बिना भी प्रतिज्ञा हो जाती है।

यह कहता हुआ सदन उठा और घरमे चला गया। सुभद्राने कहा, वहा, खूब गायब होते हो, सारी रात जी लगा रहा। कहाँ रह गए थे ?

सदनने रातका सारा वृत्तान्त चाचीसे कहा। चाचीसे बातचीत करनेमे उसे वह झिझक न होती थी जो शर्माजी से होती थी। सुभद्राने उसके साहसकी बडी प्रशसा की। बोली, माँ बापके डरसे कोई अपनी व्याहताको थोड़े ही छोड देता है। दुनिया हँसेगी तो हँसा करे। उसके डरसे अपने घरके प्राणीकी जान ले ले ? तुम्हारी अम्मासे डरती हूँ, नहीं तो उसे यही रखती।

सदनने कहा, मुझे अम्मा दादाकी परवाह नही है।

सुभद्रा—बहुत परवाह तो की। इतने दिनोंतक बेचारीको घुला-

शर्मा—वहाँ लच्छेदार बातों और तीव्र समालोचनाओके सिवा और क्या रखा है ?

५०

सदनसिंहका विवाह संस्कार हो गया ? झोपड़ा खूब सजाया गया था। वही मंडपका काम दे रहा था, लेकिन कोई भीडभाड न थी।

पद्मसिंह उसी दिन घर चले गये और मदनसिंहसे सब समाचार कहा। वह यह सुनते ही आग हो गये, बोले, मै उस छोकरेका सिर काट लूंगा, वह अपनेको समझता क्या है ? भामाने कहा, मै आज ही जाती हूँ उसे समझाकर अपने साथ लिवा लाऊँगी। अभी नादान लडका है। उस कुटनी सुमनकी बातोमे आ गया है। मेरा कहना वह कभी न टालेगा।

लेकिन मदनसिंहने भामाको डाँटा और धमकाकर कहा, अगर तुमने उधर जानेका नाम लिया तो मै अपना और तुम्हारा गला एक साथ ही घोंट दूंगा। वह आगमे कूदता है कूदने दो। ऐसा दूधपीता नादान बच्चा नहीं है। यह सब उसकी जिद्द है। बच्चूको भीख मगाकर न छोडूं तो कहना। सोचते होगे, दादा मर जायँगे तो आनन्द करुँगा। मुंह धो रखें, यह कोई जायदाद नही है। यह मेरी अपनी कमाई है। सब-की-सब कृष्णार्पण कर दूगा। एक फूटी कौड़ी तो मिलेगी ही नही।

गाँवमे चारो ओर बतकहाव होने लगा। लाला बैजनाथको निश्चय हो गया कि ससारसे धर्म उठ गया। जब लोग ऐसे-ऐसे नीच कर्म करने लगे तो धर्म कहाँ रहा ? न हुई नवाबी, नही तो आज बच्चूकी धज्जियाँ उड जाती। अब देखे कौन मुँह लेकर गाँवमे आते है।

पद्मसिंह रातको बहुत देरतक भाईके साथ बैठे रहे, लेकिन ज्योंही वह सदनका कुछ जिक्र छेडते, मदनसिंह उनकी ओर ऐसी आग्नेय दृष्टिसे देखते कि उन्हें बोलनेकी हिम्मत न पडती। अन्तमे जब वह सोने चले तो पद्मसिंहने हताश होकर कहा, भैया, सदन आपसे अलग रहे तब भी आपका लडका ही कहलावेगा। वह जो कुछ नेक बद करेगा उसकी बदनामी हम सब पर आवेगी। जो लोग इस अवस्थाको भलीभाँति जानते है, वह चाहे

हम लोगोको निर्दोष समझे, लेकिन जनता सदनमे और हममे कोई भेद नहीं कर सकती, तो इससे क्या फायदा कि साँप भी न मरे और लाठी भी टूट जाय। एक ओर दो बुराइयाँ है, बदनामी भी होती है और लडका भी हाथसे जाता है। दूसरी ओर एक ही बुराई है, बदनामी होगी, लेकिन लडका अपने हाथमे रहेगा। इसलिए मुझे तो यही उचित जान पड़ता है कि हमलोग सदनको समझावे और यदि वह किसी तरह न माने तो .....

मदनसिहने बात काटकर कहा, तो उस चुडैलसे उसका विवाह ठान दे ? क्यों यही न कहना चाहते हो ? यह मुझसे न होगा। एकबार नहीं, हजार बार नही।

यह कहकर वह चुप हो गये। एक क्षणके बाद पद्मसिहको लांछित करके बोले, आश्चर्य यह है कि यह सब कुछ तुम्हारे सामने हुआ और तुम्हे जरा भी खबर न हुई। उसने नाव ली, झोपडा बनाया, दोनो चुड़ैलोसे साँठ गाँठ की और तुम आँखे बन्द किये बैठे रहे। मैंने तो उसे तुम्हारे ही भरोसे भेजा था। यह क्या जानता था कि तुम कानमें तेल डाले बैठे रहते हो। अगर तुमने जरा भी चतुराईसे काम लिया होता तो यह नौबत न आती। तुमने इन बातोकी सूचनातक मुझे न दी नही तो मै स्वय जाकर उसे किसी उपायसे बचा लाता। अब जब सारी गोटियाँ पिट गई, सारा खेल बिगड गया तो चले हो वहाँसे मुझसे सलाह लेने। मै साफ-साफ कहता हूँ कि तुम्हारी आनाकानीसे मुझे तुम्हारे ऊपर भी सन्देह होता है। तुमने जान-बूझकर उसे आगमे गिरने दिया। मैंने तुम्हारे साथ बहुत बुराइयाँ की थी, उनका तुमने बदला लिया। खैर; कल प्रात काल एक दान-पत्र लिख दो। तीन पाई जो मौरूसी जमीन है उसे छोडकर मै अपनी सब जायदाद कृष्णार्पण करता हूँ। यहाँ न लिख सको तो वहाँसे लिखकर भज देना। मै दस्तखत कर दूँगा और उसकी रजिस्ट्री हो जायगी।

यह कहकर मदनसिह सोने चले गये। लेकिन पद्मसिहके मर्म-स्थानपर ऐसा वार कर गये कि वह रातभर तड़पते रहे। जिस अपराधसे बचनेके

लिए उन्होंने अपने सिद्धान्तोंकी भी परवाह न की और अपने सहवर्गियों में बदनाम हुए, वह अपराध लग ही गया। इतना ही नहीं, भाईके हृदयमे उनकी ओरसे मैल पड़ गई। अब उन्हें अपनी भूल दिखाई दे रही थी। निस्संदेह अगर उन्होंने बुद्धिमानीसे काम लिया होता तो यह नौबत न आती। लेकिन इस वेदनामें इस विचारसे कुछ सन्तोष होता था कि जो कुछ हुआ सो हुआ एक अबलाका उद्धार तो हो गया।

प्रातःकाल जब वह घरसे चलने लगे तो भामा रोती हुई आई और बोली, भैया, इनका हठ तो देख रहे हो, लड़केकी जान ही लेनेपर उतारू है, लेकिन तुम जरा सोच-समझकर काम करना। भूल चूक तो बड़े बड़ोंसे हो जाती है, वह बेचारा तो अभी नादान लड़का है। तुम उसकी ओरसे मन न मोटा करना। उसे किसीकी टेढ़ी निगाहभी सहन नहीं है। ऐसा न हो, कहीं देश विदेशकी राह ले तो तो मैं कहींकी न रहूँ, उसकी सुध लेते रहना। खाने-पीनेकी तकलीफ न होने पावे। यहाँ रहता था तो एक भैंसका दूध पी जाता था। उसे दालमे घी अच्छा नहीं लगता, लेकिन मैं उससे छिपाकर लौंदेके लौंदे दालमें डाल देती थी। अब इतना सेवा जतन कौन करेगा। न जाने बेचारा कैसे होगा? यहाँ घरपर कोई खानेवाला नहीं, वहाँ वह इन्हीं चीजोंके लिए तरसता होगा। क्यों भैया, क्या अपने हाथसे नाव चलाता है।

पद्म—नहीं, दो मल्लाह रख लिए हैं।

भामा—तब भी दिनभर दौड़-धूप तो करनी ही पड़ती होगी। मजूर बिना देखे-भाले थोड़े ही काम करते हैं। मेरा तो यहाँ कुछ बस नहीं है, उसे तुम्हें सौंपती हूँ। उसे अनाथ समझकर खोज खबर लेते रहना। मेरा रोआँ रोआँ तुम्हें आशीर्वाद देगा। अबकी कातिक-स्नानमें उसे जरूरसे देखने जाऊँगी। कह देना, तुम्हारी अम्माँ तुम्हें बहुत याद करती थी, बहुत रोती थीं। यह सुनकर उसे ढाढ़स हो जायगा। उसका जी बड़ा कच्चा है। मुझे याद करके रोज रोता होगा। यह थोड़ेसे रुपये हैं, लेते जाओ, उसके पास भिजवा देना।

पद्म—इसकी क्या जरूरत है ? मैं तो वहाँ हूँ ही. मेरे देखते उसे किसी बातकी तकलीफ न होने पावेगी।

भामा—नही भैया, लेते जाओ, क्या हुआ । इस हाँड़ीमे थोड़ासा घी है, यह भी भेजवा देना। वाजारू घी घरके घीको कहाँ पाता है, न वह सुगन्ध न वह स्वाद । उसे अमावटकी चटनी बहुत अच्छी लगती है, मैं थोडी सी अमावट भी रखे देती हूँ। मीठे-मीठे आम चुनकर रस निकाला था। समझाकर कह देना, वेटा, कोई चिन्ता मत करो। जवतक तुम्हारी माँ जीती है, तुमको कोई कष्ट न होने पावेगा। मेरे तो वही एक अन्धेकी लकड़ी है। अच्छा है तो, वुरा है तो, अपना ही है। संसारकी लाजसे आँखोसे चाहे दूर कर दूँ, लेकिन मनसे थोड़े ही दूर कर सकती हूँ।

५१

जैसे सुन्दर भावके समावेशसे कवितामे जान पड जाती है और सुन्दर रंगोसे चित्रोमे उसी प्रकार दोनों बहनोके आनेसे झोपड़ेमे जान आ गई है। अन्धी आँखोंमे पुतलियाँ पड गई है।

मुरझायी हुई कली शान्ता अव खिलकर अनुपम शोभा दिखा रही है। सूखी हुई नदी उमड़ पडी है। जैसे जेठ वैसाखकी तपनकी मारी हुई गाय सावनमे निखर जाती है और खेतोमे किलोले करने लगती है, उसी प्रकार विरहकी सताई हुई रमणी अव निखर गई है, प्रेममे मग्न है।

नित्यप्रति प्रात काल इस झोपडेसे दो तारे निकलते है और जाकर गंगामे डूब जाते है ? उनमेसे एक वहुत दिव्य और द्रुतगामी है, दूसरा मध्यम और मन्द। एक नदीमे थिरकता है, नाचता है, दूसरा अपने वृत्तसे वाहर नहीं निकलता। प्रभातकी सुनहरी किरणोंमे इन तारोका प्रकाश मन्द नही होता, वे और भी जगमगा उठते है।

शान्ता गातीहै, सुमन खाना पकाती है, शान्ता अपने केशोको सँवारती है, सुमन कपड़े सीती है, शान्ता भूखे मनुष्यके समान भोजनके थालपर टूट पड़ती है. सुमन किसी रोगीके सदृश सोचती है कि मैं अच्छी हूँगी या नही।

सदनके स्वभावमें भी अब कायापलट हो गया है। वह प्रेमका आनन्द भोग करनेमें तन्मय हो रहा है। वह अब दिन चढ़े उठता है, घण्टों नहाता है, बाल सँवारता है, कपड़े बदलता है, सुगन्ध मलता है। नौ बजेसे पहले वह अपनी बैठकमे नही आता और आता भी है तो जमकर बैठता नही, उसका मन कहीं और रहता है। एक-एक पलमे भीतर जाता है और अगर बाहर किसीसे बात करनेमे देर हो जाती है, तो उकताने लगता है। शान्ताने उसपर वशीकरण मन्त्र डाल दिया है।

सुमन घरका सारा काम भी करती है और बाहरका भी। वह घड़ी रात रहे उठती है और स्नान-पूजाके बाद सदनके लिए जलपान बनाती है। फिर नदीके किनारे आकर नाव खुलवाती है। नौ बजे भोजन बनाने बैठ जाती है। ग्यारह बजेतक यहाँसे छुट्टी पाकर वह कोई-न-कोई काम करने लगती है। नौ बजे रातको जब सब लोग सोने चले जाते हैं, तो वह पढ़ने बैठ जाती है, तुलसीकी विनय पत्रिका और रामायणसे उसे बहुत प्रेम है। कभी भक्तमाल पढती है, कभी विवेकानन्दके व्याख्यान और कभी रामतीर्थके लेख। वह विदुषी स्त्रियोंके जीवनचरित्रोंको बडे चावसे पढती है। मीरापर उसे असीम श्रद्धा है। वह बहुधा धार्मिक ग्रन्थ ही पढती है। लेकिन ज्ञानकी अपेक्षा भक्तिमें उसे अधिक शान्ति मिलती है।

मल्लाहोंकी स्त्रियोमे उसका बड़ा आदर है, वह उनके झगडे चुकाती है, किसीके बच्चेके लिए कुर्त्ता टोपी सीती है, किसीके लिए अञ्जन या घुट्टी बनाती है। उनमें कोई बीमार पड़ता है तो उसके घर जाती है और दवा दारूकी फिक्र करती है। वह अपनी गिरी दिवालको फिरसे उठा रही है। उस बस्तीके सभी नर-नारी उसकी प्रशंसा करते हैं और उसका यश गाते हैं। हाँ, अगर आदर नही है तो अपने घरमें। सुमन इस तरह जी तोडकर घरका सारा बोझ सँभाले हुए है, लेकिन सदनके मुँहसे कृतज्ञताका एक शब्द भी नहीं निकलता। शान्ता भी उसके इस परिश्रमका कुछ मूल्य नही समझती। दोनोके दोनो उसकी ओरसे निश्चिन्त हैं, मानो वह घरकी लौंडी है और चक्कीमें जुते रहना ही उसका धर्म है। कभी-कभी उसके

सिरमे दर्द होने लगता है, कभी दौड धूपसे बुखार चढ आता है, तब भी वह घरका सारा काम रीत्यानुसार करती रहती है। वह कभी-कभी एकान्तमे अपनी इस दीन दशापर घण्टो रोती रहती है, पर कोई ढाढ़स देनेवाला, कोई आँसू पोंछने वाला नही।

सुमन स्वभावसे ही मानिनी, सगर्वा स्त्री थी। वह जहाँ कही रही थी रानी वनकर रही थी। अपने पतिके घर वह सब कष्ट झेलकर भी रानी थी। विलास नगरमे वह जवतक रही उसीका सिक्का चलता रहा, आश्रममें वह सेवा-धर्म पालन करके सर्वमान्य वनी हुई थी। इसलिए अव यहाँ इस हीनावस्थामे रहना उसे असह्य था। अगर सदन कभी-कभी उसकी प्रशंसा कर दिया करता, कभी उससे सलाह लिया करता, उसे अपने घरकी स्वामिनी समझा करता या शान्ता उसके पास बैठकर उसकी हाँ मे हाँ मिलाती, उसका मन वहलाती तो सुमन इससे भी अधिक परिश्रम करती और प्रसन्नचित्त रहती। लेकिन उन दोनो प्रेमियोंको अपनी तरगमे और कुछ न सूझता था। निशाना मारते समय दृष्टि केवल एक ही वस्तुपर रहती है। प्रेमासक्त मनुष्यका भी यही हाल होता है।

लेकिन शान्ता और सदनकी यह उदासीनता प्रेमलिप्साके ही कारण थी, इसमे सन्देह है। सदन इस प्रकार सुमनसे बचता था, जैसे हम कुष्ट रोगीसे वचते हैं, उस पर दया करते हुए भी उसके समीप जानेकी हिम्मत नही रखते। शान्ता उसपर अविश्वास करती थी, उसके रूपलावण्यसे डरती थी। कुशल यही थी कि सदन स्वयं सुमनसे आँखे चुराता था, नही तो शान्ता इससे जल ही जाती। अतएव दोनो चाहते थे कि यह आस्तीनका साँप आँखोसे दूर हो जाय, लेकिन सकोचवश वह आपसमे भी इस विषयको छेडनेसे डरते थे।

सुमनपर यह रहस्य शनै शनै. खुलता जाता था।

एक वार जीतन कहार शर्माजीके यहाँसे सदनके लिए कुछ सौगात लाया था। इसके पहले भी वह कई वार आया था, लेकिन उसे देखते ही सुमन छिप जाया करती थी। अवकी जीतनकी निगाह उसपर पड गई।

सदनके स्वभावमे भी अव कायापलट हो गया है। वह प्रेमका आनन्द भोग करनेमे तन्मय हो रहा है। वह अव दिन चढ़े उठता है, घण्टो नहाता है, वाल सँवारता है, कपडे वदलता है, सुगन्ध मलता है। नौ वजेसे पहले वह अपनी वैठकमे नही आता और आता भी है तो जमकर वैठता नही, उसका मन कही और रहता है। एक-एक पलमे भीतर जाता है और अगर वाहर किसीसे वात करनेमे देर हो जाती है, तो उकताने लगता है। शान्ताने उसपर वशीकरण मन्त्र डाल दिया है।

सुमन घरका सारा काम भी करती है और वाहरका भी। वह घडी रात रहे उठती है और स्नान-पूजाके वाद सदनके लिए जलपान वनाती है। फिर नदीके किनारे आकर नाव खुलवाती है। नौ वजे भोजन वनाने वैठ जाती है। ग्यारह वजेतक यहाँसे छुट्टी पाकर वह कोई-न-कोई काम करने लगती है। नौ वजे रातको जव सव लोग सोने चले जाते है, तो वह पढने वैठ जाती है, तुलसीकी विनय पत्रिका और रामायणसे उसे वहुत प्रेम है। कभी भक्तमाल पढ़ती है, कभी विवेकानन्दके व्याख्यान और कभी रामतीर्थके लेख। वह विदूषी स्त्रियोके जीवनचरित्रोको वडे चावसे पढती है। मीरापर उसे असीम श्रद्धा है। वह वहुधा धार्मिक ग्रन्थ ही पढती है। लेकिन ज्ञानकी अपेक्षा भक्तिमे उसे अधिक शान्ति मिलती है।

मल्लाहोकी स्त्रियोंमें उसका वडा आदर है, वह उनके झगडे चुकाती है, किसीके वच्चेके लिए कुर्त्ता टोपी सीती है, किसीके लिए अञ्जन या घुट्टी वनाती है। उनमे कोई वीमार पडता है तो उसके घर जाती है और दवा दारूकी फिक्र करती है। वह अपनी गिरी दिवालको फिरसे उठा रही है। उस वस्तीके सभी नर-नारी उसकी प्रशंसा करते है और उसका यश गाते है। हाँ, अगर आदर नही है तो अपने घरमे। सुमन इस तरह जी तोडकर घरका सारा वोझ सँभाले हुए है, लेकिन सदनके मुँहसे कृतज्ञताका एक शब्द भी नही निकलता। शान्ता भी उसके इस परिश्रमका कुछ मूल्य नही समझती। दोनोके दोनों उसकी ओरसे निश्चिन्त है, मानो वह घरकी लौंडी है और चक्कीमे जुते रहना ही उसका धर्म है। कभी-कभी उसके

सिरमे दर्द होने लगता है, कभी दौड़ धूपसे बुखार चढ़ आता है, तब भी वह घरका सारा काम रीत्यानुसार करती रहती है। वह कभी-कभी एकान्तमे अपनी इस दीन दशापर घण्टो रोती रहती है, पर कोई ढाढस देनेवाला, कोई आँसू पोंछने वाला नहीं।

सुमन स्वभावसे ही मानिनी, सगर्वा स्त्री थी। वह जहाँ कही रही थी रानी बनकर रही थी। अपने पतिके घर वह सब कष्ट झेलकर भी रानी थी। विलास नगरमे वह जबतक रही उसीका सिक्का चलता रहा, आश्रममें वह सेवा-धर्म पालन करके सर्वमान्य बनी हुई थी। इसलिए अब यहाँ इस हीनावस्थामे रहना उसे असह्य था। अगर सदन कभी-कभी उसकी प्रशंसा कर दिया करता, कभी उससे सलाह लिया करता, उसे अपने घरकी स्वामिनी समझा करता या शान्ता उसके पास बैठकर उसकी हाँ मे हाँ मिलाती, उसका मन बहलाती तो सुमन इससे भी अधिक परिश्रम करती और प्रसन्नचित्त रहती। लेकिन उन दोनों प्रेमियोंको अपनी तरगमे और कुछ न सूझता था। निशाना मारते समय दृष्टि केवल एक ही वस्तुपर रहती है। प्रेमासक्त मनुष्यका भी यही हाल होता है।

लेकिन शान्ता और सदनकी यह उदासीनता प्रेमलिप्साके ही कारण थी, इसमे सन्देह है। सदन इस प्रकार सुमनसे बचता था, जैसे हम कुष्ट रोगीसे बचते हैं, उस पर दया करते हुए भी उसके समीप जानेकी हिम्मत नही रखते। शान्ता उसपर अविश्वास करती थी, उसके रूपलावण्यसे डरती थी। कुशल यही थी कि सदन स्वय सुमनसे आँखे चुराता था, नही तो शान्ता इससे जल ही जाती। अतएव दोनो चाहते थे कि यह आस्तीनका साँप आँखोसे दूर हो जाय, लेकिन सकोचवश वह आपसमें भी इस विषयको छेडनेसे डरते थे।

सुमनपर यह रहस्य शनैः शनैः खुलता जाता था।

एक बार जीतन कहार शर्माजीके यहाँसे सदनके लिए कुछ सौगात लाया था। इसके पहले भी वह कई बार आया था, लेकिन उसे देखते ही सुमन छिप जाया करती थी। अबकी जीतनकी निगाह उसपर पड़ गई।

फिर क्या था, उसके पेटमे चूहे दौडने लगे। वह पत्थर खाकर पचा सकता था, पर कोई बात पचानेकी शक्ति उसमे न थी। मल्लाहोंके चौधरीके पास चिलम पीनेके बहाने गया और सारी रामकहानी सुना आया। अरे! यह तो कस्बीन है, खसमने घरसे निकाल दिया तो हमारे यहाँ खाना पकाने लगी, वहाँसे निकाली गई तो चौकमे हरजाईपन करने लगी, अब देखता हूँ तो यहाँ विराजमान है। चौधरी सन्नाटेमें आ गया, मल्लाहिनोंमे भी इशारेबाजियाँ होने लगी। उस दिनसे कोई मल्लाह सदनके घरका पानी न पीता, उनकी स्त्रियोंने सुमनके पास आना जाना छोड़ दिया। इसी तरह एक बार लाला भगतराम ईंटोकी लदाईका हिसाब करने आये। प्यास मालूम हुई तो मल्लाह से पानी लाने को कहा। मल्लाह कुएँसे पानी लाया। सदनके घरमे बैठे हुए बाहरसे पानी मँगाकर पीना सदनकी छातीमे छुरी मारनेसे कम न था।

अन्तमे दूसरा साल जाते जाते यहाँतक नौबत पहुँची कि सदन जरा-जरासी बातपर सुमनसे झुंझला जाता और चाहे कोई लागू बात न कहे, पर उसके मनके भाव झलक ही पडते थे।

सुमनको मालूम हो रहा था कि अब मेरा निर्वाह यहाँ न होगा। उसने समझा था कि यही बहन-बहनोईके साथ जीवन समाप्त हो जायगा। उनकी सेवा करूँगी, एक टुकड़ा खाऊँगी और एक कोनेमे पड़ी रहूँगी। इसके अतिरिक्त जीवनमे अब उसे कोई लालसा नही थी लेकिन हा शोक! यह तख्ता भी उसके पैरोंके नीचेसे सरक गया और अब यह निर्दयी लहरो की गोदमें थी।

लेकिन सुमनको अपनी परिस्थितिपर दु:ख चाहे कितना ही हुआ हो, उसे सदन या शान्तासे कोई शिकायत न थी। कुछ तो धार्मिक प्रेम और कुछ अपनी अवस्थाके वास्तविक ज्ञानसे उसे अत्यन्त नम्र विनीत बना दिया था। वह बहुत सोचती कि कहाँ जाऊँ, जहाँ अपनी जान-पहचानका कोई आदमी न हो लेकिन उसे ऐसा कोई ठिकाना न दिखाई देता। अभीतक उसकी निर्बल आत्मा कोई अवलम्ब चाहती थी। बिना

किसी सहारेके संसारमे रहनेका विचार करके उसका कलेजा काँपने लगता था। वह अकेली असहाय, संसार-संग्राममे आनेका साहस न कर सकती थी। जिस संग्राममे वड़े-वडे कुशल, धर्मशील, दृढ संकल्प मनुष्य मुँहकी खाते हैं, वहाँ मेरी क्या गति होगी! कौन मेरी रक्षा करेगा? कौन मुझे सँभालेगा? निरादर होनेपर भी यह शंका उसे यहाँसे निकलने न देती थी।

एक दिन सदन दस बजे कहीसे घूमकर आया और बोला, भोजनमें अभी कितनी देर है, जल्दी करो। मुझे पण्डित उमानाथसे मिलने जाना है। चाचाके यहाँ आये हुए हैं।

शान्ताने पूछा, वह यहाँ कैसे आये?

सदन—अब यह मुझे क्या मालूम? अभी जीतन आकर कह गया है कि वह आये हुए हैं और आजही चले जायँगे। यहाँ आना चाहते थे, लेकिन (सुमनकी ओर इशारा करके) किसी कारणसे नहीं आए।

शान्ता—तो जरा बैठ जाओ; यहाँ अभी घण्टोंकी देर है।

सुमनने झुँझलाकर कहा, देर क्या है, सब कुछ तो तैयार है। आसन विछा दो, पानी रख दो, मैं थाली परसती हूँ।

शान्ता—अरे, तो जरा ठहर ही जायँगे तो क्या होगा? कोई डाक गाडी छूटी जाती है? कच्चा-पक्का खानेका क्या काम?

सदन—मेरी समझमे नही आता कि दिनभर क्या होता रहता है! जरा-सा भोजन बनानेमें इतनी देर हो जाती है।

सदन जब भोजन करके चला गया, तब सुमनने शान्तासे पूछा, क्यों शान्ता, सच बता, तुझे मेरा यहाँ रहना अच्छा नही लगता? तेरे मनमें जो कुछ है वह मैं जानती हूँ, लेकिन तू जबतक अपने मुँहसे मुझे दुत्कार न देगी, मैं जानेका नाम न लूँगी। मेरे लिए कही ठिकाना नही हैं।

शान्ता—बहन, कैसी बात कहती हो, तुम रहती हो तो घर सँभला हुआ है, नही तो मेरे किए क्या होता?

सुमन—यह मुँहदेखी बातें मत करो, मैं ऐसी नादान नही हूँ। मैं तुम दोनों आदमियोको अपनी ओरसे कुछ खिंचा हुआ पाती हूँ।

शान्ता—तुम देखती हो, तुम्हारी आँखोकी क्या बात है, वह तो मनतक की बात देख लेती हैं।

सुमन—आँखे सीधी करके बोलो, क्या जो कुछ मैं कहती हूँ, झूठ है ?

शान्ता—जब तुम जानती हो तो पूछती क्यो हो ?

सुमन—इसलिए कि सब कुछ देखकर भी आँखोंपर विश्वास नहीं आता। संसार मुझे चाहे कितना ही नीच समझे, मुझे उससे कोई शिकायत नहीं है, वह मेरे मनका हाल नहीं जानता, लेकिन तुम सब कुछ देखते हुए भी मुझे नीच समझती हो, इसका आश्चर्य है। मैं तुम्हारे साथ लगभग दो वर्षसे हूँ, इतने दिनोंमें तुम्हे मेरे चरित्रका परिचय अच्छी तरह हो गया होगा।

शान्ता—नही बहन, मैं परमात्मासे कहती हूँ, यह बात नही है। हमारे ऊपर इतना बडा कलक मत लगाओ। तुमने मेरे साथ जो उपकार किये है, वह मैं कभी न भूलूँगी। लेकिन बात यह है कि उनकी बदनामी हो रही है। लोग मनमानी बातें उड़ाया करते है। वह (सदनसिंह) कहते थे कि सुभद्राजी यहाँ आनेको तैयार थी, लेकिन तुम्हारे रहनेकी बात सुन कर नही आई और बहन बुरा न मानना, जब संसारमे यही प्रथा चल रही है तो हम लोग क्या कर सकते है।

सुमनने विवाद न किया। उसे आज्ञा मिल गई। अब केवल एक रुकावट थी। शान्ता थोड़े ही दिनोमे बच्चेकी माँ बननेवाली थी। सुमनने अपने मनको समझाया; इस समय छोडकर चली जाऊँगी तो इसे कष्ट होगा। कुछ दिन और सह लूँ, जहाँ इतने दिन काटे है, महीने दो महीने और सही। मेरे ही कारण यह इस विपत्तिमे फँसे हुए है। ऐसी अवस्थामे इन्हे छोड़कर जाना मेरा धर्म नही है।

सुमनका यहाँ एक-एक दिन एक-एक सालकी तरह कटता था, लेकिन सब्र किये पड़ी हुई थी।

पखहीन पक्षी पिंजरबद्ध रहनेमे ही अपना कुशल समझता है।

५२

पण्डित पद्मसिंहके चार-पाँच मासके सदुद्योगका यह फल हुआ

कि २०-२५ वेश्याओंने अपनी लड़कियोंको अनाथालयमे भेजना स्वीकार कर लिया। तीन वेश्याओने अपनी सारी सम्पत्ति अनाथालयके निमित्त अर्पण कर दो, पाँच वेश्याएँ निकाह करनेपर राजी हो गई। सच्ची हिताकांक्षा कभी निष्फल नही होती। अगर समाजको विश्वास हो जाय कि आप उसके सच्चे सेवक हैं, आप उनका उद्धार करना चाहते हैं, आप निःस्वार्थ हैं तो वह आपके पीछे चलनेको तैयार हो जाता है। लेकिन यह विश्वास सच्चे सेवाभावके बिना कभी प्राप्त नही होता। जबतक अन्त करण दिव्य और उज्ज्वल न हो, वह प्रकाशका प्रतिबिम्ब दूसरीपर नही डाल सकता। पद्मसिंहमे सेवाभावका उदय हो गया था। हममे कितने ही ऐसे सज्जन है जिनके मस्तिष्कसे राष्ट्रकी कोई सेवा करनेका विचार उत्पन्न होता है, लेकिन बहुधा वह विचार ख्याति लाभ की आकाक्षासे प्रेरित होता है। हम वह काम करना चाहते हैं जिसमे हमारा नाम प्राणिमात्रकी जिव्हापर हो, कोई ऐसा लेख अथवा ग्रन्थ लिखना चाहते है, जिसकी लोग मुक्त कण्ठसे प्रशसा करे, और प्रायः हमारे इस स्वार्थ प्रेमका कुछ न कुछ बदला भी हमको मिल जाता है, लेकिन जनताके हृदयमे हम घर नहीं कर सकते। कोई मनुष्य चाहे वह कितने ही दु.खमे हो, उस व्यक्तिके सामने अपना शोक प्रकट नही करना चाहता जिसे वह अपना सच्चा मित्र न समझता हो।

पद्मसिंहको अब दालमण्डीमे जानेका बहुत अवसर मिलता था और वह वेश्याओके जीवनका जितना ही अनुभव करते थे उतना ही उन्हे दु.ख होता था। ऐसी-ऐसी सुकोमल रमणियोको भोगविलासके लिए अपना सर्वस्व गँवाते देखकर उनका हृदय करुणासे विव्हल हो जाता था, उनकी आँखोसे आँसू निकल पड़ते थे। उन्हे अब ज्ञात हो रहा था कि यह स्त्रियाँ विचारशून्य नही, भावशून्य नही, बुद्धिहीन नहीं, लेकिन मायाके हाथों मे पडकर उनकी सारी सद्वृत्तियाँ उल्टे मार्गपर जा रही है, तृष्णाने उनकी आत्माओंको निर्बल, निश्चेष्ट बना दिया है। पद्मसिंह इस मायाजालको तोडना चाहते थे, वह उन भूली हुई आत्माओंको सचेत किया

चाहते थे, वह उनको इस अज्ञानावस्थासे मुक्त किया चाहते थे; पर माया जाल इतना दृढ़ था और अज्ञानवन्धन इतना पुष्ट तथा निद्रा इतनी गहरी थी कि पहले छ महीनोमे उससे अधिक सफलता न हो सकी, जिसका ऊपर वर्णन किया जा चुका है। शरावके नशेमे मनुष्य की जो दशा हो जाती है वही दशा इन वेश्याओकी हो गयी थी।

उधर प्रभाकरराव और उनके मित्रोंने उस प्रस्तावके शेष भागोंके फिर वोर्डमे उपस्थित किया। उन्होने केवल पद्मसिहसे द्वेष हो जानेके कारण उन मन्तव्योंका विरोध किया था, पर अब पद्मसिहका वेश्यानुराग देखकर वह उन्हीके वनाये हुए हथियारोसे उनपर आघात कर वैठे। पद्म-सिह उस दिन वोर्ड नही गये, डाक्टर श्यामाचरण नैनीताल गये हुए थे, अतएव वे दोनों मन्तव्य निर्विघ्न पास हो गये।

वोर्डकी ओरसे अलईपुरके निकट वेश्याओके लिये मकान वनाये जा रहे थे। लाला भगतराम दत्तचित्त होकर काम कर रहे थे। कुछ कच्चे घर थे, कुछ पक्के, कुछ दुमन्जिले, एक छोटा-सा वाजार, एक छोटा-सा औषधालय और एक पाठशाला भी वनाई जा रही थी। हाजी हाशिमने एक मसजिद वनवानी आरभ की थी और सेठ चिम्मनलालकी ओरसे एक मन्दिर वन रहा था। दीनानाथ तिवारीने एक वागकी नीव डाल दी थी। आशा तो थी कि नियत समयके अन्दर भगतराम काम समाप्त कर देंगे, मिस्टर दत्त और पंडित प्रभाकरराव तथा मिस्टर शाकिर वेग उन्हे चैन न लेने देते थे। लेकिन काम वहुत था, और वहुत जल्दी करने पर भी एक साल लग गया। वस इसीकी देर थी। दूसरे ही दिन वेश्याओं-को दालमण्डी छोड़कर इन नये मकानोंमें आवाद होनेका नोटिस दे दिया गया।

लोगोको शंका थी कि वेश्याओंकी ओरसे इसका विरोध होगा पर उन्हे यह देखकर आमोदपूर्ण आश्चर्य हुआ कि वेश्याओंने प्रसन्नतापूर्वक इस आज्ञाका पालन किया। सारी दालमण्डी एक दिनमें खाली हो गई। जहाँ निशिवासर एक श्री-सी वरसती थी वहाँ सन्ध्या होते सन्नाटा छा गया।

महबूब जान एक धनसम्पन्न वेश्या थी। उसने अपना सर्वस्व अनाथा-लयके लिये दान कर दिया था। सन्ध्या समय सब वेश्याएँ उसके मकान पर एकत्रित हुईं, वहाँ एक महती सभा हुई। शाहजादीने कहा, बहनों, आज हमारी जिंदगीका एक नया दौर शुरू होता है। खुदाताला हमारे इरादेमे बरकत दे और हमे नेक रास्तेपर ले जाय। हमने बहुत दिन बे-शर्मी और जिल्लतकी जिन्दगी बसर की, बहुत दिन शैतानकी कैदमे रही। बहुत दिनोंतक अपनी रूह (आत्मा) और ईमानका खून किया और बहुत दिनोतक मस्ती और ऐश परस्तीमे भूली रही। इस दालमण्डीकी जमीन हमारे गुनाहोसे सियाह हो रही है। आज खुदावंद करीमने हमारी हालत पर रहम करके हमे कैदेगुनाहसे निजात् (मुक्ति) दी है, इसके लिये हमे उसका शुक्र करना चाहिये। इसमे शक नही, कि हमारी कुछ बहनोको यहाँसे जलावतन होनेका कलंक होता होगा, और इसमे भी शक नही है कि उन्हे आनेवाले दिन तारीक नजर आते होंगे। उन बहनोसे मेरा यही इल्तमास है कि खुदाने रिज्क (जीविका) का दरवाजा किसीपर बन्द नहीं किया है। आपके पास वह हुनर है कि उसके कदरदाँ हमेशा रहेगे। लेकिन अगर हमको आइन्दा तकलीफें भी हों तो हमको साबिर व शाकिर (शान्त) रहना चाहिये। हमे आइन्दा जितनी ही तकलीफें होगी उतना ही हमारे गुनाहोका बोझ हलका होगा। मैं फिर खुदासे दुआ करती हूँ कि वह हमारे दिलोको अपनी रौशनीसे रौशन करे और हमें राहे नेकपर लानेकी तौफीक (सामर्थ्य) दे।

रामभोली बाई बोली, हमे पण्डित पद्मसिंह शर्माको हृदयसे धन्य-वाद देना चाहिये, जिन्होंने हमको धर्म मार्ग दिखाया है। उन्हे परमात्मा सदा सुखी रखे।

जोहराजान बोली, मैं अपनी बहनोसे यही कहना चाहती हूँ कि वह आइन्दासे हलाल हरामका ख्याल रखे। गाना बजाना हमारे लिये हलाल है। इसी हुनरमे कमाल हासिल करो। बदकार रईसोकी शुहवत (कामातुरता) का खिलोना बनना छोडना चाहिये। बहुत दिनोतक

की इच्छा न होती थी। अकस्मात् कुत्तोंके भूंकने से किसी नये आदमीके गाँवमें आनेकी सूचना दी। मदनसिंहकी छाती धड़कने लगी। कहीं सदन तो नहीं आ रहा है। किताब बन्द करके उठे तो पद्मसिंहको आते देखा। पद्मसिंहने उनके चरण छूए फिर दोनों भाइयोंमें बातचीत होने लगी।

मदन—सब कुशल है?

पद्म—जी हाँ, ईश्वरकी दया है।

मदन—भला उस बेईमानकी भी कुछ खोज-खबर मिली है?

पद्म—जी हाँ, अच्छी तरह है। दसवें-पाँचवें मेरे यहाँ आया करता है। मैं कभी-कभी हाल-चाल पुछवा लेता हूँ। कोई चिन्ताकी बात नहीं है।

मदन—भला वह पापी कभी हमलोगोंकी भी चर्चा करता है या बिल्कुल मरा समझ लिया? क्या यहाँ आनेकी कसम खा ली है। क्या हमलोग मर जायंगे तभी आवेगा? अगर उसकी यही इच्छा है तो हम लोग कहीं चले जायें। अपना घर द्वार ले अपना घर सँभाले। सुनता हूँ, वहाँ मकान बनवा रहा है। वह तो वहाँ रहेगा और यहाँ कौन रहेगा। यह मकान किसके लिये छोड़े देता है।

पद्म—जी नहीं, मकान वकान कहीं नहीं बनवाता, यह आपसे किसीने झूठ कह दिया। हाँ, चूनेकी कल खड़ी कर ली है और यह भी मालूम हुआ है कि नदी पार थोड़ीसी जमीन भी लेना चाहता है।

मदन—तो उससे कह देना, पहले आकर इस घरमें आग लगा जाय तब वहाँ जगह जमीन ले।

पद्म—यह आप क्या कहते हैं, वह केवल आपलोगोंकी अप्रसन्नता के भयसे नहीं आता। आज उसे मालूम हो जाय कि आपने उसे क्षमा कर दिया तो सिरके बल दौड़ा आवे। मेरे पास आता है तो घण्टों आप-हीकी बातें करता रहता है। आपकी इच्छा हो तो कल ही चला आवे।

मदन—नहीं, मैं उसे बुलाता नहीं। हम उसके कौन होते हैं जो यहाँ आयेगा? लेकिन यहाँ आवे तो कह देना जरा पीठ मजबूत कर रखे। उसे देखते ही मेरे सिरपर शैतान सवार हो जायगा और मैं डण्डा

लेकर पिल पड़ूँगा। मूर्ख मुझसे रूठने चला है। तब नहीं रूठा था जब पूजाके समय पोथीपर राल टपकाता था। खानेकी थाली के पास पेशाब करता था। उसके मारे कपड़े साफ न रहने पाते थे। उजले कपड़ोंको तरसके रह जाता था। मुझे साफ कपड़े पहने देखता तो बदनमे धूल मिट्टी लपेटे आकर सिरपर सवार हो जाता। तब क्यों नही रूठा था। आज रूठने चला है। अबकी पाऊँ तो ऐसी कनेठी दूँ की छठीका दूध याद आ जायगा।

दोनों भाई घर गये। भामा बैठी गायको भूसा खिला रही थी और सदनकी दोनो बहने खाना पकाती थी। भामा देवरको देखते ही खडी हो गई और बोली, भला तुम्हारे दर्शन तो हुए। चार पगपर रहते हो और इतना भी नहीं होता कि महीनेमे एक बार तो जाकर देख आवे—घरवाले मरे कि जीते हैं। कहो, कुशलसे तो रहे ?

पद्म—हाँ, सब तुम्हारा आशीर्वाद है। कहो, खाना क्या बन रहा हैं ? मुझे इस वक्त खीर, हलुवा और मलाई खिलाओ तो वह सुख संवाद सुनाऊँ कि फडक जाओ। पोता मुबारक हो।

भामाके मलिन मुखपर आनन्दकी लालिमा छा गई और आँखोकी पुतलियाँ पुष्पके समान खिल उठी। बोली, चलो, घी-शक्करके मटकेमे डुबा दूँ, जितना खाते बने खाओ।

मदनसिहने मुह बनाकर कहा, यह तो तुमने बुरी खबर सुनाई। क्या ईश्वरके दरबारमे उलटा न्याय होता है ? मेरा बेटा छिन जाय और उसे बेटा मिल जाय। अब वह एकसे दो हो गया, मै उससे कैसे जीत सकूँगा। हारना पड़ा। वह मुझे अवश्य जीत ले जायगा। मेरे तो कदम अभीसे उखड गये। सचमुच ईश्वरके यहाँ बुराई करनेपर भलाई होती है। उल्टी बात है कि नही। लेकिन अब मुझे चिन्ता नही है। सदन जहाँ चाहे जाय, ईश्वरने हमारी सुन ली। कै दिनका हुआ है ?

पद्म—आज चौथा दिन है, मुझे छुट्टी नहीं मिली नही तो पहले ही दिन आता।

मदन—क्या हुआ छठी तक पहुँच जायग, धूमधामसे छठी मनावेगे। बस कल चलो।

भामा फूली न समाती थी। हृदय पुलकित हो रहा था। जी चाहता था कि किसे क्या दे दूँ? क्या लुटा दूँ? जी चाहता था घरमे सोहर उठे, दरवाजेपर शहनाई बजे, पडोसिने बुलाई जायँ। गाने बजानेकी मगल ध्वनिसे गाँव गूँज उठे। उसे ऐसा ज्ञात हो रहा था, मानो आज संसारमे कोई असाधारण बात हो गई है, मानो सारा ससार सन्तानहीन है और एक मै ही पुत्र-पौत्रवती हूँ।

एक मजदूरने आकर कहा, भौजी एक साधु द्वारपर आये हैं। भामाने तुरन्त इतनी जिन्स भेज दी जो चार साधुओंके खानेसे भी न चुकती।

ज्यो ही लोग भोजन कर चुके, भामा अपनी दोनो लडकियोके साथ ढोल लेकर बैठ गई और आधी राततक गाती रही।

५५

जिस प्रकार कोई मनुष्य लोभके वश होकर आभूषण चुरा लेता है, पर विवेक होनेपर उसे देखनेमे भी उसे लज्जा आती है, उसी प्रकार सदन भी सुमनसे बचता फिरता था। इतना ही नही, वह उसे नीची दृष्टिसे देखता था और उसकी उपेक्षा करता था। दिन भर काम करने के बाद सन्ध्याको उसे अपना यह व्यवसाय बहुत अखरता, विशेष करके चूनेके काममें उसे बड़ा परिश्रम करना पडता था। वह सोचता, इसी सुमनके कारण मै यो घरसे निकाला गया हूँ। इसीने मुझे यह वनवास दे रखा है। कैसे आरामसे घरपर रहता था। न कोई चिन्ता थी न कोई झंझट, चैनसे खाता था और मौज करता था। इसीने मेरे सिर यह मुसीबत ढा दी। प्रेमकी पहली उमगमे उसने उसका बनाया हुआ भोजन खा लिया था, पर अब उसे बडा पछतावा होता था। वह चाहता था कि किसी प्रकार इससे गला छूट जाय। यह वही सदन है जो सुमनपर जान देता था, उसकी

मुस्कानपर, मधुर बातोपर, कृपाकटाक्षपर अपना जीवनतक न्यौछावर करनेको तैयार था। पर सुमन आज उसकी दृष्टिमे इतनी गिर गयी है। वह स्वयं अनुभव करके भी भूल जाता था कि मानव प्रकृति कितनी चचल है।

सदनने इधर वर्षोसे लिखना-पढना छोड़ दिया था और जबसे चूनेकी कल ली, तो वह दैनिक पत्र भी पढनेका अवकाश न पाता था। अब वह समझता था कि यह उन लोगोका काम है, जिन्हे कोई काम नही है, जो सारे दिन पड़े मक्खियाँ मारा करते है। लेकिन उसे बालोंको सँवारने हारमोनियम बजानेके लिये न मालूम कैसे अवकाश मिल जाता था।

कभी-कभी पिछली बातोका स्मरण करके वह मनमे कहता है, मैं उस समय कैसा मूर्ख था, इसी सुमनके पीछे लट्टू हो रहा था? वह अब अपने चरित्रपर घण्मड करता था। नदीके तटपर वह नित्य स्त्रियोंको देखा करता था, पर कभी उसके मनमे कुभाव न पैदा होते थे। सदन इसे अपना चरित्रबल समझता था।

लेकिन जब गोभणी शान्ताके प्रसूतका समय निकट आया, और वह बहुधा अपने कमरेमे बन्द, मलीन, शिथिल पडी रहने लगी तो, सदनको मालूम हुआ कि मै बहुत धोखेमे था। जिसे मै चरित्रबल समझता था, वह वास्तवमे मेरे तृष्णाओके सन्तुष्ट होनेका फलमात्र था। अब वह कामपर से लौटता तो शान्ता मधुर मुस्कानके साथ उसका स्वागत न करती, वह अपनी चारपाईपर पडी रहती। कभी उसके सिरमें दर्द होता, कभी शरीरमे, कभी ताप चढ़ आता, कभी मतली होने लगती, उसका मुखचन्द्र कान्तिहीन हो गया था, मालूम होता था शरीरमे रक्त ही नही है। सदनको उसकी यह दशा देखकर दुःख होता, वह घण्टो उसके पास बैठ कर उसका दिल बहलाता रहता, लेकिन उसके चेहरेसे मालूम होता था कि उसे वहाँ बैठना अखर रहा है। वह किसी-न-किसी बहानसे जल्द ही उठ जाता। उसकी विलासतृष्णाने मनको फिर चचल करना शुरु किया, कुवासनाएँ उठने लगी। वह युवती मल्लाहिनोसे हँसी करता,

थी। स्वय इस कल्पित बारातका दूल्हा बना हुआ सदन यहाँसे जाति सेवाका संकल्प करके उठा और नीचे उतर आया। वह अपने विचारोंमें ऐसा लीन हो रहा था कि किसीसे कुछ न बोला। थोड़े ही दूर चला था कि उसे सुन्दर बाईके भवनके सामने बहुतसे मनुष्य दिखाई दिये। उसने एक आदमीसे पूछा, यह कैसा जमघट है? मालूम हुआ कि आज कुँवर अनिरुद्धसिंह यहाँ एक "कृषि सहायक सभा" खोलनेवाले हैं। सभाका उद्देश्य होगा, किसानोंको जमींदारोंके अत्याचारसे बचाना। सदनके मनमें अभी-अभी कृषकोंके प्रति जो सहानुभूति प्रकट हुई थी वह मन्द पड गई। वह जमीदार था और कृषको पर दया करना चाहता था, पर उसे मंजूर न था कि कोई उसे दबाये और किसानोंको भडकाकर जमींदारोंके विरुद्ध खडा कर दे। उसने मनमे कहा, यह लोग जमींदारोंके सत्वोंको मिटाना चाहते है। द्वेषभावसे ही प्रेरित होकर इन लोगोंने यह संस्था खोलनेका विचार किया है, तो हम लोगोंको भी सतर्क हो जाना चाहिये, हमको अपनी रक्षा करनी चाहिये। मानव प्रकृतिको दबावसे कितनी घृणा है। सदनने यहाँ ठहरना व्यर्थ समझा। नौ बज गये थे। वह घरको लौटा।

५६

सन्ध्याका समय है। आकाशपर लालिमा छाई हुई है और मन्द-वायु गंगाकी लहरोंपर क्रीड़ा कर रही है, उन्हे गुदगुदा रही है। वह अपने करुण नेत्रोंसे मुस्कराती है और कभी-कभी खिलखिलाकर हँस पड़ती है, तब उसके मोतीके दाँत चमक उठते है। सदनका रमणीय झोपड़ा आज फूलों और लताओंसे सजा हुआ है। दरवाजेपर मल्लाहो की भीड़ है। अन्दर उनकी स्त्रियाँ बैठी सोहर गा रही हैं। आँगनमें भट्ठी खुदी हुई है और बड़े-बडे हण्डे चढे हुए हैं। आज सदनके नवजात पुत्रकी छठी है, यह उसीका उत्सव है।

लेकिन सदन बहुत उदास दिखाई देता है। वह सामनेके चबूतरे

पर बैठा हुआ गंगाकी ओर देख रहा है। उसके हृदयमे भी विचारकी लहरे उठ रही है। ना! वह लोग न आवेगे। आना होता तो आज छ दिन बीत गये, आ न जाते? यदि मै जानता कि वे न आवेगे तो मै चचासे भी यह समाचार न कहता। उन्होने मुझे मरा हुआ समझ लिया है, वह मुझसे कोई सरोकार नहीं रखना चाहते, मै जीऊँ या मरूँ, उन्हे परवाह नही है। लोग ऐसे अवसरपर अपने शत्रुओके घर भी जाते, है, प्रेमसे न आते, दिखावेके ही लिये आते, व्यवहारके तौर-पर आते, मुझे मालूम तो हो जाता कि संसारमे मेरा कोई है। अच्छा न आवे, इस कामसे छुट्टी मिली तो एक बार मै स्वयं जाऊँगा और सदा के लिये निपटारा कर आऊँगा। लडका कितना सुन्दर है, कैसे लाल-लाल ओठ है, बिल्कुल मुझीको पड़ा है, हाँ, आँखे शान्ताकी है। मेरी ओर कैसे ध्यानसे टुक-टुक ताकता था। दादाको तो मै नहीं कहता, लेकिन अम्मा उसे देखे तो एक बार गोदमे अवश्य ही ले ले। एकाएक सदनके मनमे यह विचार हुआ, अगर मै मर जाऊँ तो क्या हो? इस बालकका पालन कौन करेगा? कोई नहीं, नही, मै मर जाऊँ तो दादा को अवश्य उसपर दया आवेगी। वह उतने निर्दय नही हो सकते। जरा देखूं, सेविंग बैंकमे मेरे कितने रुपये है। अभी एक हजार भी पूरे नही। ज्यादा नहीं, अगर ५०) महीना भी जमा करता जाऊँ तो सालभरमे ६००) हो जायेगे। ज्योही दो हजार पूरे हो जायेगे घर बनवाना शुरू कर दूगा। दो कमरे सामने, पाँच कमरे भीतर, दरवाजेपर मेहराबदार सायवान, पटावके ऊपर दो कमरे हों तो मकान अच्छा हो। कुरसी ऊँची रहनेसे घरकी शोभा बढ़ जाती है। मै कम-से कम पाँच फटकी कुरसी दूंगा।

सदन इन्ही कल्पनाओका आनन्द ले रहा था। चारो ओर अन्धेरा छाने लगा था कि इतनेमे उसने सडककी ओरसे एक गाड़ी आती देखी। उसकी दोनो लालटेने बिल्लीकी आँखोकी तरह चमक रही थीं। कौन आ रहा है? चाचासाहबके सिवा और कौन होगा? मेरा और है ही कौन? इतनेमे गाडी निकट आ गई और उसमेसे मदनसिंह उतरे।

इस गाड़ीके पीछे एक और गाड़ी थी। सुभद्रा और भामा उसमेंसे उतरी। सदनकी दोनों वहनें भी थीं। जीतन कोचवक्सपरसे उतरकर लालटेन दिखाने लगा। सदन इतने आदमियोंको उतरते देखकर समझ गया कि घरके लोग आ गये पर वह उनसे मिलनेके लिये नही दौड़ा। वह समय वीत चुका था जब वह उन्हें मनाने जाता। अब उसके मान करनेका समय आ गया था। वह चूवतरेपरसे उठकर झोपड़ेमें चला गया, मानों उसने किसी को देखा ही नहीं। उसने मनमें कहा, ये लोग समझते होंगे कि इनके विना मैं वेहाल हुआ जाता हूँ, पर उन्हे जैसे मेरी परवाह नहीं, उसी प्रकार मैं भी इनकी परवाह नहीं करता।

सदन झोपड़ेमें जाकर ताक रहा था कि देखें यह लोग क्या करते हैं। इतनेमें उसने जीतनको दरवाजेपर आकर पुकारते हुए देखा। कई मल्लाह इधर-उधरसे दौड़े। सदन वाहर निकल आया और दूरसे ही अपनी माताको प्रणाम करके एक किनारे खडा हो गया।

मदनसिंह वोले, तुम तो इस तरह खडे हो मानों हमें पहचानते ही नहीं। मेरे न सही, पर माताके चरण छूकर आशीर्वाद तो ले लो।

सदन---मेरे छू लेनेसे आपका धर्म विगड़ जायगा।

मदनसिंहने भाईकी ओर देखकर कहा, देखते हो इसकी वात। मैं तो तुमसे कहता था कि वह हम लोगोंको भूल गया होगा, लेकिन तुम खींच लाये। अपने माता-पिताको द्वारपर खड़े देखकर भी इसे दया नहीं आती।

भामाने आगे वढ़कर कहा, वेटा सदन! दादाके चरण छुओ, तुम वुद्धिमान होकर ऐसी वातें करते हो!

सदन अधिक मान न कर सका। आँखोंमे आँसू भरे पिताके चरणो पर गिर पड़ा। मदनसिंह भी रोने लगे।

इसके वाद वह माताके चरणोंपर गिरा। भामाने उठाकर छातीसे लगा लिया और आशीर्वाद दिया।

प्रेम, भक्ति और क्षमाका कैसा मनोहर, कैसा दिव्य, कैसा आनन्द-मय दृश्य है। माता पिताका हृदय प्रेमसे पुलकित हो रहा है और पुत्रके

हृदय सागरमे भक्तिकी तरंगे उठ रही है। इसी प्रेम और भक्तिकी निर्मल ज्योति से हृदयको अँधेरी कोठरियाँ प्रकाशपूर्ण हो गई हैं। मिथ्याभिमान और लोकलज्जा या भयरूपी कीट पतंग वहाँसे निकल गये है। अब वहाँ न्याय, प्रेम और सद्‌व्यवहारका निवास है।

आनन्दके मारे सदनके पैर जमीनपर नहीं पड़ते। वह अब मल्लाहों को कोई-न-कोई काम करनेका हुक्म देकर दिखा रहा है कि मेरा यहाँ कितना रोब है। कोई चारपाई निकालने जाता है, कोई बाजार दौड़ा जाता है। मदनसिंह फूले नही समाते और अपने भाईके कानोंमे कहते हैं, सदन तो बडा चतुर निकला। मै तो समझता था, किसी तरह पडा दिन काट रहा होगा; पर यहाँ तो बड़ा ठाठ है।

इधर भामा और सुभद्रा भीतर गईं। भामा चारो ओर चकित होकर देखती थी। कैसी सफाई है! सब चीजे ठिकानेसे रखी हुई है। इसकी बहन गुणवान मालूम होती है।

वह सौरीगृहमे गई तो शान्ताने अपनी दोनो सासोके चरण स्पर्श किये। भामाने बालकको गोदमे ले लिया। उसे ऐसा मालूम हुआ मानों वह कृष्णका ही अवतार है। उसकी आँखोसे आनन्दके आँसू बहने लगे।

थोडी देरमे उसने मदनसिंहसे आकर कहा, और जो कुछ हो पर तुमने वह बड़ी रूपवती पाई है। गुलाबका फूल है और बालक तो साक्षात भगवानका अवतार ही है।

मदन—ऐसी तेजस्वी न होता तो मदनसिंहको खीच कैसे लाता ?

भामा—बहू बडी सुशील मालूम होती है।

मदन—तभी तो उसके पीछे माँ बापको त्याग दिया था।

सब लोग अपनी अपनी धुनमे मग्न थे, पर किसीको सुधि न थी कि अभागिनी सुमन कहाँ है।

सुमन गगा तटपर सन्ध्या करने गई थी। जब वह लौटी तो उसे झोपडेके द्वारपर गाड़ियाँ खड़ी दिखाई दी। दरवाजेपर कई आदमी बैठे थे। पद्मसिंहको पहचाना समझ गई कि सदनके माता-पिता आ

गये। वह आगे न बढ सकी। उसके पैरोमे बेड़ी-सी पड गई। उसे मालूम हो गया कि अब यहाँ मेरे लिये स्थान नही, है, अब यहाँसे मेरा नाता टूटता है। वह मूर्तिवत खड़ी सोचनेलगी कि कहाँ जाऊँ?

इधर एक माससे शान्ता और सुमनमें बहुत मनमुटाव हो गया था। वही शान्ता तो विधवा आश्रममे दया और शान्तिकी मूर्ति बनी हुई थी, अब सुमनको जलाने और रुलानेपर तत्पर रहती थी। उम्मेदवारीके दिनोमें हम जितने विनयशील और कर्तव्यपरायण होते है, उतने ही अगर जगह पानेपर बने रहे तो हम देवतुल्य हो जायँ। उस समय शान्ताको सहानुभूतिकी जरूरत थी, प्रेमकी आकांक्षाने उसके चित्तको उदार, कोमल, नम्र बना दिया था, पर अब अपना प्रेमरत्न पाकर किसी दरिद्रसे धनी हो जानेवाले मनुष्यकी भांति उसका हृदय कठोर हो गया था। उसे यह भय खाये जाता था कि सदन कही सुमनके जालमें न फँस जाय। सुमनके पूजापाठ, श्रद्धा-भक्तिका उसकी दृष्टिमें कुछ भी मूल्य न था। वह इसे पाखण्ड समझती थी। सुमन सिरमें तेल मलने या साफ कपड़ा पहनने के लिये तरस जाती थी, शान्ता इसे समझती थी। वह सुमनके आचार व्यवहारकी बड़ी तीव्र दृष्टिसे देखती रहती थी। सदनसे जो कुछ कहना होता सुमन शान्तासे कहती, यहाँ तक कि शान्ता भोजनके समय भी रसोईमे किसी न किसी बहाने आ बैठती थी। वह अपने प्रसवकालसे पहले सुमनको किसी भाँति वहाँसे टालना चाहती थी, क्योंकि सौरी-गृहमे बन्द होकर वह सुमनकी देख-भाल न कर सकेगी। उसे और सब कष्ट सहना मजूर था, पर यह दाह न सही जाती थी।

लेकिन सुमन सब कुछ देखते हुए भी न देखती थी, सब कुछ सुनते हुए भी कुछ न सुनती थी। नदीमे डूबते हुए मनुष्यके समान वह इस तिनकेके सहारेको भी छोड़ न सकती थी। वह अपना जीवन मार्ग स्थिर न कर सकती थी, पर इस समय सदनके माता पिताको यहाँ देखकर उसे यह सहारा छोड़ना पड़ा, इच्छा शक्ति जो कुछ न कर सकती थी वह अवस्थाने कर दिखाया।

वह पाँव दबाती हुई, धीरे-धीरे झोपड़ेके पिछवाड़े आई और कान लगाकर सुनने लगी कि देखूं यह लोग मेरी कुछ चर्चा तो नही कर रहे हैं ? आध घण्टेतक वह इसी प्रकार खडी रही। भामा और सुभद्रा इधर-उधरकी बाते कर रही थी। अन्तमे भामाने कहा, क्या अब इसकी बहन यहाँ नही रहती ?

सुभद्रा—रहती क्यों नही, वह कही जानेवाली है ?

भामा—दिखाई नही देती।

सुभद्रा—किसी कामसे गई होगी। घरका सारा काम तो वही सभाले हुए है।

भामा—आवे तो कह देना कि कही बाहर लेट रहे। सदन उसीका बनाया खाता होगा।

शान्ता सौरीगृहमेसे बोली, नही अभीतक तो मै ही बनाती रही हूँ, आजकल वह अपने हाथसे बना लेते हैं।

भामा—तब भी घड़ा बरतन तो वह छूती ही रही होगी। यह घड़ा फेकवा दो, बरतन फिरसे धुल जायँगे।

सुभद्रा—बाहर कहाँ सोनेकी जगह है ?

भामा—हो चाहे न हो, लेकिन यहाँ मै उसे सोने न दूंगी। वैसी स्त्रीका क्या विश्वास ?

सुभद्रा—नहीं दीदी, वह अब वैसी नही है। वह बड़े नेम धरमसे रहती है।

भामा—चलो, वह बड़ी नेम-धरमसे रहनेवाली है। सात घाटका पानी पीके आज नेमवाली बनी है। देवताकी मूरत टूटकर फिर नही जुडती। वह अब देवी बन जाय तब भी मै उसका विश्वास न करूँ।

सुमन इससे ज्यादा न सुन सकी। उसे ऐसा मालूम हुआ मानो किसीने लोहा लाल करके उसके हृदयमें चुभा दिया। उल्टे पाँव लौटी और उसी अन्धकारमे एक ओर चल पड़ी।

अन्धेरा खूब छाया था, रास्ता भी अच्छी तरह न सूझता था, पर

सुमन गिरती-पड़ती चली जाती थी, मालूम नहीं कहाँ, किधर ? वह अपने होशमें न थी। लाठी खाकर घबराये हुए कुत्तेके समान वह मूर्छावस्थामें लुढकती जा रही थी। सँभलना चाहती थी, पर सँभल न सकती थी। यहाँ तक कि उसके पैरोंमें एक बड़ा-सा काँटा चुभ गया। वह पैर पकड़कर बैठ गई। चलनेकी शक्ति न रही।

उसने बेहोशीके बाद होशमें आनेवाले मनुष्यके समान इधर-उधर चौंककर देखा। चारोंओर सन्नाटा था, गहरा अन्धकार छाया हुआ था, केवल सियार अपना राग अलाप रहे थे। यहाँ मैं अकेली हूँ, यह सोचकर सुमनके रोएँ खड़े हो गये। अकेलापन किसे कहते हैं, यह उसे आज मालूम हुआ। लेकिन यह जानते हुए भी कि यहाँ कोई नहीं है मैं ही अकेली हूँ, उसे अपने चारों ओर नीचे ऊपर नाना प्रकारके जीव आकाशमें चलते हुए दिखाई देते थे। यहाँतक कि उसने घबड़ाकर आँखें बन्द कर लीं। निर्जनता कल्पनाको अत्यंत रचनाशील बना देती है।

सुमन सोचने लगी, मैं कैसी अभागिनी हूँ। और तो और अपनी सगी बहन भी अब मेरी सूरत नहीं देखना चाहती। उसे कितना अपनाना चाहा, पर वह अपनी न हुई। मेरे सिर कलंकका टीका लग गया और वह अब धोनेसे नहीं धुल सकता। मैं उसको या किसीको दोष क्यों दूँ ? यह सब मेरे कर्मोंका फल है। आह ! एडीमें कैसी पीडा हो रही है। यह काँटा कैसे निकलेगा ? भीतर उसका एक टुकडा टूट गया कैसा टपक रहा है। नहीं, मैं किसीको दोष नहीं दे सकती। बुरे कर्म तो मैंने किये हैं, उनका फल कौन भोगेगा ? विलास लालसाने मेरी यह दुर्गति की। मैं कैसी अन्धी हो गई थी, केवल इन्द्रियोंके सुखभोगके लिये अपनी आत्माका नाश कर बैठी। मुझे कष्ट अवश्य था। मैं गहने कपड़ेको तरसती थी, अच्छे भोजनको तरसती थी, प्रेमको तरसती थी, उस समय मुझे अपना जीवन दुखमय दिखाई देता था, पर वह अवस्था भी तो मेरे पूर्व जन्मके कर्मोंका ही फल था और क्या ऐसी स्त्रियाँ नहीं

है जो उससे कही अधिक कष्ट झेलकर भी अपनी आत्माकी रक्षा करती है ? दमयन्ती पर कैसे-कैसे दु.ख पडे, सीताको रामचन्द्रने घरसे निकाल दिया और वह बरसो जंगलोमे नाना प्रकारके क्लेष उठाती रही, सावित्री ने कैसे-कैसे दु ख सहे पर वह धर्मपर दृढ रही। उतनी, दूर क्यो जाऊँ-मेरे ही पड़ोसमे कितनी स्त्रियाँ रो-रोकर दिन काट रही थी। अमोला-मे वह बेचारी अहिरिन कैसी विपित्ति झेल रही थी। उसका पति परदेशसे बरसों न आता था, बेचारी उपवास करके पड़ी रहती थी। हाय, इसी सुन्दरताने मेरी मिट्‌टी खराब की। मेरे सौदर्यके अभिमानने मुझे यह दिन दिखाया।

हा प्रभो ! तुम सुन्दरता देकर मनको चचल क्यो बना देते हो ? मैंने सुन्दर स्त्रियोंको प्राय. चंचल ही पाया। कदाचित् ईश्वर इस युक्ति से हमारी आत्माकी परीक्षा करते है, अथवा जीवन-मार्गमे सुन्दरता रूपी बाधा डालकर हमारी आत्माको बलवान, पुष्ट बनाना चाहते हैं। सुन्दरतारूपी आगमे आत्माको डालकर उसे चमकाना चाहते हैं। पर हा ! अज्ञानवश हमे कुछ नही सूझता, यह आग हमे जला डालती ह, यह बाधा हमे विचलित कर देती है।

यह कैसे वन्द हो, न जाने किस चीज का काँटा था। जो कोई आके मुझे पकड ले तो यहाँ चिल्लाऊँगी तो कौन सुनेगा ? कुछ नही, यह न विलास प्रेमका दोष है, न सुन्दरताका दोष है, यह सब मेरे अज्ञानका दोष है। भगवन् ! मुझे ज्ञान दो। तुम्ही अब मेरा उद्धार कर सकते हो। मैंने भूल की कि विधवाश्रममे गई। सदनके साथ रहकर भी मैंने भूल की। मनुष्योसे अपने उद्धारकी आशा रखना व्यर्थ है। ये आपही मेरी तरह अज्ञानतामे पडे हुए है। ये मेरा उद्धार क्या करेगे ? मै उसीकी शरणमे जाऊँगी। लेकिन कैसे जाऊँ ? कौन-सा मार्ग हे, दो सालसे धर्म-ग्रन्थोको पढ़ती हूँ, पर कुछ समझमे नही आता। ईश्वर, तुम्हे कैसे पाऊँ ? मुझे इस अन्धकारसे निकालो। तुम दिव्य हो, ज्ञानमय हो, तुम्हारे प्रकाशमे संभव है यह अन्धकार विच्छिन्न हो जाय। यह पत्तियाँ

क्यों खड़खड़ा रही है ? कोई जानवर तो नहीं आता ! नहीं, कोई अवश्य आता है।

सुमन खड़ी हो गई, उसका चित्त दृढ था। वह निर्भय हो गई थी।

सुमन बहुत देरतक इन्हीं विचारोंमें मग्न रही। इससे उसके हृदय-को शान्ति न होती थी। आज तक उसने इस प्रकार कभी आत्म-विचार नहीं किया था। इस सकटमें पड़कर उसकी सदिच्छा जाग्रत हो गई थी।

रात बीत चुकी थी। बसन्तकी शीतल वायु चलने लगी। सुमनने साड़ी समेट ली और घुटनोंपर सिर रख लिया। उसे वह दिन याद आया, जब इसी ऋतुमें, इसी समय, वह अपने पतिके द्वारपर बैठी हुई सोच रही थी कि कहाँ जाऊँ ? उस समय वह विलासकी आगमें जल रही थी। आज भक्तिकी शीतल छायाने उसे आश्रय दिया था।

एकाएक उसकी आँखें झपक गईं। उसने देखा कि स्वामी गजा-नन्द मृगचर्म धारण किये उसके सामने खड़े दयापूर्ण नेत्रोंसे उसकी ओर ताक रहे हैं। सुमन उनके चरणोंपर गिर पड़ी और दीन भावसे बोली, स्वामी ! मेरा उद्धार कीजिये।

सुमनने देखा कि स्वामीजीने उसके सिरपर दयासे हाथ फेरा और कहा, ईश्वरने मुझे इसीलिये तुम्हारे पास भेजा है, बोलो, क्या चाहती हो, धन ?

सुमन—नहीं, महाराज, धनकी इच्छा नहीं।

स्वामी—सम्मान ?

सुमन—नहीं महाराज, सम्मानकी भी इच्छा नहीं।

स्वामी—भोग-विलास ?

सुमन—महाराज, इसका नाम न लीजिये, मुझे ज्ञान दीजिये।

स्वामी—अच्छा तो सुनो, सत्ययुगमें मनुष्यकी मुक्ति ज्ञानसे होती थी, त्रेतामें सत्यसे, द्वापरमें भक्तिसे, पर इस कलियुगमें इसका केवल एक ही मार्ग है, और वह है सेवा। इसी मार्गपर चलो और तुम्हारा उद्धार होगा। जो लोग तुमसे भी दीन, दुःखी, दलित हैं, उनकी शरण

मे जाओ और उनका आशीर्वाद तुम्हारा उद्धार करेगा । कलियुगमें परमात्मा इसी दु.खसागरमे वास करते है ।

सुमनकी आँखे खुल गई । उसने इधर-उधर देखा उसे निश्चय था कि मै जागती थी । इतनी जल्दी स्वामीजी कहाँ अदृश्य हो गये । अकस्मात् उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि सामने पेडोके नीचे स्वामीजी लालटेन लिये खडे है । वह उठकर लँग ाती उनकी ओर चली । उसने अनुमान किया था कि वह वृक्ष समूह १०० गज के अन्तर पर होगा, पर वह सौके बदले दो सौ, तीन सौ, चार सौ गज चली गई और वह वृक्षपुंज और उनके नीचे स्वामीजी लालटेन लिये हुए उतनी ही दूर खडे थे ।

सुमनको भ्रम हुआ, मै सो तो नही रही हूँ ? यह कोई स्वप्न तो नही है ? इतना चलनेपर भी वह उतनी ही दूर है। उसने जोरसे चिल्लाकर कहा--महाराज आती हूँ, आप जरा ठहर जाइये ।

उसके कानोमे शब्द सुनाई दिये, चली आओ मै खडा हूँ ।

सुमन फिर चली, पर दो सौ कदम चलनेपर वह थककर बैठ गई । वह वृक्ष समूह और स्वामीजी ज्यो-के-त्यों सामने सौ गजकी दूरीपर खडे थे ।

भयसे सुमनके रोएँ खडे हो गये । उसकी छाती धडकने लगी और पैर थर-थर काँपने लगे । उसने चिल्लाना चाहा, पर आवाज न निकली ।

सुमनने सावधान होकर विचार करना चाहा कि यह क्या रहस्य है, मै कोई प्रेतलीला तो नहीं देख रही हूँ, लेकिन कोई अज्ञात शक्ति उसे उधर खीचे लिये जाती थी, मानो इच्छा-शक्ति मनको छोड़कर उसी रहस्यके पीछे दौडी जाती है ।

सुमन फिर चली । अब वह शहरके निकट आ गई थी । उसने देखा कि स्वामीजी एक छोटीसी झोपडीमे चले गये और वृक्ष-समूह अदृश्य हो गया । सुमनने समझा, यही उनकी कुटी है । उसे बडा धीरज हुआ । अब स्वामीजीसे अवश्य भेट होगी । उन्हीसे यह रहस्य खुलेगा ।

उसने कुटीके द्वारपर जाकर कहा, स्वामीजी, मै हूँ सुमन ।

दिखाई दिया। उसके अन्तःकरणमें एक अद्‌भुत श्रद्धा और भक्तिका भाव उदय हुआ। उसने सोचा, इनकी आत्मामें कितनी दया और प्रेम है। हाय! मैंने ऐसे नर-रत्नका तिरस्कार किया। इनकी सेवामें रहती तो मेरा जीवन सफल हो गया होता। बोली, महराज, आप मेरे लिये ईश्वररूप है, आपके ही द्वारा मेरा उद्धार हो सकता है। मै अपना तनमन आपकी सेवामे अर्पण करती हूँ। यही प्रतिज्ञा एक बार मैंने की थी, पर अज्ञानतावश उसका पालन न कर सकी। वह प्रतिज्ञा मेरे हृदयसे न निकली थी। आज मै सच्चे मनसे यह प्रतिज्ञा करती हूँ। आपने मेरी बाँह पकडी थी, अब यद्यपि मै पतित हो गई हूँ, पर आपही अपनी उदारतासे मुझे क्षमादान दीजिये और मुझे सन्मार्गपर ले जाइये।

गजानन्दको इस समय सुमनके चेहरेपर प्रेम और पवित्रताकी छटा दिखाई दी। वह व्याकुल हो गये। वह भाव, जिन्हें उन्होने बरसोंसे दबा रक्खा था, जाग्रत होने लगे। सुख और आनन्दकी नवीन भावनाएँ उत्पन्न होने लगी। उन्हें अपना जीवन शुष्क, नीरस, आनन्द विहीन जान पड़ने लगा। वह कल्पनाओसे भयभीत हो गये। उन्हें शंका हुई कि यदि मेरे मनमे यह विचार ठहर गये तो मेरा सयम वैराग्य और सेवा-व्रत इसके प्रवाहमे तृणके समान बह जायेंगे। वह बोल उठे, तुम्हें मालूम है कि यहां एक अनाथालय खोला गया है?

सुमन—हां, इसकी कुछ चर्चा सुनी तो थी।

गजानन्द—इस अनाथालयमे विशेषकर वही कन्याये है जिन्हें वेश्याओंने हमे सौंपा है। कोई ५० कन्याएँ होगी।

सुमन—यह आपके ही उपदेशका फल है!

गजानन्द—नहीं, ऐसा नहीं। इसका सपूर्ण श्रेय पंडित पद्मसिंहको है, मैं तो केवल उनका सेवक हूँ। इस अनाथालयके लिये एक पवित्र आत्माकी आवश्यकता है और तुम्ही वह आत्मा हो। मैंने बहुत ढूंढा, पर कोई ऐसी महिला न मिली जो यह काम प्रेम भावसे करे, जो कन्याओंका माताकी भांति पालन करे और अपने प्रेमसे अकेली उनकी माताओंका

स्थान पूरा कर दे। वह बीमार पड़े तो उनकी सेवा करे, उनके फोड़े फुन्सियाँ, मलमूत्र देखकर घृणा न करे और अपने व्यवहारसे उनमे धार्मिक भावोंका ऐसा सचार करदे कि उसके पिछले कुसस्कार मिट जायँ और उनका जीवन सुखसे कटे। वात्सल्यके विना यह उद्देश्य पूरा नही हो सकता। ईश्वरने तुम्हे ज्ञान और विवेक दिया है, तुम्हारे हृदयमे दया है, करुणा है, धर्म है और तुम्ही इस कर्तव्यका भार संभाल सकती हो। मेरी प्रार्थना स्वीकार करोगी ?

सुमनकी आँखे सजल हो गई। मेरे विषयमे एक ज्ञानी महात्माका यह विचार है, यह सोचकर उसका चित्त गद्‌गद् हो गया। उसे स्वप्नमे भी ऐसी आशा न थी कि उसपर इतना विश्वास किया जायगा और उसे सेवाका ऐसा महान् गौरव प्राप्त होगा। उसे निश्चय हो गया कि परमात्माने गजानन्दको यह प्रेरणा की है। अभी थोड़ी देर पहले वह किसी बालकको कीचड लपेटे देखती तो उसकी ओरसे मुँह फेर लेती पर गजानन्द ने उसपर विश्वास करके उस घृणाको जीत लिया, उसमे प्रेम संचार कर दिया था। हम अपने ऊपर विश्वास करनेवालोको कभी निराश नही करना चाहते और ऐसे बोझोको उठानेको तैयार हो जाते है जिन्हे हम असाध्य समझते थे। विश्वाससे विश्वास उत्पन्न होता है। सुमनने अत्यंत विनीत भावसे कहा, आप लोग मुझे इस योग्य समझते है, यह मेरा परम सौभाग्य है। मै किसीके कुछ काम आ सकू, किसीकी सेवा कर सकूँ, यह मेरी परम लालसा थी। आपके बताये हुए आदर्शपर मै पहुँच न सकूँगी, पर यथाशक्ति मै आपकी आज्ञाका पालन करूँगी। यह कहते-कहते सुमन चुप हो गई। उसका सिर झुक गया और आँखे डबडबा आई। उसकी वाणीसे जो कुछ न हो सका वह उसके मुखके भावने प्रकट कर दिया। मानो वह कह रही थी, यह आपकी असीम कृपा है, जो आप मुझपर ऐसा विश्वास करते है। कहाँ मुझ जैसी नीच, दुश्चरित्रा और कहाँ यह महान् पद ! पर ईश्वरने चाहा तो आपको इस विश्वासदानके लिये पछताना न पड़ेगा।

गजानन्दने कहा, मुझे तुमसे ऐसी ही आशा थी। परमात्मा तुम्हारा कल्याण करें।

यह कहकर गजानन्द उठ खड़े हुए। पौ फट रही थी, पपीहे की ध्वनि सुनाई दे रही थी। उन्होंने अपना कमण्डल उठाया और गंगास्नान करने चले गये।

सुमनने कुटीके बाहर निकलकर देखा, जैसे हम नींदसे जागकर देखते हैं। समय कितना सुहावना है, कितना शन्तिमय कितना उत्साह-पूर्ण। क्या उसका भविष्य भी ऐसा ही होगा? क्या उसके भविष्य जीवनका भी प्रभात होगा, उसमें भी कभी उषाकी झलक दिखाई देगी, कभी सूर्यका प्रकाश होगा? हाँ, होगा और यह सुहावना शान्तिमय प्रभात आनेवाले दिनरूपी जीवनका प्रभात है।

५८

एक साल बीत गया। पण्डित मदनसिंह पहले तीर्थयात्रापर उधार खाए बैठे थे, जान पड़ता था सदनके घर आते ही वह एक दिन भी न ठहरेंगे, सीधे बद्रीनाथ पहुँचकर दम लेंगे, पर जबसे सदन आ गया है उन्होंने भूलकर भी तीर्थयात्राका नाम नहीं लिया। पोतेको गोदमें लिए असामियोंका हिसाब करते हैं, खेतोंकी निगरानी करते हैं। मायाने और भी जकड़ लिया है। हाँ, भामा अब कुछ निश्चिन्त हो गई है। पड़ोसिनोंमें वार्त्तालाप करनेका कर्त्तव्य उसने अपने सिरसे नहीं हटाया। शेष कार्य उसने शान्तापर छोड़ दिये हैं।

पण्डित पद्मसिंहने वकालत छोड़ दी। अब वह म्युनिसिपैलिटीके प्रधान कर्मचारी हैं। इस काममें उन्हें बहुत रुचि है, शहर दिनोंदिन उन्नति कर रहा है। सालके भीतर ही कई नई सड़कें, नये बाग तैयार हो गए हैं। अब उनका इरादा है कि इक्के और गाड़ीवालोंके लिए शहरके बाहर एक मुहल्ला बनवा दें। शर्माजीके कई पहलेके मित्र अब उनके विरोधी हो गए हैं और पहलेके कितने ही विरोधियोंसे मेल हो गया है, किन्तु महाशय

विट्ठलदासपर उनकी श्रद्धा दिनोंदिन बढती जाती है। वह बहुत चाहते है कि महाशयजीको म्युनिसिपैलिटीमे कोई अधिकार दे, पर विट्ठलदास राजी नहीं होते। वह नि:स्वार्थ कर्मकी प्रतिज्ञाको नही तोड़ना चाहते। उनका विचार है कि अधिकारी बनकर वह इतना हित नही कर सकते जितना पृथक् रहकर कर सकते हैं। उनका विधवाश्रम इन दिनों बहुत उन्नतिपर है और म्युनिसिपैलिटीसे उसे विशेष सहायता मिलती है। आजकल वह कृषकोंकी सहायताके लिए एक कोष स्थापित करनेका उद्योग कर रहे है जिससे किसानोको बीज और रुपये नाममात्र सूदपर उधार दिये जा सके। इस सत्कार्यमे सदन बाबू विट्ठलदासका दाहिना हाथ बना हुआ है।

सदनका अपने गाँवमें मन नहीं लगा। वह शान्ताको वहाँ छोडकर फिर गंगा किनारेके झोपड़ेमे आ गया है और उस व्यवसायको खूब बढ़ा रहा है। उसके पास अब पाँच नावे है और सैकड़ो रुपये महीनेका लाभ हो रहा है। वह अब एक स्टीमर मोल लेनका विचार कर रहा है।

स्वामी गजानन्द अधिकतर देहातोमे रहते है। उन्होने निर्धनोंकी कन्याओका उद्धार करनेके निमित्त अपना जीवन अर्पण कर दिया है। शहरमें आते है तो दो-एक दिनसे अधिक नही ठहरते।

कार्तिकका महीना था पद्मसिह सुभद्राको गंगा-स्नान कराने ले गए थे। लौटती बार वह अलईपुरकी ओरसे आ रहे थे। सुभद्रा गाड़ीकी खिड़कीसे बाहर झाँकती चली आती थी और सोचती थी कि यहाँ इस सन्नाटेमे लोग कैसे रहते है? उनका मन कैसे लगता है? इतनेमे उसे एक सुन्दर भवन दिखाई पडा, जिसके फाटकपर मोटे अक्षरोंमे लिखा था—

गजानन्दने कहा, मुझे तुमसे ऐसी ही आशा थी। परमात्मा तुम्हारा कल्याण करें।

यह कहकर गजानन्द उठ खड़े हुए। पौ फट रही थी, पपीहे की ध्वनि सुनाई दे रही थी। उन्होंने अपना कमण्डल उठाया और गंगास्नान करने चले गये।

सुमनने कुटीके बाहर निकलकर देखा, जैसे हम नींदसे जागकर देखते हैं। समय कितना सुहावना है, कितना शान्तिमय कितना उत्साहपूर्ण। क्या उसका भविष्य भी ऐसा ही होगा? क्या उसके भविष्य जीवनका भी प्रभात होगा, उसमें भी कभी उषाकी झलक दिखाई देगी, कभी सूर्यका प्रकाश होगा? हाँ, होगा और यह सुहावना शान्तिमय प्रभात आनेवाले दिनरूपी जीवनका प्रभात है।

५८

एक साल बीत गया। पण्डित मदनसिंह पहले तीर्थयात्रापर उधार खाए बैठे थे, जान पड़ता था सदनके घर आते ही वह एक दिन भी न ठहरेंगे, सीधे बद्रीनाथ पहुँचकर दम लेंगे, पर जबसे सदन आ गया है उन्होंने भूलकर भी तीर्थयात्राका नाम नहीं लिया। पोतेको गोदमें लिए असामियोंका हिसाब करते हैं, खेतोंकी निगरानी करते हैं। मायाने और भी जकड़ लिया है। हाँ, भामा अब कुछ निश्चित हो गई है। पड़ोसिनोंसे वार्त्तालाप करनेका कर्त्तव्य उसने अपने सिरसे नहीं हटाया। शेष कार्य उसने शान्तापर छोड़ दिये हैं।

पण्डित पद्मसिंहने वकालत छोड़ दी। अब वह म्युनिसिपैलिटीके प्रधान कर्मचारी हैं। इस कामसे उन्हें बहुत रुचि है, शहर दिनोंदिन उन्नति कर रहा है। सालके भीतर ही कई नई सड़कें, नये बाग तैयार हो गए हैं। अब उनका इरादा है कि इक्के और गाड़ीवालोंके लिए शहरके बाहर एक मुहल्ला बनवा दें। शर्माजीके कई पहलेके मित्र अब उनके विरोधी हो गए हैं और पहलेके कितने ही विरोधियोंसे मेल हो गया है, किन्तु महाशय

लौट गया। मैं चलता हूँ। गाडी छोडे जाता हूँ। रास्तेमें कोई सवारी किरायेकी कर लूंगा।

सुभद्रा—तो इसकी क्या आवश्यकता है। तुम यहीं बैठे रहो, मैं अभी लौट आती हूँ।

पद्म—(गाडीसे उतरकर) मैं चलता हूँ, तुम्हारा जब जी चाहे आना।

सुभद्रा इस हीलेहवालेका कारण समझ गई। उसने 'जगत' मे कितनी बार 'सेवासदन' की प्रशसा पढी थी। पण्डित प्रभाकररावकी इन दिनों सेवासदनपर बडी दया दृष्टि थी। अतएव सुभद्राको इस आश्रमसे प्रेम-सा हो गया था और सुमनके प्रति उसके हृदयमे भक्ति उत्पन्न हो गई थी, वह सुमनको इस नई अवस्थामें देखना चाहिती थी। उसको आश्चर्य होता था कि सुमन इतने नीचे गिरकर कैसे ऐसी विदुषी हो गई कि पत्रोंमे उसकी प्रशंसा छपती है। उसके जीमे तो आया कि पण्डितजीको खूब आडे हाथों ले पर साईस खडा था, इसलिए कुछ न बोल सकी। गाडीसे उतरकर आश्रममें दाखिल हुई।

वह ज्योंही बरामदेमें पहुँची कि एक स्त्रीने भीतर जाकर सुमनको उसके आनेकी सूचना दी और एक क्षणमें सुभद्राने सुमनको आते देखा। वह इस वेशहीना; आभूषणविहीना सुमनको देखकर चकित हो गई। उसमें न वह कोमलता थी, न वह चपलता, न वह मुस्कुराती हुई आँखे, न हँसते हुए होंठ। रूपलावण्यकी जगह पवित्रताकी ज्योति झलक रही थी।

सुमन निकट आकर सुभद्राके पैरोंपर गिर पडी और सजल नयन होकर बोली, बहूजी, आज मेरे धन्यभाग्य है कि आपको यहाँ देख रही हूँ।

सुभद्राकी आँखें भर आयीं। उसने सुमनको उठाकर छातीसे लगा लिया और गद्गद स्वरसे कहा—बाईजी, आनेका तो बहुत जी चाहता था, पर आलस्यवश अबतक न आ सकी थी।

सुमन—शर्माजी भी है या आप अकेली ही आई हैं?

सुभद्रा—साथ ही थे, पर उन्हें देर हो गयी थी, इसलिए वह दूसरी गाडीपर चले गए।

सुमनने उदास होकर कहा, देर तो क्या होती थी, वह यहाँ आना ही नहीं चाहते थे। मेरा अभाग्य, दुःख केवल यह है कि जिस आश्रमके वह स्वयं जन्मदाता हैं, उससे मेरे कारण उन्हें इतनी घृणा है। मेरी हृदयसे अभिलाषा थी कि एक बार तुम और वह दोनों यहाँ आते। आधी तो आज पूरी हुई, शेष भी कभी-न-कभी पूरी होगी। वह मेरे उद्धारका दिन होगा।

यह कहकर सुमनने सुभद्राको आश्रम दिखाना शुरू किया। भवनमें पाँच बड़े कमरे थे। पहले कमरेमें लगभग तीस बालिकाएँ बैठी हुई कुछ पढ़ रही थीं। उनकी अवस्था १२ वर्षसे १५ वर्ष तक थी। अध्यापिकाने सुभद्राको देखते ही आकर उससे हाथ मिलाया। सुमनने दोनोंका परिचय कराया। सुभद्राको यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि वह महिला मिस्टर रुस्तम भाई बैरिस्टरकी सुयोग्य पत्नी हैं। नित्य दो घंटेके लिए आश्रममें आकर इन युवतियोंको पढ़ाया करती थी।

दूसरे कमरेमें भी इतनी ही कन्याएँ थी। उनकी अवस्था ८ से लेकर १२ वर्ष तक थी। उनमें कोई कपड़े काटती थी, कोई सीती थी और कोई अपने पासवाली लड़कीको चिकोटी काटती थी। यहाँ कोई अध्यापिका न थी। एक बूढा दरजी काम कर रहा था। सुमनने कन्याओंके तैयार किए हुए कुरते, जाकेट आदि सुभद्राको दिखाये।

तीसरे कमरेमें १५-२० छोटी-छोटी बालिकाएँ थीं, कोई ५ वर्षसे अधिककी न थी। उनमें कोई गुडिया खेलती थी, कोई दीवारपर लटकती हुई तस्वीरें देखती थी। सुमन आप ही इस कक्षाकी अध्यापिका थी।

सुभद्रा यहाँसे सामनेवाले बगीचेमें आकर इन्ही लड़कियोंके लगाये हुए फूल पत्ते देखने लगी। कई कन्याएँ वहाँ आलू गोभीकी क्यारियोंमे पानी दे रही थीं। उन्होंने सुभद्राको सुन्दर फूलोंका एक गुलदस्ता भेंट किया।

भोजनालयमें कई कन्याएँ बैठी भोजन कर रही थीं। सुमनने सुभद्राको इन कन्याओंके बनाये हुए अचार, मुरब्बे आदि दिखाए।

सुभद्राको यहाँका सुप्रबन्ध, शान्ति और कन्याओंका शील स्वभाव

देखकर बड़ा आनन्द हुआ। उसने मनमे सोचा, सुमन इतने बड़े आश्रमको अकेले कैसे चलाती होगी, मुझसे तो कभी न हो सकता। कोई लड़की मलोन या उदास नही दिखाई देती।

सुमनने कहा, मैने यह भार अपने ऊपर ले तो लिया, पर मुझमे उसके सँभालनेकी शक्ति नही है। लोग जो सलाह देते है, वही मेरा आधार है। आपको भी जो कुछ त्रुटि दिखाई दे, वह कृपा करके बता दीजिये। इससे मेरा उपकार होगा।

सुभद्राने हँस कर कहा, बाईजी मुझे लज्जित न करो, मैने तो जो कुछ देखा है उसीसे चकित हो रही हूँ, तुम्हे सलाह क्या दूँगी, बस इतना ही कह सकती हूँ कि ऐसा अच्छा प्रबन्ध विधवा आश्रमका भी नहीं है।

सुमन—आप सकोच कर रही है।

सुभद्रा—नही, सत्य कहती हूँ। मैने जैसा सुना था इसे उससे कहीं बढकर पाया। हाँ तो बताओ, इन बालिकाओकी माताएँ इन्हे देखने आती है या नही ?

सुमन—आती है, पर मै यथासाध्य इस मेल-मिलापको रोकती हूँ।

सुभद्रा—अच्छा, इनका विवाह कहाँ होगा।

सुमन—यही तो टेढ़ी खीर है। हमारा कर्त्तव्य यह है कि इन कन्याओको चतुर गृहिणी बनानेके योग्य बना दे। उनका आदर समाज करेगा या नही, मै कह नही सकती।

सुभद्रा—बैरिस्टर साहबकी पत्नीको इस कामसे बड़ा प्रेम है।

सुमन—यह कहिये कि आश्रमकी स्वामिनी वही है। मै तो केवल उनकी आज्ञाओका पालन करती हूँ।

सुभद्रा—क्या कहूँ, मै किसी योग्य नही, नही तो मै भी यहाँ कुछ काम किया करती।

सुमन—आते-आते तो आप आज आई है, उसपर शर्माजीको नाराज करके। शर्माजी फिर इधर आनेतक न देगे।

सुभद्रा—नहीं, अवकी एतवारको मैं उन्हे अवश्य खींच लाऊँगी, बस, मैं लड़कियोको पान लगाना और खाना सिखाया, करूँगी।

सुमन—(हँसकर) इस काममे आप कितनी ही लडकियोको अपने-से भी निपुण पावेगी।

इतनेमे १० लडकियाँ सुन्दर वस्त्र पहने हुए आई और सुभद्रा के सामने खडी होकर मधुर स्वरसे गाने लगी :

हे जगत पिता, जगत प्रभु,
मुझे अपना प्रेम और प्यार दे।
तेरी भक्तिमे लगे मन मेरा,
विषय कामनाको विसार दे।

सुभद्रा यह गीत सुनकर वहुत प्रसन्न हुई और लडकियोंको ५) इनाम दिया।

जब वह चलने लगी तो सुमनने करुण स्वरसे कहा—मैं इसी रवि-वारको आपकी राह देखूँगी।

सुभद्रा—मैं अवश्य आऊँगी।

सुमन—शान्ता तो कुशलसे है।

सुभद्रा—हाँ पत्र आया था। सदन तो यहाँ नही आए ?

सुमन—नही, पर २) मासिक चन्दा भेज दिया करते हैं।

सुभद्रा—अब आप वैठिये, मुझे आज्ञा दीजिए।

सुमन—आपके आनेसे मैं कृतार्थ हो गई। आपकी भक्ति, आपका प्रेम, आपकी कार्यकुशलता, किस-किसकी वडाई करूँ। आप वास्तवमे स्त्री समाजका शृंगार हैं (सजल नेत्रोंसे) मैं तो अपनेको आपकीदासी समझती हूँ। जवतक जीऊँगी आप लोगोका यश मानती रहूँगी। मेरी वाँह पकडी और मुझे डूबनेसे वचा लिया। परमात्मा आप लोगोंका सदैव कल्याण करे।